दिसम्बर, 2014

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

प्रधान संपादक
अनूप कुमार वार्ष्णेय

महत्वपूर्ण निर्णय

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 39, 43 और 192 – मोटर यान का रजिस्ट्रीकरण – अस्थायी रजिस्ट्रीकरण – किसी प्रकार के रजिस्ट्रीकरण के बिना सार्वजनिक मार्ग पर यान का प्रयोग करना न केवल मोटर यान अधिनियम की धारा 192 के अधीन दंडनीय अपराध है बल्कि बीमा पालिसी संबंधी संविदा की शर्तों और निबंधनों का आधारभूत भंग भी है ।

नरेन्द्र सिंह बनाम **न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य** 403

पृष्ठ संख्या 307 – 472 **[2014] 4 उम. नि. प.**

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

संपादक-मंडल

डा. संजय सिंह,
सचिव, विधायी विभाग

श्रीमती शारदा जैन, संयुक्त सचिव एवं विधायी परामर्शी, विधायी विभाग

डा. बी. एन. मणि,
सेवानिवृत्त अपर विधि सलाहकार, विधि मंत्रालय

प्रो. डा. वैभव गोयल,
सुभारती विश्वविद्यालय, मेरठ
विधि विभाग

डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा, प्रिन्सिपल, विधि विभाग, डी आई आर डी, गुरु गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय

डा. ऋषिपाल सिंह,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव एवं विधायी परामर्शी, राजभाषा खंड

श्री लालजी प्रसाद,
सेवानिवृत्त प्रधान संपादक, वि.सा.प्र.

श्री कृष्ण गोपाल अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री अनूप कुमार वार्ष्णेय,
प्रधान संपादक

श्री महमूद अली खां,
संपादक

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय,
संपादक

सहायक संपादक : सर्वश्री विनोद कुमार आर्य, कमला कान्त, अविनाश शुक्ला और असलम खान

उप-संपादक : सर्वश्री दयाल चन्द ग्रोवर, महीपाल सिंह और जसवन्त सिंह

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 19

वार्षिक : ₹ 225

© 2014 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रकाशन और विक्रय प्रबंधक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय (विधायी विभाग), भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा..... द्वारा मुद्रित ।

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 16288/68

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिकाओं में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमशः चयनित सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । इन पत्रिकाओं को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए इनमें जनवरी, 2010 के अंक से महत्वपूर्ण केन्द्रीय अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी पाठ पाठकों की सुविधा के लिए शृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशित किया जा रहा है । तीनों निर्णय पत्रिकाओं की वार्षिक कीमत केवल ₹ 495/- है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 225/- है, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें ।

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001
दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रय के लिए उपलब्ध विधि पाठ्य पुस्तकों की सूची

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	कीमत (₹)
1.	भारत का विधिक इतिहास	श्री सुरेन्द्र मधुकर	410	30.00
2.	माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि	डा. एन. पी. परांजपे	371	40.00
3.	वाणिज्य विधि	डा. आर. एल. भट्ट	630	108.00
4.	अपकृत्य विधि के सिद्धान्त (तृतीय संस्करण)	श्री शर्मन लाल अग्रवाल	357	40.00
5.	अंतर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. सी. खरे	273	115.00
6.	मानव अधिकार	डा. शिवदत्त शर्मा	340	120.00
7.	दण्ड प्रक्रिया संहिता	न्या. महावीर सिंह	840	200.00

पुस्तकों की सूची जिन पर छूट देने की स्वीकृति प्राप्त की गई है ।

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	मूल दर (₹)	संशोधित दर (₹)
1.	संविदा विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रामगोपाल चतुर्वेदी	552	275.00	137.00
2.	श्रम विधि (तृतीय संस्करण)	श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा	658	452.00	226.00
3.	चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान (तृतीय संस्करण)	डा. सी. के. पारिख अनुवादक डा. एन. के. पटौरिया	969	293.00	146.00
4.	आधुनिक पारिवारिक विधि	श्री राम शरण माथुर	767	429.00	214.00
5.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय)	संकलन संपादन – ब्रह्मदेव चौबे	209	225.00	112.00
6.	हिन्दू विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रवीन्द्र नाथ	617	425.00	212.00
7.	भारतीय दंड संहिता	डा. रवीन्द्र नाथ	696	741.00	370.00
8.	भारतीय भागीदारी अधिनियम (द्वितीय संस्करण)	श्री माधव प्रसाद वशिष्ठ	272	165.00	82.00
9.	प्रशासनिक विधि (तृतीय संस्करण)	डा. कैलाश चन्द्र जोशी	635	200.00	100.00
10.	विधिक उपचार (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. के. कपूर	414	311.00	155.00
11.	विधि शास्त्र	डा. शिवदत्त शर्मा	501	580.00	377.00

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका – दिसम्बर, 2014 [पृष्ठ संख्या 307 – 472]

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

दिसम्बर, 2014

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
अर्जुन जादव **बनाम** पश्चिमी बंगाल राज्य और अन्य	370
अमर सिंह यादव **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य	313
आशीष कुमार सामंत और अन्य **बनाम** पश्चिमी बंगाल राज्य और अन्य	391
एन. पदमम्मा और अन्य **बनाम** एस. रामकृष्ण रेड्डी और अन्य	425
ओ. एम. चेरियन **उर्फ** थंकाचन **बनाम** केरल राज्य और अन्य	455
ओम प्रकाश **बनाम** हरियाणा राज्य	446
तनुआ रबिदास **बनाम** असम राज्य	397
दुर्योधन राउत **बनाम** उड़ीसा राज्य	335
नरेन्द्र सिंह **बनाम** न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य	403
परमशिवम् और अन्य **बनाम** राज्य द्वारा पुलिस निरीक्षक	354
भारतीय जीवन बीमा निगम और अन्य **बनाम** त्रिवेणी शरन मिश्रा	380
लीला राजगोपाल और अन्य **बनाम** कमला मेनन कोचरन और अन्य	412
सरोज **बनाम** पश्चिमी बंगाल राज्य	307

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

आन्ध्र प्रदेश (तेलंगाना क्षेत्र) इनाम उत्सादन अधिनियम, 1955

– धारा 3, 8, 16, 24 और 29 – संयुक्त कुटुम्ब के सदस्यों के बीच अंशों के विभाजन के लिए वाद – सिविल न्यायालय की अधिकारिता – कुछ भूमियों पर संयुक्त कुटुम्ब के सदस्यों में से किसी एक सदस्य के पक्ष में अधिभोगाधिकार अनुदत्त किया जाना – अधिनियम के प्रवर्तन के कारण सभी इनाम भूमियां राज्य में निहित हो गई थीं और इनामदार की मृत्यु के पश्चात् उसके विधिक वारिसों ने सभी अधिकार वसीयत में प्राप्त किए थे इसलिए किसी एक सदस्य को अधिभोगाधिकार अनुदत्त किए जाने के परिणामस्वरूप अन्य वारिसों के अधिकारों का निर्वापन नहीं हो जाता है तथा अधिनियम के प्रवर्तन के पश्चात् सभी इनामों का उत्सादन होने पर भी इनाम भूमियां विभाज्य हैं और सिविल न्यायालय उन भूमियों के विभाजन के संबंध में विनिश्चय कर सकता है ।

एन. पदमम्मा और अन्य बनाम **एस. रामकृष्ण रेड्डी और अन्य** 425

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2)

– धारा 31 – एक ही विचारण में कई अपराधों के लिए दोषसिद्ध होने के मामलों में दंडादेश – विचारण न्यायालय द्वारा अभियुक्त पर दो अपराधों के लिए अधिरोपित दंडादेशों को क्रमवर्ती चलने का आदेश किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा अभिपुष्टि किया जाना – एक विचारण में दो या अधिक अपराधों के लिए दिए गए दंडादेश साथ-साथ चलेंगे या क्रमवर्ती, ऐसा आदेश करने का पूर्ण विवेकाधिकार अपराधों की प्रकृति और विद्यमान गुरुतरकारी और न्यूनकारी

पृष्ठ संख्या

परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए न्यायालय को दिया गया है और अपील न्यायालय सामान्यतः तब तक इसमें हस्तक्षेप नहीं करेंगे जब तक कि ऐसे विवेकाधिकार का प्रयोग करने से इनकार करना मनमाना या अयुक्तियुक्त होना दर्शित न किया जाए ।

ओ. एम. चेरियन उर्फ **थंकाचन** बनाम **केरल राज्य और अन्य** 455

– धारा 31 – एक ही विचारण में कई अपराधों के लिए दोषसिद्ध होने के मामलों में दंडादेश – विचारण न्यायालय द्वारा अभियुक्त पर भारतीय दंड संहिता की धारा 498क और 306 के अधीन अधिरोपित दंडादेशों को क्रमवर्ती चलने का निदेश किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा अभिपुष्टि किया जाना – अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा नातेदारों की मध्यस्थता से मृतका-पत्नी के साथ विवाद को सुलझाने का प्रयास किए जाने और उसके भारत के बाहर नौकरी करने संबंधी मामले के समग्र तथ्यों और परिस्थितियों को दृष्टिगत करते हुए उस पर अधिरोपित दंडादेशों को साथ-साथ चलने का आदेश किया जाना न्यायोचित होगा ।

ओ. एम. चेरियन उर्फ **थंकाचन** बनाम **केरल राज्य और अन्य** 455

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45)

– धारा 302 [सपठित दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 432] – हत्या – आजीवन कारावास से दंडित किया जाना – 18 वर्ष से अधिक कारावास भोगे जाने के आधार पर निर्मुक्त किए जाने का अभिवाक् – समुचित सरकार की दंड का परिहार करने की शक्ति – जब तक समुचित सरकार या सक्षम प्राधिकारी द्वारा दंड का परिहार न कर दिया जाए तब तक आजीवन

पृष्ठ संख्या

कारावास, संपूर्णकाल का कारावास ही माना जाएगा और याची को समयपूर्व निर्मुक्त नहीं किया जाएगा ।

अर्जुन जादव बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य और अन्य** 370

– धारा 302 [सपठित साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 32] – हत्या – मृत्युकालिक कथन – मृतका द्वारा अपनी मृत्यु से पूर्व डाक्टर तथा नर्स के समक्ष किए गए कथन, कि उसके पति ने उस पर मिट्टी का तेल छिड़का और आग लगा दी, की संपुष्टि मृतका द्वारा अन्य साक्षियों की मौजूदगी में किए गए इसी प्रकार के कथन से होने पर अभियुक्त-अपीलार्थी की दोषसिद्धि और दंडादेश उचित हैं ।

तनुआ रबिदास बनाम **असम राज्य** 397

– धारा 302 और 304 भाग 1 – हत्या – आपराधिक मानव वध – अंतर – रात्रि में मृतक का अपीलार्थियों के घर में घुसपैठिए के रूप में प्रवेश करना – अपीलार्थियों द्वारा मृतक की अचानक और गंभीर प्रकोपन के कारण पिटाई किया जाना – अपीलार्थियों द्वारा ऐसी शारीरिक क्षति कारित किए जाने के आशय से मृत्यु हुई है जिससे मृत्यु संभावित है और मृत्युकारित करने का पूर्व- चिंतन नहीं किया गया है, तब अपीलार्थी हत्या नहीं अपितु हत्या की कोटि में न आने वाले मानव वध के अपराध का दोषी होगा ।

सरोज बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य** 307

– धारा 302, 307 और 436 – हत्या – अभियुक्त द्वारा पत्नी और दो बच्चों की आग में जलाकर हत्या किया जाना – मामले विरल से विरलतम मामले की कोटि में न आना – अभियुक्त में सुधार और उसका पुनर्वास होने की संभावना – न्यायालय का यह समाधान होने पर कि ऐसा कोई कारण नहीं है कि अभियुक्त में

पृष्ठ संख्या

सुधार नहीं आ सका, उसका पुनर्वास नहीं किया जा सकता, वह आगे भी हिंसक अपराध करता रहेगा और समाज के लिए संकट बना रहेगा, मामले को विरल से विरलतम मामले की कोटि में नहीं रखा जा सकता और मृत्यु दंडादेश देना उचित नहीं होगा ।

अमर सिंह यादव बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** 313

– धारा 364 और 302 [भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 3] – व्यपहरण और हत्या – मृतक को अभियुक्त के साथ अंतिम बार देखा जाना – पारिस्थितिक साक्ष्य – प्रत्यक्षदर्शी साक्षी का अभाव किंतु शनाख्त परेड में अभियुक्तों की पहचान और मृतक के डी. एन. ए. का उसके परिवार से मेल खाना – मृतक को अंतिम बार अभियुक्त के साथ देखा गया और शनाख्त परेड में तीन अभियुक्तों को पहचान लिया गया तथा डी. एन. ए. के आधार पर शव की शनाख्त की गई और अभियुक्तों के प्रकटीकरण कथन के अनुसार उनसे अपराधजन्य सामग्री बरामद हुई, ऐसी स्थिति में अभियुक्तों को प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के अभाव में दोषी ठहराना न्यायोचित होगा ।

परमशिवम् और अन्य बनाम **राज्य द्वारा पुलिस निरीक्षक** 354

– धारा 376 – बलात्संग – चिकित्सीय साक्ष्य के अनुसार योनिच्छद का विदीर्ण पाया जाना – स्कूल प्रमाण-पत्र के आधार पर अभियोक्त्री की आयु 15 वर्ष – अभियोक्त्री के साथ बलात्संग किए जाने और उसकी पुष्टि चिकित्सीय साक्ष्य से होने पर अभियुक्तों की दोषसिद्धि मान्य ठहराई गई ।

ओम प्रकाश बनाम **हरियाणा राज्य** 446

– धारा 376 और 302 [सपठित दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 433 और 433क] – बलात्संग

पृष्ठ संख्या

और हत्या – आजीवन कारावास का लघूकरण – सरकार की शक्ति – 14 वर्ष का कारावास आवश्यक – केवल समुचित सरकार ही आजीवन कारावास का लघूकरण कर सकती है परंतु यह तब जबकि दोषसिद्ध व्यक्ति ने 14 वर्ष की अवधि का कारावास पूरा कर लिया हो ।

दुर्योधन राउत बनाम **उड़ीसा राज्य** 335

– धारा 376 और 302 [सपठित दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 432] – बलात्संग और हत्या – आजीवन कारावास की अवधि – दंड का परिहार – आजीवन कारावास के दंड का अर्थ बंदी के संपूर्ण जीवन का कारावास है जब तक कि समुचित सरकार द्वारा दंड का परिहार न कर दिया जाए ।

दुर्योधन राउत बनाम **उड़ीसा राज्य** 335

– धारा 376 और 302 [सपठित दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 31] – बलात्संग और हत्या – एक ही विचारण में कई अपराधों के लिए दोषसिद्ध होने के मामलों में दंडादेश – धारा 302 के अधीन आजीवन कारावास और 376 के अधीन 10 वर्ष का कारावास अधिनिर्णीत किया जाना – अपीलार्थी द्वारा क्रमवर्ती रूप से कारावास का दंड चलाए जाने को चुनौती दिया जाना – हत्या के अपराध के लिए आजीवन कारावास का दंड अधिनिर्णीत किए जाने की स्थिति में, बलात्संग के अपराध के लिए 10 वर्ष के कारावास को क्रमवर्ती रूप में चलाना अनुचित होगा, अतः दोनों दंडादेश साथ-साथ चलाए जाने से ही न्याय होगा ।

दुर्योधन राउत बनाम **उड़ीसा राज्य** 335

पश्चिमी बंगाल सेवा (ज्येष्ठता का अवधारण) नियम, 1981

– नियम 6(2) – ज्येष्ठता – उच्च न्यायालय द्वारा

पृष्ठ संख्या

प्रोन्नति पर रोकादेश – रोकादेश के बातिल होने के पश्चात् प्रोन्नति के लिए चयन प्रक्रिया प्रारंभ – न्यायालय द्वारा अंतरिम अनुतोष प्रदान करके हस्तक्षेप किए जाने के कारण प्राइवेट प्रत्यर्थी को नुकसान पहुंचने नहीं दिया जा सकता था ।

आशीष कुमार सामंत और अन्य बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य और अन्य** 391

भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 (1925 का 39)

– धारा 2(ज), 281 और 282 – वसीयतकर्ता द्वारा विल निष्पादित किया जाना – पुत्रों को अपवर्जित करके पुत्री तथा नाती के पक्ष में विल किया जाना – वसीयतकर्ता की मृत्यु पर पुत्री द्वारा प्रोबेट के लिए आवेदन – विल में अनेक विसंगतियों के आधार पर पुत्रों द्वारा इसे विवादग्रस्त किया जाना – विचारण न्यायालय द्वारा विल को अविधिमान्य ठहराया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा विल को विधिमान्य पाया जाना – विल से इसकी स्पष्ट भाषा, असंदिग्ध तात्पर्य और प्रभाव तथा वसीयतकर्ता का स्पष्ट मंतव्य उपदर्शित होने पर उच्च न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं है ।

लीला राजगोपाल और अन्य बनाम **कमला मेनन कोचरन और अन्य** 412

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59)

– धारा 39 – अस्थायी रजिस्ट्रीकरण – कोई व्यक्ति विधिमान्य रजिस्ट्रीकरण के बिना कोई मोटर यान नहीं चलाएगा तथा अस्थायी रजिस्ट्रीकरण तब तक एक मास से अनधिक की अवधि के लिए विधिमान्य होता है जब तक वह अवधि मोटर यान के स्वामी के

पृष्ठ संख्या

नियंत्रण से परे किन्हीं अनिश्चित परिस्थितियों में बढ़ाई न गई हो ।

नरेन्द्र सिंह बनाम **न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य** 403

– धारा 39, 43 और 192 – मोटर यान का रजिस्ट्रीकरण – अस्थायी रजिस्ट्रीकरण – किसी प्रकार के रजिस्ट्रीकरण के बिना सार्वजनिक मार्ग पर यान का प्रयोग करना न केवल मोटर यान अधिनियम की धारा 192 के अधीन दंडनीय अपराध है बल्कि बीमा पालिसी संबंधी संविदा की शर्तों और निबंधनों का आधारभूत भंग भी है ।

नरेन्द्र सिंह बनाम **न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य** 403

सेवा विधि

– भारतीय जीवन बीमा निगम द्वारा चपरासी के पद के लिए आवेदन आमंत्रित किया जाना – अधिकतम अर्हता नौंवीं पास नियत किया जाना – प्रत्यर्थी द्वारा अपने आवेदन में उच्चतर अर्हता रखने संबंधी तात्विक जानकारी छिपाकर और मिथ्या कथन करके नियोजन प्राप्त किया जाना – विभागीय जांच में अवचार का दोषी पाए जाने पर सेवा से हटाया जाना – निगम में समान रूप से अवस्थित एक अन्य कर्मचारी को केवल दो वर्ष की वेतनवृद्धि रोकने का दंड देकर सेवा में बनाए रखना – प्रत्यर्थी पर समान शास्ति अधिरोपित करके सेवा में बहाल करने के लिए दिए गए उच्च न्यायालय के निदेश में हस्तक्षेप करने का कोई पर्याप्त कारण नहीं है ।

भारतीय जीवन बीमा निगम और अन्य बनाम **त्रिवेणी शरन मिश्रा** 380

– भारतीय जीवन बीमा निगम द्वारा चपरासी के पद के लिए आवेदन आमंत्रित किया जाना – अधिकतम

पृष्ठ संख्या

अर्हता नौंवीं पास नियत किया जाना और उच्चतर अर्हता रखने वाले अभ्यर्थियों को पद पर नियुक्ति के लिए विचार में न लिया जाना – उच्च न्यायालय का यह निष्कर्ष सही है कि इससे संविधान के अनुच्छेद 16 और 14 का अतिक्रमण होता है ।

भारतीय जीवन बीमा निगम और अन्य बनाम **त्रिवेणी शरन मिश्रा** 380

तुलनात्मक सारणी

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

[2014] 4 उम. नि. प.

अक्तूबर-दिसम्बर, 2014

क्र. सं.	निर्णय का नाम व तारीख	उम. नि. प.		ए. आई. आर. (एस. सी.)		एस. सी. सी.	
1	2	3		4		5	
1.	कृष्णन **उर्फ** रामास्वामी और अन्य **बनाम** तमिलनाडु राज्य (1 जुलाई, 2014)	[2014] 4	1	2014	2548	(2014) 12	279
2.	मनोहर लाल **बनाम** हरियाणा राज्य (1 जुलाई, 2014)		14		2555	9	645
3.	राम कुमार और अन्य **बनाम** मध्य प्रदेश राज्य (1 जुलाई, 2014)		28		–	13	128
4.	संजीव लाल और अन्य **बनाम** आय-कर आयुक्त, चंडीगढ़ और एक अन्य (1 जुलाई, 2014)		37		3589		–
5.	पंजाब राज्य **बनाम** गुरमीत सिंह (2 जुलाई, 2014)		54		2561	9	632
6.	प्रदीप कुमार **बनाम** हरियाणा राज्य (2 जुलाई, 2014)		62		2694	7	395

1	2	3		4		5	
7.	सूर्यकांत दादासाहेब बिताले **बनाम** दिलीप बजरंग काले और एक अन्य (2 जुलाई, 2014)	[2014] 4	79	2014	–	(2014) 11	496
8.	रिछपाल सिंह मीणा **बनाम** घासी **उर्फ** घीसा और अन्य (4 जुलाई, 2014)		96		3595	8	918
9.	महाराष्ट्र राज्य **बनाम** राजेन्द्र और अन्य (8 जुलाई, 2014)		123		–	12	496
10.	अतुल त्रिपाठी **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य (22 जुलाई, 2014)		141		3062	9	177
11.	राजस्थान राज्य और एक अन्य **बनाम** सुरेन्द्र मोहनोट और अन्य (30 जून, 2014)		155		2925	14	77
12.	पुंडप्पा यंकप्पा पुजारी **बनाम** कर्नाटक राज्य (2 जुलाई, 2014)		182		2733	12	372
13.	स्टेट बैंक आफ पटियाला **बनाम** प्रीतम सिंह बेदी और अन्य (7 जुलाई, 2014)		202		2714	13	474
14.	सी. के. दासेगौड़ा और अन्य **बनाम** कर्नाटक राज्य (15 जुलाई, 2014)		221		–	13	119
15.	अपोलो पशु-चिकित्सा आयुर्विज्ञान महाविद्यालय **बनाम** राजस्थान राज्य पशु-चिकित्सा परिषद् और अन्य (25 जुलाई, 2014)		231	2015	112		–

1	2	3	4	5
16.	पवन कुमार रल्ली **बनाम** मनिंदर सिंह नरुला (11 अगस्त, 2014)	[2014] 4 262	2014 3512	(2014) –
17.	भारत संघ और एक अन्य **बनाम** संजीव वी. देशपांडे (12 अगस्त, 2014)	278	3625	13 1
18.	सरोज **बनाम** पश्चिमी बंगाल राज्य (3 अप्रैल, 2014)	307	2962	4 802
19.	अमर सिंह यादव **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य (1 जुलाई, 2014)	313	2486	13 443
20.	दुर्योधन राउत **बनाम** उड़ीसा राज्य (1 जुलाई, 2014)	335	3345	–
21.	परमशिवम् और अन्य **बनाम** राज्य द्वारा पुलिस निरीक्षक (1 जुलाई, 2014)	354	2936	–
22.	अर्जुन जादव **बनाम** पश्चिमी बंगाल राज्य और अन्य (2 जुलाई, 2014)	370	–	–
23.	भारतीय जीवन बीमा निगम और अन्य **बनाम** त्रिवेणी शरन मिश्रा (2 सितम्बर, 2014)	380	–	10 346
24.	आशीष कुमार सामंत और अन्य **बनाम** पश्चिमी बंगाल राज्य और अन्य (4 सितम्बर, 2014)	391	–	10 357
25.	तनुआ रबिदास **बनाम** असम राज्य (4 सितम्बर, 2014)	397	3769	12 587

1	2	3	4	5
26.	नरेन्द्र सिंह **बनाम** न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य (4 सितम्बर, 2014)	[2014] 4 403	2014 3761	(2014) 9 324
27.	लीला राजगोपाल और अन्य **बनाम** कमला मेनन कोचरन और अन्य (8 सितम्बर, 2014)	412	2015 107	–
28.	एन. पदमम्मा और अन्य **बनाम** एस. रामकृष्ण रेड्डी और अन्य (23 सितम्बर, 2014)	425	–	–
29.	ओम प्रकाश **बनाम** हरियाणा राज्य (14 अक्तूबर, 2014)	446	–	5 753
30.	ओ. एम. चेरियन **उर्फ** थंकाचन **बनाम** केरल राज्य और अन्य (11 नवम्बर, 2014)	455	303	–

सरोज

बनाम

पश्चिमी बंगाल राज्य

3 अप्रैल, 2014

न्यायमूर्ति टी. एस. ठाकुर और न्यायमूर्ति सी. नागप्पन

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 और 304 भाग-1 – हत्या – आपराधिक मानव वध – अंतर – रात्रि में मृतक का अपीलार्थियों के घर में घुसपैठिए के रूप में प्रवेश करना – अपीलार्थियों द्वारा मृतक की अचानक और गंभीर प्रकोपन के कारण पिटाई किया जाना – अपीलार्थियों द्वारा ऐसी शारीरिक क्षति कारित किए जाने के आशय से मृत्यु हुई है जिससे मृत्यु संभावित है और मृत्यु कारित करने का पूर्व-चिंतन नहीं किया गया है, तब अपीलार्थी हत्या नहीं अपितु हत्या की कोटि में न आने वाले मानव वध के अपराध का दोषी होगा ।

इस मामले में अभियुक्त-1 से अभियुक्त-4 को विचारण न्यायालय द्वारा दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए आरोपित और दोषसिद्ध किया गया था । इन चारों अभियुक्तों ने विचारण न्यायालय के आदेश के विरुद्ध कलकत्ता उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्च न्यायालय ने अभियुक्त-1 से अभियुक्त-3 की अपील खारिज कर दी । उच्च न्यायालय के इस आदेश से व्यथित होकर इन तीनों अभियुक्तों ने उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय ने दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन अपराध के लिए की गई उनकी दोषसिद्धि को अपास्त करते हुए उन्हें दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 304 भाग-1 के अधीन दोषसिद्ध किया और इस प्रकार अपील भागतः मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों अर्थात् अभि. सा. 1 से अभि. सा. 4, अभि. सा. 9 और अभि. सा. 12 के परिसाक्ष्यों से यह सिद्ध हो गया है कि घटना के दौरान इस मामले में के अपीलार्थी/अभियुक्त-1 और 3 ने अन्य अभियुक्तों के साथ मिलकर लोहे के सरिए और लाठी से सुकुमार रे की

पिटाई की है । इस मामले में अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए चिकित्सीय साक्ष्य से यह भी साबित हो गया है कि घटना के दौरान पहुंची क्षतियों से सुकुमार रे की मृत्यु हुई है । यह विवादित नहीं है कि बंदना पांचाल और सुकुमार रे के बीच प्रेम प्रसंग था और बंदना पांचाल के परिवार के सदस्यों को यह अच्छा नहीं लगा था । घटना के दिन लगभग 8.00 बजे अपराह्न में सुकुमार रे बंदना पांचाल से मिलने के लिए उसके घर गया । रात्रि में सुकुमार रे की मौजूदगी से खिन्न होकर अपीलार्थी और अन्य अभियुक्तों ने सुकुमार रे की पिटाई की और उसे मकान के प्रथम तल से भूतल पर लकड़ी के जीने से घसीटते हुए लेकर आए जिसके परिणामस्वरूप सुकुमार रे को क्षतियां पहुंचीं । कोई भी व्यक्ति रात्रि में ऐसे घुसपैठिए का अपने मकान के अंदर आना सहन नहीं करेगा । किसी भी तरह से यह पूर्व-चिंतन का मामला नहीं हो सकता और यह गंभीर और अचानक प्रकोपन का मामला है और यह दंड संहिता की धारा 300 के प्रथम अपवाद के अधीन आएगा । मृतक को पहुंची क्षतियों की प्रकृति और ऊपर उल्लिखित परिस्थितियों पर विचार करते हुए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अपीलार्थियों/अभियुक्तों द्वारा ऐसी शारीरिक क्षति कारित करने के आशय से मृत्यु हुई है जिससे मृत्यु संभावित हो, अतः यह अपराध दंड संहिता की धारा 304 के प्रथम भाग के अंतर्गत पूर्णतया आता है और अपीलार्थी उक्त अपराध के लिए दोषसिद्ध किए जाने के जिम्मेदार हैं । दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन अपीलार्थी/ अभियुक्त-1 और अभियुक्त-3 की दोषसिद्धि अपास्त किए जाने योग्य है । (पैरा 6, 8 और 9)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[2011]	(2011) 14 एस. सी. सी. 678 : **पंजाब राज्य** बनाम **जगतार सिंह और अन्य** ;	8
[2011]	(2011) 2 एस. सी. सी. 123 : **मंगेश** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ।	8

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2014 की दांडिक अपील सं. 734.

2002 की दांडिक अपील सं. 207 में कलकत्ता उच्च न्यायालय के तारीख 12 मई, 2008 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से श्री ए. के. चावला

प्रत्यर्थी की ओर से श्री अनीप सचदे और सुश्री शगुन मट्टा

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति सी. नागप्पन ने दिया ।

न्या. नागप्पन – इजाजत प्रदान की जाती है ।

2. यह अपील 2002 की दांडिक अपील सं. 207 में कलकत्ता उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध की गई है ।

3. इस मामले में के अपीलार्थी 2000 के सेशन विचारण मामला सं. XXX (अप्रैल) में अभियुक्त-1 और अभियुक्त-3 थे और यह विचारण मामला चतुर्थ अपर सेशन न्यायाधीश हावड़ा के समक्ष चल रहा था और इन अभियुक्तों का अन्य 2 अभियुक्तों के साथ विचारण किया गया था और सभी अभियुक्तों को भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया था और प्रत्येक अभियुक्त को आजीवन कारावास भोगने और 10,000/- रुपए का संदाय करने जिसका व्यतिक्रम किए जाने पर एक वर्ष का कठोर कारावास भोगने का दंडादेश दिया गया था । दोषसिद्धि और दंडादेश से व्यथित होकर अभियुक्त-1 से अभियुक्त-4 ने 2002 की दांडिक अपील सं. 207 प्रस्तुत की थी और उच्च न्यायालय ने अभियुक्त-1 से अभियुक्त-3 द्वारा फाइल की गई अपील तारीख 12 मई, 2008 के आक्षेपित निर्णय द्वारा खारिज कर दी । उच्च न्यायालय के इस आदेश को चुनौती देते हुए उन्होंने वर्तमान अपील फाइल की है ।

4. संक्षेप में, अभियोजन पक्षकथन इस प्रकार है : सरोज **उर्फ** सूरज पांचाल (अभियुक्त-1), अनिल पांचाल (अभियुक्त-3) का बड़ा भाई है । तपन पांचाल (अभियुक्त-2) और स्वपन पांचाल (अभियुक्त-4), सरोज **उर्फ** सूरज पांचाल (अभियुक्त-1) के पुत्र हैं । श्रीकांत रे (अभि. सा. 1) और समीर रे (अभि. सा. 9) मृतक सुकुमार रे के भाई हैं । ये सभी व्यक्ति बंगालपुर ग्राम के निवासी हैं और उनके मकान पास-पास हैं । सुकुमार रे और सरोज **उर्फ** सूरज पांचाल (अभियुक्त-1) की पुत्री कुमारी बंदना पांचाल जिसकी आयु लगभग 20 वर्ष थी, के बीच प्रेम प्रसंग चल रहा था । तारीख 10 जुलाई, 1990 को लगभग 8.00 बजे अपराह्न में सरोज **उर्फ** सूरज पांचाल (अभियुक्त-1) के मकान के प्रथम तल से चीख-पुकार सुनाई दी और अभि. सा. 1 से अभि. सा. 4, अभि. सा. 9 और अभि. सा. 12 वहां गए और उन्होंने देखा कि अभियुक्त सं. 1 से 4, सुकुमार रे को लोहे के

सरिए और लाठी से पिटाई कर रहे हैं और यह भी देखा कि वे उसे उसके हाथों और टांगों को बांधकर लकड़ी के जीने से प्रथम तल से भूतल पर घसीटते हुए ला रहे थे और गोबिन्द मंडल के पास लाकर छोड़ दिया । तपन कुमार प्रमाणिक (अभि. सा. 11) अपनी ट्रॉली वैन से आहत सुकुमार रे को बगनान अस्पताल ले गया । तारीख 10 जुलाई, 1990 को श्रीकांत रे (अभि. सा. 1) ने बगनान पुलिस थाने में 11.25 बजे अपराह्न में लिखित शिकायत दर्ज कराई । प्रदर्श-2 रोजनामचे में की गई प्रविष्टि है । पुलिस उप निरीक्षक (अभि. सा. 13) ने अभियुक्तों के विरुद्ध मामला रजिस्ट्रीकृत किया और इस संबंध में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट प्रदर्श-3 है । तारीख 11 जुलाई, 1990 को 4.00 बजे अपराह्न में सुकुमार रे की मृत्यु हो गई ।

5. डा. कुमुद रंजन चटर्जी (अभि. सा. 14) ने शवपरीक्षण किया और निम्न क्षतियां पाईं :–

(i) बाईं टांग पर 2 इंच × 2 इंच नाप की खरोंच है ;

(ii) बाईं कर्णपटह पर रगड़ का चिह्न है और आंख के चारों ओर कालापन है ;

(iii) बाएं पश्चकपालीय भाग में 4 इंच × 1 इंच माप का विदीर्ण घाव है जो अस्थि तक गहरा है ;

(iv) दाएं कर्णपटह भाग में 2 इंच × 0.5 इंच माप का विदीर्ण घाव है जो अस्थि तक गहरा है ;

विच्छेदन किए जाने पर चिकित्सक ने करोटि पर बहुसंख्यीय रक्त के धब्बे पाए, दाएं कर्णपटह-पश्चकपालीय भाग में अस्थि भंग पाया गया है जिसमें मस्तिष्क के ऊतकों में भीतर की ओर रक्तस्राव है ।

चिकित्सक ने यह राय दी है कि मृत्यु का विशेष कारण सिर में आई क्षति है । अन्वेषण पूरा करने के पश्चात् अभियुक्त-1 से 4 के विरुद्ध अंतिम रिपोर्ट फाइल की गई । अभियोजन पक्ष ने अपना पक्षकथन साबित करने के लिए अभि. सा. 1 से अभि. सा. 19 की परीक्षा की है और दस्तावेजों को चिह्नांकित किया है । प्रतिरक्षा पक्ष की ओर से कोई भी साक्षी प्रस्तुत नहीं किया गया है । विचारण न्यायालय ने अभियुक्त-1 से 4 को हत्या का

दोषी पाया था और उन्हें ऊपर उल्लिखित रूप में दंडादिष्ट किया था । अपील किए जाने पर (उच्च न्यायालय द्वारा) अभियुक्त-1 और अभियुक्त-3 की दोषसिद्धि और अधिरोपित दंडादेश की पुष्टि की गई । इस आदेश को चुनौती देते हुए उन्होंने यह अपील फाइल की है और इस न्यायालय ने तारीख 19 अक्तूबर, 2012 के आदेश द्वारा केवल अपराध की प्रकृति और दंडादेश के प्रश्न के आधार पर नोटिस जारी किया है ।

6. प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों अर्थात् अभि. सा. 1 से अभि. सा. 4, अभि. सा. 9 और अभि. सा. 12 के परिसाक्ष्यों से यह सिद्ध हो गया है कि घटना के दौरान इस मामले में के अपीलार्थी/अभियुक्त-1 और 3 ने अन्य अभियुक्तों के साथ मिलकर लोहे के सरिए और लाठी से सुकुमार रे की पिटाई की है । इस मामले में अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए चिकित्सीय साक्ष्य से यह भी साबित हो गया है कि घटना के दौरान पहुंची क्षतियों से सुकुमार रे की मृत्यु हुई है ।

7. अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि यह घटना अचानक प्रकोपन के कारण हुई है और अपीलार्थियों द्वारा पूर्व-चिंतन के बिना कृत्य किया गया है और यह कृत्य दंड संहिता की धारा 300 के प्रथम अपवाद के अधीन आएगा और प्रथम अपीलार्थी की आयु 80 वर्ष और द्वितीय अपीलार्थी की आयु 76 वर्ष है । इसके प्रतिकूल प्रत्यर्थी राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि अपीलार्थियों की दोषसिद्धि और उन पर अधिरोपित दंडादेश उचित हैं ।

8. यह विवादित नहीं है कि बंदना पांचाल और सुकुमार रे के बीच प्रेम प्रसंग था और बंदना पांचाल के परिवार के सदस्यों को यह अच्छा नहीं लगा था । घटना के दिन लगभग 8.00 बजे अपराह्न में सुकुमार रे बंदना पांचाल से मिलने के लिए उसके घर गया । रात्रि में सुकुमार रे की मौजूदगी से खिन्न होकर अपीलार्थी और अन्य अभियुक्तों ने सुकुमार रे की पिटाई की और उसे मकान के प्रथम तल से भूतल पर लकड़ी के जीने से घसीटते हुए लेकर आए जिसके परिणामस्वरूप सुकुमार रे को क्षतियां पहुंचीं । कोई भी व्यक्ति रात्रि में ऐसे घुसपैठिए का अपने मकान के अंदर आना सहन नहीं करेगा । किसी भी तरह से यह पूर्व-चिंतन का मामला नहीं हो सकता और यह गंभीर और अचानक प्रकोपन का मामला है और यह दंड संहिता की धारा 300 के प्रथम अपवाद के अधीन आएगा । ऐसी ही स्थिति

मंगेश बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] और **पंजाब राज्य** बनाम **जगतार सिंह और अन्य**[2] वाले मामलों में किए गए विनिश्चयों में दिखाई देती है ।

9. मृतक को पहुंची क्षतियों की प्रकृति और ऊपर उल्लिखित परिस्थितियों पर विचार करते हुए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अपीलार्थियों/अभियुक्तों द्वारा ऐसी शारीरिक क्षति कारित करने के आशय से मृत्यु हुई है जिससे मृत्यु संभावित हो, अतः यह अपराध दंड संहिता की धारा 304 के प्रथम भाग के अंतर्गत पूर्णतया आता है और अपीलार्थी उक्त अपराध के लिए दोषसिद्ध किए जाने के जिम्मेदार हैं । दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन अपीलार्थी/अभियुक्त-1 और अभियुक्त-3 की दोषसिद्धि अपास्त किए जाने योग्य है ।

10. हमारी यह सुविचारित राय है कि दंड संहिता की धारा 304 भाग-1 के अधीन दोषसिद्धि के लिए प्रत्येक अपीलार्थी पर सात वर्ष का कठोर कारावास अधिरोपित किए जाने से न्याय होगा ।

11. परिणामतः, दांडिक अपील भागतः मंजूर की जाती है और दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन अपराध के लिए अपीलार्थियों की दोषसिद्धि और प्रत्येक अपीलार्थी पर अधिरोपित आजीवन कारावास का दंडादेश अपास्त किए जाते हैं और इन अपराधों के बजाय उन्हें दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 304 भाग-1 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध किया जाता है और प्रत्येक अपीलार्थी को सात वर्ष का कठोर कारावास भोगने का दंडादेश दिया जाता है ।

अपील भागतः मंजूर की गई ।

अस./अनू.

---

[1] (2011) 2 एस. सी. सी. 123.

[2] (2011) 14 एस. सी. सी. 678.

अमर सिंह यादव

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

1 जुलाई, 2014

न्यायमूर्ति सुधांशु ज्योति मुखोपाध्याय और न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302, 307 और 436 – हत्या – अभियुक्त द्वारा पत्नी और दो बच्चों की आग में जलाकर हत्या किया जाना – मामले विरल से विरलतम मामले की कोटि में न आना – अभियुक्त में सुधार और उसका पुनर्वास होने की संभावना – न्यायालय का यह समाधान होने पर कि ऐसा कोई कारण नहीं है कि अभियुक्त में सुधार नहीं आ सका, उसका पुनर्वास नहीं किया जा सकता, वह आगे भी हिंसक अपराध करता रहेगा और समाज के लिए संकट बना रहेगा, मामले को विरल से विरलतम मामले की कोटि में नहीं रखा जा सकता और मृत्यु दंडादेश देना उचित नहीं होगा ।

इस मामले में अभियुक्त अमर सिंह का विवाह उर्मिला देवी के साथ हुआ था जो पुलिस कांस्टेबल था । इस विवाह से तीन पुत्रियों तथा एक पुत्र का जन्म हुआ । अमर सिंह के दो अन्य महिलाओं के साथ अयुक्त संबंध स्थापित हो गए थे जिनके परिणामस्वरूप परिवार में विवाद हो गया । परिवार के खर्चों का वहन करने के लिए उर्मिला अभियुक्त का आधा वेतन उसके विभाग से लेने लगी । वेतन की इस प्रकार कटौती कराए जाने पर अभियुक्त ने अपनी पत्नी और चारों बच्चों की हत्या करने का निश्चय किया और उसने इन सब को मारुति वैन में बंद करके पेट्रोल छिड़कर आग में जला दिया जिसके परिणामस्वरूप उसकी पत्नी और दो पुत्रियों की मृत्यु हो गई और उसकी एक पुत्री और एक पुत्र किसी प्रकार बच गए । अभियुक्त का विचारण दंड संहिता की धारा 307/302/436 के अधीन किया गया और उसे इन अपराधों का दोषी पाया गया साथ ही उसे धारा 302 के अधीन अपराध के लिए मृत्यु दंडादेश दिया गया । इस आदेश से व्यथित होकर अभियुक्त-अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की और उच्च न्यायालय ने भी विचारण न्यायालय के आदेश की पुष्टि करते हुए अभियुक्त-अपीलार्थी की अपील खारिज कर दी । उच्च न्यायालय के इस आदेश से व्यथित होकर अभियुक्त-अपीलार्थी ने उच्चतम

न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की जिसमें अभियुक्त-अपीलार्थी की दोषसिद्धि की पुष्टि करते हुए मृत्यु दंडादेश को आजीवन कारावास में परिवर्तित कर दिया । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील भागतः मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – उर्मिला, पूजा और ममता के मृत्युकालिक कथन क्रमशः प्रदर्श क-18, प्रदर्श क-17 और प्रदर्श क-15 हैं और उनमें उल्लिखित तथ्यों की संपुष्टि आहत प्रत्यक्षदर्शी साक्षी सुधा (अभि. सा. 5) और पंकज सिंह (अभि. सा. 6) के कथनों से होती है । केवल यही कहा जा सकता है कि अभियुक्त ने ही मृतकों की मृत्यु कारित की है । मृत्युकालिक कथनों के आधार पर अभियुक्त स्पष्ट रूप से आलिप्त होता है । ऐसे कोई भी संदिग्ध संघटक नहीं हैं जिनसे मृत्युकालिक कथनों की विश्वसनीयता प्रभावित हो सके विशेषकर ऐसी स्थिति में कि मृतक अभियुक्त के नातेदार हैं । इस संबंध में कोई भी स्पष्ट कारण दिखाई नहीं देता है कि मृतका उर्मिला (पत्नी), ममता (पुत्री), पूजा (पुत्री) ने अपने पति/पिता को हत्या के अपराध से क्यों संबद्ध किया है । मात्र इस तथ्य से मृत्युकालिक कथन का साक्ष्यिक महत्व कम नहीं हो जाता है कि उस चिकित्सक की परीक्षा नहीं कराई गई है जिसकी मौजूदगी में मृत्युकालिक कथन अभिलिखित किया गया था और/या जिसने उस पर अपना पृष्ठांकन किया था । पुलिस निरीक्षक उमा शंकर यादव (अभि. सा. 4) के साक्ष्य की संपुष्टि प्रत्यक्षदर्शी साक्षी सुधा (अभि. सा. 5) और पंकज (अभि. सा. 6) के साक्ष्य से होती है । प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के कथनों में ऐसा कोई भी विरोधाभास नहीं है जिससे उन्हें अविश्वसनीय ठहराया जा सके । विचारण न्यायालय ने दंड संहिता की धारा 302, 307 और 436 के अधीन अपराध के लिए अपीलार्थी को ठीक ही दोषसिद्ध किया है जिसकी पुष्टि उच्च न्यायालय द्वारा की गई है । विचार के लिए अगला प्रश्न यह है कि क्या अपीलार्थी को अधिनिर्णीत मृत्यु दंड मामले के तथ्य और परिस्थितियों के आधार पर अत्यधिक और असामानुपातिक है अर्थात् क्या वर्तमान मामला "विरल से विरलतम मामले" की कोटि में आता है । यद्यपि न्यायालय का यह समाधान हो गया है कि अभियोजन पक्ष ने सभी संदेहों के परे अभियुक्त का दोष साबित कर दिया है और अभियुक्त ने अत्यंत क्रूर और अमानवीय रीति में अपराध कारित किया है और असहाय पत्नी तथा छोटे-छोटे बच्चे जो अपीलार्थी के राक्षसी कृत्य और आवेश के शिकार हुए हैं, फिर भी यह मामला विरल से विरलतम मामले के सिद्धांत की परिधि के भीतर पूर्णतया नहीं आता है, किंतु अपीलार्थी के साथ कोई भी उदारता नहीं बरती जा सकती । यह विश्वास करने का कोई कारण नहीं है कि अभियुक्त में सुधार नहीं आ सकता या

उसका पुनर्वास नहीं किया जा सकता और यह भी विश्वास करने का कोई कारण नहीं है कि वह आगे भी हिंसक अपराध करता रहेगा और वह समाज के लिए संकट बना रहेगा । वर्तमान मामले में उपर्युक्त मामले के तथ्यों और परिस्थितियों तथा ऊपर कथित कारणों को ध्यान में रखते हुए न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि अभियुक्त अमर सिंह यादव को मृत्यु दंडादेश अधिरोपित किया जाना वांछित नहीं है । तदनुसार न्यायालय ने इस दंडादेश का आजीवन कारावास में लघूकरण किया है । इसके अतिरिक्त, न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि अभियुक्त अमर सिंह यादव समयपूर्व कारावास से छोड़े जाने के आवेदन पर सुनवाई किए जाने से पहले कारावास में कम से कम 30 वर्ष तक रहेगा । इस प्रकार दांडिक अपीलों और निर्देश का निपटारा किया जाता है, अभियुक्त अमर सिंह यादव के दंडादेश को आजीवन कारावास में उपांतरित किया जाता है और वह बिना किसी परिहार के 30 वर्ष की नियत अवधि के लिए कारावास भोगेगा । (पैरा 18, 19, 26, 27 और 30)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2013]	(2013) 5 एस. सी. सी. 546 : **शंकर किशन राव खड़े** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	23
[2012]	(2012) 6 एस. सी. सी. 107 : **संदीप** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ;	25,29
[2012]	(2012) 4 एस. सी. सी. 257 : **रामनरेश और अन्य** बनाम **छत्तीसगढ़ राज्य** ;	22
[2011]	(2011) 12 एस. सी. सी. 56 : **हरेश मोहन दास राजपूत** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	24
[2010]	(2010) 1 एस. सी. सी. 573 : **रामराज** बनाम **छत्तीसगढ़ राज्य** ;	28
[2008]	(2008) 13 एस. सी. सी. 767 : **स्वामी श्रद्धानंद** बनाम **कर्नाटक राज्य** ;	28
[1998]	(1998) 3 एस. सी. सी. 625 : **रोनी** उर्फ **रोनाल्ड जेम्स अल्वारिस और अन्य** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	21

[1989]	(1989) 3 एस. सी. सी. 5 : **अल्लाउद्दीन मियां और अन्य** बनाम **बिहार राज्य** ;	21
[1983]	(1983) 3 एस. सी. सी. 470 : **माछी सिंह और अन्य** बनाम **पंजाब राज्य** ;	20,22
[1980]	(1980) 2 एस. सी. सी. 684 : **बचन सिंह** बनाम **पंजाब राज्य** ।	20,22

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2010 की दांडिक अपील सं. 967-968.

2009 की दांडिक अपील सं. 1942 और 2009 की निर्देश सं. 5 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के तारीख 16 फरवरी, 2010 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री चाचल कुमार गांगुली, सुश्री सोनी कुंडू और अनुराग राणा

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री रत्नाकर दास (वरिष्ठ अधिवक्ता) और आदर्श उपाध्याय

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति सुधांशु ज्योति मुखोपाध्याय ने दिया ।

न्या. मुखोपाध्याय – यह अपीलें 2009 की दांडिक अपील सं. 1942 और 2009 के निर्देश सं. 5 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए तारीख 16 फरवरी, 2010 के एक ही निर्णय के विरुद्ध फाइल की गई हैं । उच्च न्यायालय ने आक्षेपित एक ही निर्णय द्वारा अपील खारिज की और भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में "दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 302, 307 और 436 के अधीन अपराध के लिए की गई दोषसिद्धि और दंडादेश की पुष्टि की है, साथ ही मृत्यु दंड की पुष्टि करने के लिए फाइल किए गए निर्देश का निपटारा किया है ।

2. संक्षेप में अभियोजन पक्षकथन इस प्रकार है कि उर्मिला देवी का विवाह अभियुक्त अमर सिंह यादव के साथ हुआ था जो पुलिस चौकी गुरदेव पैलेस, कानपुर में कांस्टेबल के पद पर तैनात था । इस विवाह-बंधन से तीन पुत्रियों अर्थात् ममता आयु 24 वर्ष, पूजा आयु 22 वर्ष और सुधा आयु 18 वर्ष तथा एक पुत्र पंकज यादव आयु 13 वर्ष ने जन्म लिया । अमर सिंह के दो अन्य महिलाओं अर्थात् कानपुर की निवासी शशि और भरथाना की निवासी रानी के साथ अयुक्त संबंध स्थापित हो गए जिनके

परिणामस्वरूप परिवार में विवाद हो गया । परिवार के खर्चों का वहन करने के लिए उर्मिला अभियुक्त का आधा वेतन सीधे ही विभाग से लेने लगी । वेतन की इस प्रकार कटौती कराने और अयुक्त संबंधों के कारण अभियुक्त ने अपनी पत्नी उर्मिला और चारों बच्चों की हत्या करने का निश्चय किया । इस संकल्प के अनुसरण में अभियुक्त मारुति वैन सं. यूपी 78सी 8262 से जिसे उसका एक साथी चला रहा था, अपनी पत्नी उर्मिला के पास आया और उसने अपनी पत्नी और चारों बच्चों को मारुति वैन में इस बहाने से अपने साथ ले गया कि उनमें से एक पुत्री के विवाह के लिए खरीदारी करनी है । अभियोजन पक्ष का यह भी पक्षकथन है कि जब सूर्यास्त हो गया, वापस आते समय अभियुक्त ने जहांनगंज रोड पर उधारनपुर ब्रिज से 25-30 मीटर आगे मारुति वैन रुकवाई और वह वैन के चालक के साथ वाहन से बाहर आया । उन्होंने वैन के दरवाजों को बंद करके उसके चारों ओर पेट्रोल छिड़क दिया । इसके पश्चात् अभियुक्त ने अपने साथी के साथ मिलकर मारुति वैन में इस आशय से आग लगा दी कि मारुति वैन में बैठे सभी लोगों की जलकर मृत्यु हो जाए । इसके पश्चात्, अभियुक्त और चालक ने वाहन को गड्ढे में गिराने का प्रयास किया ताकि वाहन में बैठा कोई भी व्यक्ति बच न सके किंतु इसी दौरान पुलिस थाना छिबरामऊ से एक पुलिस निरीक्षक अपने एक साथी पुलिस कांस्टेबल के साथ वहां पहुंचा और उसने अपने जीवन की परवाह किए बिना जलते हुए वाहन के दरवाजे तोड़कर खोले और अभियुक्त की पत्नी और चारों बच्चों को उससे बाहर निकाला । उसने आहतों को तुरंत उपचार के लिए अस्पताल भेजा । शिकायतकर्ता सूचना प्राप्त होने पर तुरंत लोहिया अस्पताल, फर्रुखाबाद पहुंचा जहां पर उसकी बहिन अर्थात् उर्मिला और उसके चार बच्चों ने उसे संपूर्ण घटना के बारे में बताया ।

3. पुलिस कांस्टेबल सं. 286 अर्थात् ध्रुव नारायण (अभि. सा. 14) ने दंड संहिता की धारा 436 और 307 के अधीन 1.30 बजे पूर्वाह्न में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 310/2005 रजिस्ट्रीकृत कराई । उसे आर.टी. सैट पर निरीक्षक उमा शंकर यादव से यह निदेश प्राप्त हुआ कि अतिरिक्त पुलिस बल और तैनात किया जाए । इस पर पुलिस उपनिरीक्षक प्रमोद कुमार कटियार अन्य कांस्टेबलों के साथ घटनास्थल पर गया । अगले दिन लगभग 7.20 बजे पूर्वाह्न में पुलिस उपनिरीक्षक प्रमोद कुमार कटियार पुलिस थाना वापस आया ; रोजनामचे में यह दर्ज किया गया कि उसने सभी आहतों को राममनोहर लोहिया अस्पताल में पुलिस निरीक्षक उमा शंकर यादव के निदेशानुसार भर्ती करा दिया है ।

4. मामला रजिस्ट्रीकृत किए जाने के पश्चात् उसका अन्वेषण पुलिस उपनिरीक्षक प्रमोद कुमार कटियार (अभि. सा. 13) को सौंप दिया गया । वह घटनास्थल पर गया और उसने स्थल नक्शा (प्रदर्श क-20) तैयार किया । इसके पश्चात् वह लोहिया अस्पताल, फर्रुखाबाद गया और उर्मिला देवी, ममता, पूजा, सुधा और पंकज सिंह के कथन क्रमशः प्रदर्श क-18, प्रदर्श क-15, प्रदर्श क-17, प्रदर्श क-16 और प्रदर्श क-19 अभिलिखित किए । आहतों में उर्मिला देवी, ममता और पूजा की मृत्यु हो गई । अभियुक्त का मामला दंड संहिता की धारा 307/302/436 के अधीन विचारण किए जाने के लिए भेज दिया गया ।

5. अभियोजन पक्षकथन के समर्थन में अभियोजन पक्ष द्वारा कुल मिलाकर 15 साक्षियों की परीक्षा कराई गई जिनमें सुधा (अभि. सा. 5) और पंकज सिंह (अभि. सा. 6) आहत साक्षी हैं । दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन प्रतिरक्षा कथन में अभियुक्त ने अभिकथनों से इनकार किया है । उर्मिला देवी, ममता और पूजा के मृत्युकालिक कथनों क्रमशः प्रदर्श क-18, प्रदर्श क-15 और प्रदर्श क-17 सहित कुल मिलाकर 17 प्रदर्श प्रस्तुत किए गए हैं ।

6. मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य का मूल्यांकन करने और पक्षकारों को सुनने के पश्चात्, सेशन न्यायाधीश, कानपुर ने अपीलार्थी-अभियुक्त को दंड संहिता की धारा 302, 307 और 436 के अधीन अपराध का दोषी अभिनिर्धारित किया । अभियुक्त को दंड संहिता की धारा 307 के अधीन अपराध कारित करने के लिए दोषसिद्ध किया और आजीवन कठोर कारावास भोगने के लिए दंडादिष्ट किया । इसके अतिरिक्त उसे दंड संहिता की धारा 436 के अधीन अपराध कारित करने के लिए दोषसिद्ध किया और सात वर्ष का कठोर कारावास भोगने के लिए दंडादिष्ट किया । अभियुक्त को दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध किया और उसे 10,000/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने के साथ मृत्यु दंडादेश दिया गया और यह भी निदेश दिया गया कि अभियुक्त फांसी पर मृत्यु हो जाने तक लटकाया जाएगा ।

7. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने आक्षेपित निर्णय का प्रतिरोध करते हुए निम्न दलीलें दी हैं :–

(i) विभाग द्वारा अपीलार्थी के वेतन से 50% रकम की कटौती करके उसकी पत्नी को संदाय किया जाना संपूर्ण परिवार को नष्ट

करने का हेतु नहीं हो सकता ।

(ii) अपीलार्थी को इसलिए फंसाया गया है कि उसके दो अन्य महिलाओं के साथ विवाहेत्तर संबंध थे ।

(iii) यदि अपीलार्थी का हेतु अपनी पत्नी का हत्या करना था तब भी इसका कोई कारण नहीं था कि वह दो पुत्रियों की हत्या करता विशेषकर ऐसी स्थिति में जब बड़ी पुत्री का विवाह होने जा रहा हो और इसी प्रयोजन के लिए सामान खरीदा गया हो ।

(iv) जिस व्यक्ति ने अभि. सा. 4 को यह सूचना दी थी कि वाहन को आग लगा दी गई है, उसे अभियोजन पक्ष द्वारा न्यायालय में प्रस्तुत नहीं किया गया है ।

(v) मृत्युकालिक कथन पर विश्वास नहीं किया जा सकता है क्योंकि जिस चिकित्सक ने उसकी परीक्षा की थी और आहतों के कथन देने के लिए उनका ठीक अवस्था में होने का प्रमाणपत्र दिया था, न्यायालय में उसकी परीक्षा नहीं कराई गई है । आहत साक्षी अभि. सा. 5 और अभि. सा. 6 ने मृत्युकालिक कथन के संबंध में विरोधाभासी साक्ष्य दिया है ।

(vi) किसी भी साक्षी ने यह अभिसाक्ष्य नहीं दिया है कि उन्होंने अपीलार्थी को पेट्रोल छिड़कते हुए देखा था । इसलिए, ऐसे व्यक्ति की शनाख्त संदिग्ध हो जाती है ।

(vii) वैन के चालक को गिरफ्तार नहीं किया गया है और न ही उसकी परीक्षा कराई गई है तथा इसके साथ-साथ उन दो महिलाओं की भी परीक्षा नहीं कराई गई है जिनके साथ अपीलार्थी के विवाहेत्तर संबंध थे ।

(viii) अभिकथित घटना 'विरल से विरलतम मामले' की कोटि में नहीं आती है और इसीलिए इसमें मृत्यु दंड दिया जाना अनावश्यक है । यह मृत्यु दंड अधिरोपित किए जाने का उचित मामला नहीं है ।

8. शिकायतकर्ता सतेन्द्र सिंह (अभि. सा. 1) मृतका उर्मिला का भाई है जिसने प्रथमइत्तिला रिपोर्ट की अंतर्वस्तु साबित की है । वह प्रश्नगत घटना का प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं है । इस साक्षी ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि तारीख 29 अप्रैल, 2005 को 9.00 बजे अपराह्न में उसे पुलिस थाने से यह सूचना मिली थी कि उसकी बहिन और चार बच्चों को मारुति वैन

में बंद करके आग में जला दिया है । वह 11.00 बजे पूर्वाह्न में लोहिया अस्पताल पहुंचा और उसने सभी व्यक्तियों को दाह-क्षतियों से ग्रस्त पाया उसकी बहिन ने उसे पहचान लिया और उसे संपूर्ण घटना बताई । अभि. सा. 1 ने यह सब घटना पुलिस को बताई । अभियुक्त अमर सिंह यादव और चालक घटनास्थल से फरार हो गए । पुलिस ने जलती हुई मारुति वैन का दरवाजा तोड़कर आहतों को बाहर निकाला ।

9. इस साक्षी ने इस घटना को कारित करने के लिए अमर सिंह के हेतु को स्पष्ट किया है कि उसकी बहिन ने अमर सिंह को मिलने वाले वेतन में से आधा वेतन पाने के लिए पुलिस अधीक्षक कानपुर से आदेश प्राप्त कर लिया था क्योंकि अमर सिंह दो महिलाओं के साथ अयुक्त संबंध रखे हुए था । ममता के विवाह की तारीख 11 मई, 2005 तय की गई थी और ममता के विवाह के लिए खरीदारी का बहाना करके अमर सिंह अपनी पत्नी और सभी बच्चों को बाजार ले गया ।

10. पुलिस उपनिरीक्षक उमा शंकर यादव (अभि. सा. 4) ने न्यायालय में यह साक्ष्य दिया है कि तारीख 29 अप्रैल, 2005 को लगभग 8.30 बजे अपराह्न में जब वह किसी वांछनीय अभियुक्त की तलाश में था, उसने उधारनपुर ब्रिज के निकट एक जलती हुई मारुति वैन देखी । वह तुरंत वहां पहुंचा । दो व्यक्ति वहां खड़े हुए थे जो तुरंत घटनास्थल से भाग गए । उसने और उसके साथ आए हुए होमगार्ड ने आग पर रेत फेंककर आग बुझाने का प्रयास किया और जैसे ही आग कम हुई उसने खिड़की के शीशे तोड़ दिए और पांचों व्यक्तियों को मारुति वैन से बाहर निकाल लिया । इस साक्षी ने यह भी बताया है कि उसने सभी आहतों को उपचार के लिए प्राथमिक चिकित्सा केंद्र, छिबरामऊ भेज दिया । इसके पश्चात् उर्मिला ने दो महिलाओं के साथ अभियुक्त द्वारा अयुक्त संबंध रखे जाने के बारे में बताया और उसने यह भी बताया कि अभियुक्त किस प्रकार बहाना बनाकर उन्हें मार्केट में लाया है और मारुति वैन में आग लगाई है ।

11. सुधा (अभि. सा. 5) की आयु 18 वर्ष है जिसने सशपथ यह अभिसाक्ष्य दिया है कि घटना के दिन अर्थात् तारीख 29 अप्रैल, 2005 को उसका पिता (अभियुक्त) मारुति वैन से उसकी माता उर्मिला, बड़ी बहिन ममता, छोटी बहिन पूजा और भाई पंकज को बहिन ममता के विवाह के लिए सामान खरीदने के लिए छिबरामऊ ले गया । छिबरामऊ से कोई भी खरीदारी नहीं की गई । लगभग 6.30 बजे अपराह्न में वे घर के लिए लौटने लगे । वाहन अत्यंत धीमी गति से चल रहा था । उसके पिता ने

छिबरामऊ बस अड्डे पर वाहन रुकवाया जहां पर उसके पिता ने एक घंटे का समय बिताया । 7.15 बजे अपराह्न से 7.30 बजे अपराह्न के बीच सभी को वाहन से ग्राम की ओर ले जाया गया, मारुति वैन को उस स्थान पर रोक दिया गया जहां पर एक बोर्ड लगा हुआ था जिस पर लिखा था, "सावधान ! आगे स्कूल है" । चालक ने यह कहते हुए वाहन रोक दिया कि "कार गर्म हो गई है" । इसके पश्चात् उसके पिता ने यह कहा, "चालक गीला कपड़ा लेने गया है ताकि इंजन को ठंडा किया जा सके" । वैन पुनः चलाई गई और अंत में उसका पिता और चालक खिड़कियों को बंद करने के पश्चात् वैन से बाहर आए । उसके पिता ने पहले ही वैन में पेट्रोल छिड़क दिया था । उसने वैन में तुरंत आग लगा दी और वैन जलने लगी । इसी दौरान पुलिस उन्हें बचाने के लिए वहां पहुंची और उन्हें खिड़कियां तोड़कर पुलिस द्वारा वाहन से बाहर निकाल लिया गया । इस साक्षी ने इस तथ्य को साबित किया है कि उसके पिता के अन्य दो महिलाओं के साथ विवाहेत्तर संबंध थे जिसके कारण उसकी माता ने उसके पिता के वेतन में से आधे वेतन की कटौती कराई थी ।

12. इसी प्रकार, पंकज (अभि. सा. 6) ने सुधा के कथन की संपुष्टि की है । इस साक्षी ने यह कथन किया है कि तारीख 29 अप्रैल, 2005 को उसका पिता अमर सिंह और चालक उन सभी को सामान खरीदने के लिए छिबरामऊ ले गए थे । वापस आते समय काली नदी के निकट कार रुक गई, इसके पश्चात् उन पर तेल छिड़का गया और आग लगा दी गई । उन्होंने बाहर आने का प्रयास किया किंतु उनके पिता और चालक उन्हें जलता हुआ देखते रहे । पंकज ने यह भी कथन किया है कि उसका पिता पुलिस विभाग में कार्यरत था और उसकी तैनाती कल्याणपुर, जिला कानपुर में थी । इस साक्षी ने यह कथन किया है कि उसके पिता और चालक ने उन्हें आग में जलाया है ।

13. अनील कुमार कटियार (अभि. सा. 12) नायब तहसीलदार है जिसने जिला मजिस्ट्रेट से निर्देश प्राप्त करने के पश्चात् आहत सुधा, पूजा, ममता, उर्मिला और पंकज के मृत्युकालिक कथन अभिलिखित किए जिनमें से उर्मिला और पूजा की मृत्यु हो गई । ममता जिसका मृत्युकालिक कथन उपखंड मजिस्ट्रेट (अभि. सा. 10) द्वारा अभिलिखित किया गया था, की भी मृत्यु हो गई । उर्मिला का मृत्युकालिक कथन प्रदर्श क-18 है जो निम्न प्रकार है :–

"मेरा पति अमर सिंह पुलिस विभाग में है और वह कल्याणपुर,

जिला कानपुर में तैनात है । मेरे पति ने मेरे विवाह के पश्चात् दो विवाह और किए हैं । मेरे बच्चे और मैं उसका आधा वेतन प्राप्त कर रहे हैं जिससे हम अपना भरणपोषण कर रहे हैं । इन सभी कारणों से मेरा पति मुझसे और बच्चों से क्रुद्ध था । किंतु कल तारीख 29 अप्रैल, 2005 को हम सभी को यह कहकर छिबरामऊ ले जाया गया कि पुत्री के विवाह के लिए सामान खरीदना है । हमें जानबूझकर छिबरामऊ ले जाया गया था और हमारे कई बार विनती करने के बावजूद हमें विलंब से वापस लाया गया । जब हम वापस आ रहे थे तब ड्राइवर और मेरे पति अमर सिंह ने काली नदी के पुल के निकट यह कहते हुए कार रोक दी कि कार गर्म हो गई है । उसके पश्चात् हम सभी पर तेल छिड़का गया और आग लगा दी गई । जब हमने कार से बाहर निकलने का प्रयास किया तब हमें दोबारा धक्का देकर कार में डाला गया । वे बाहर से हमें आग की लपटों में जलता हुआ देख रहे थे । मुझे चालक का नाम मालूम नहीं है । मेरे पति ने मुझे और मेरे बच्चों को आग में जलाया है और चालक ने ऐसा करने में पूर्ण सहयोग किया है ।"

14. मृतका पूजा ने जो मृत्युकालिक कथन (प्रदर्श क-17) अभि. सा. 12 को दिया है, वह निम्न प्रकार है :–

कल तारीख 29 अप्रैल, 2005 को मेरा पिता अमर सिंह और चालक मुझे, मेरी माता और दोनों बहिनों को अपने साथ मारुति से यह कहकर छिबरामऊ ले गए कि 'दीदी' (बड़ी बहिन) के विवाह के लिए सामान तथा कपड़े आदि खरीदने हैं । छिबरामऊ में दीदी के लिए कुछ सामान खरीदा गया और वहां पर काफी देर हो गई थी । हम सायंकाल में छिबरामऊ से रवाना हो गए और उन्होंने काली नदी के निकट यह कहते हुए कार रोक दी कि कार गर्म हो गई है और इसे ठंडा करना होगा । मारुति रोक कर पिता अमर सिंह और चालक ने हमारे ऊपर तेल छिड़क दिया और आग लगा दी और जब हमने कार से बाहर निकलने का प्रयास किया तब उन्होंने हमें पुनः कार में धकेल दिया । मुझे उस चालक का नाम मालूम नहीं है जो मेरे पिता के साथ था । मेरी माता मेरे पिता का आधा वेतन प्राप्त कर रही थी और इस कारण से मेरा पिता हम सब से खिन्न था । आग लगाने के पश्चात् पिता और चालक फरार हो गए । थोड़ी देर पश्चात् पुलिस ने हमें यहां भर्ती कराया है ।

15. मृतका ममता का मृत्युकालिक कथन (प्रदर्श क-15) नगर मजिस्ट्रेट राजपाल सिंह (अभि. सा. 10) को दिया गया था जो शब्दशः निम्न प्रकार है :–

> "मैं ममता, पुत्री अमर सिंह, निवासी ग्राम मुहम्मदाबाद, जिला फर्रुखाबाद, आयु 20 वर्ष पूर्ण स्वस्थचित्त हूं और मेरे पिता अमर सिंह चालक के साथ मुझे, मेरी माता उर्मिला, शोभा और पंकज को मेरे विवाह से संबंधित सामान की खरीदारी छिबरामऊ से करने के लिए वहां लाए थे । तारीख 29 अप्रैल, 2005 को लगभग 7.30 बजे अपराह्न में जब छिबरामऊ से वापस आ रहे थे तब मुझे मेरी माता उर्मिला, शोभा, पंकज और पूजा को मारुति वैन में काली नदी के निकट बंद कर दिया और कार बंद करने के पूर्व पिताजी ने कहा कि कार गर्म हो गई है और पानी छिड़कने के बहाने से उन्होंने कार के भीतर पेट्रोल छिड़क दिया और आग लगा दी । कार का दरवाजा बाहर से बंद कर दिया गया, मेरे पिता ने आग लगाई, कार का चालक मेरे पिता की सहायता कर रहा था । मेरे पिता आग में जलाकर मेरी और कार के अंदर बंद सभी व्यक्तियों की हत्या करना चाहते थे । मेरे पिता ने दूसरा विवाह कर लिया था । मेरी माता ने उनका वेतन आधा करवा दिया था और उसी समय से मेरे पिता झगड़ा किया करते थे ।"

16. आरंभ के प्रक्रम पर नायब तहसीलदार (अभि. सा. 12) ने सुधा और पंकज के मृत्युकालिक कथन अभिलिखित किए गए किंतु चूंकि दोनों की जान बच गई इसलिए उनके कथनों को केवल प्रदर्श माना गया है । सुधा का कथन (प्रदर्श क-16) निम्न प्रकार है :–

> "कल तारीख 29 अप्रैल, 2005 को सायंकाल में लगभग 7.00 बजे मेरे पिता और चालक ने मेरी माता, मुझे और मेरी दो बहिनों तथा मेरे भाई को कार में बंद कर दिया और आग लगा दी । कार बंद करने के पूर्व सबसे पहले हमारे ऊपर तेल छिड़का गया । हमारे पिता हम सबको छिबरामऊ से बहिन ममता के विवाह के लिए सामान और हम सबके लिए वस्त्र आदि खरीदने के बहाने से वहां लेकर गए थे । छिबरामऊ में बहिन के लिए केवल क्रीम और पाउडर आदि ही खरीदा गया । इसके पश्चात् (हम सब) छिबरामऊ से देरी से रवाना हुए । वापस आते समय कार पुल के निकट यह कहते हुए रोक दी गई कि कार गर्म हो गई है और इसे ठंडा करना है और अचानक ही हमें आग

में जला दिया । जब हम आग में जल रहे थे उस समय मेरे पिता और चालक बाहर से हमें देख रहे थे और जब मेरी बहिन ने कार से बाहर निकलने का प्रयास किया तब मेरे पिता ने उसे पुनः कार के अंदर धकेल दिया । मेरे पिता पुलिस विभाग में हैं । मुझे मेरे पिता और चालक द्वारा आग में जलाया गया । हम सभी को इन व्यक्तियों ने ही आग में जलाया है ।"

17. पंकज सिंह का कथन (प्रदर्श क-19) निम्न प्रकार है :–

"कल तारीख 29 अप्रैल, 2005 को मेरे पिता अमर सिंह और चालक मुझे और मेरी तीन बहिनों तथा एक भाई को मारुति से खरीदारी करने के लिए छिबरामऊ ले गए । वापस आते समय, कार काली नदी के निकट रुक गई, हमारे ऊपर तेल छिड़का गया और आग लगा दी गई । हमने बाहर निकलने का प्रयास किया, किंतु पुनः कार के अंदर धकेल दिया गया । मेरे पिता और चालक हमें बाहर खड़े हुए देख रहे थे और हम चीख-पुकार करते रहे किंतु इससे उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा । मेरे पिता पुलिस विभाग में हैं और वे कल्याणपुर, कानपुर में तैनात हैं । मेरे पिता और चालक ने हम सभी को आग में जलाया है ।"

18. उर्मिला, पूजा और ममता के मृत्युकालिक कथन क्रमशः प्रदर्श क-18, प्रदर्श क-17 और प्रदर्श क-15 हैं और उनमें उल्लिखित तथ्यों की संपुष्टि आहत प्रत्यक्षदर्शी साक्षी सुधा (अभि. सा. 5) और पंकज सिंह (अभि. सा. 6) के कथनों से होती है । केवल यही कहा जा सकता है कि अभियुक्त ने ही मृतकों की मृत्यु कारित की है । मृत्युकालिक कथनों के आधार पर अभियुक्त स्पष्ट रूप से आलिप्त होता है । ऐसे कोई भी संदिग्ध संघटक नहीं हैं जिनसे मृत्युकालिक कथनों की विश्वसनीयता प्रभावित हो सके विशेषकर ऐसी स्थिति में कि मृतक अभियुक्त के नातेदार हैं । इस संबंध में कोई भी स्पष्ट कारण दिखाई नहीं देता है कि मृतका उर्मिला (पत्नी), ममता (पुत्री), पूजा (पुत्री) ने अपने पति/पिता को हत्या के अपराध से क्यों संबद्ध किया है । मात्र इस तथ्य से मृत्युकालिक कथन का साक्ष्यिक महत्व कम नहीं हो जाता है कि उस चिकित्सक की परीक्षा नहीं कराई गई है जिसकी मौजूदगी में मृत्युकालिक कथन अभिलिखित किया गया था और/या जिसने उस पर अपना पृष्ठांकन किया था । पुलिस निरीक्षक उमा शंकर यादव (अभि. सा. 4) के साक्ष्य की संपुष्टि प्रत्यक्षदर्शी साक्षी सुधा (अभि. सा. 5) और पंकज (अभि. सा. 6) के साक्ष्य से होती

है । प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के कथनों में ऐसा कोई भी विरोधाभास नहीं है जिससे उन्हें अविश्वसनीय ठहराया जा सके । विचारण न्यायालय ने दंड संहिता की धारा 302, 307 और 436 के अधीन अपराध के लिए अपीलार्थी को ठीक ही दोषसिद्ध किया है जिसकी पुष्टि उच्च न्यायालय द्वारा की गई है ।

19. विचार के लिए अगला प्रश्न यह है कि क्या अपीलार्थी को अधिनिर्णीत मृत्यु दंड मामले के तथ्य और परिस्थितियों के आधार पर अत्यधिक और असामानुपातिक है अर्थात् क्या वर्तमान मामला "विरल से विरलतम मामले" की कोटि में आता है ।

20. **बचन सिंह** बनाम **पंजाब राज्य**[1] वाले मामले में उद्भूत मार्गदर्शक सिद्धांतों का अनुसरण **माछी सिंह और अन्य** बनाम **पंजाब राज्य**[2] वाले मामले में किया गया है । उक्त मामले में न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है :–

> "38. इस पृष्ठभूमि में **बचन सिंह** [(1980) 2 एस. सी. सी. 684] वाले मामले में उपदर्शित सिद्धांतों को उद्धृत करना होगा और उन्हें ऐसे प्रत्येक मामले के तथ्यों को लागू करना होगा जिनमें मृत्यु दंड अधिरोपित किए जाने का प्रश्न उठाया जाता है । **बचन सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले से निम्न प्रतिपादनाएं उद्भूत होती हैं –
>
> (i) अत्यधिक आपराधिक प्रकृति के गंभीरतम मामलों के सिवाय मृत्यु की घोर शास्ति अधिरोपित नहीं की जानी चाहिए ;
>
> (ii) मृत्यु की शास्ति का विकल्प करने के पूर्व 'अपराध' की परिस्थितियों सहित 'अपराधी' की परिस्थिति को भी विचारगत किया जाना चाहिए ;
>
> (iii) नियम आजीवन कारावास है और मृत्यु का दंडादेश एक अपवाद है । अन्य शब्दों में मृत्यु का दंडादेश तभी अधिरोपित किया जाना चाहिए जब अपराध की सुसंगत परिस्थिति को दृष्टिगत करते हुए आजीवन कारावास कुल मिलाकर अपर्याप्त दंड प्रतीत होता हो और ऐसा केवल और केवल तब ही किया जा सकता है जब, अपराध की प्रकृति और

---

[1] (1980) 2 एस. सी. सी. 684.

[2] (1983) 3 एस. सी. सी. 470.

परिस्थिति को तथा सभी सुसंगत परिस्थितियों को दृष्टिगत करते हुए शुद्ध अंतःकरण से आजीवन कारावास का दंडादेश अधिरोपित करने के विकल्प का प्रयोग नहीं किया जा सकता हो ;

(iv) गुरुतरकारी और न्यूनकारी परिस्थितियों का तुलन-पत्र/लेखा-जोखा तैयार करना होगा और ऐसा करते हुए न्यूनकारी परिस्थितियों को पूरा महत्व देना होगा और विकल्प का प्रयोग करने के पूर्व गुरुतरकारी और न्यूनकारी परिस्थितियों के बीच न्याय संतुलन करना होगा ।

39. इन मार्ग-दर्शक सिद्धांतों को लागू करने के लिए अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित प्रश्नोत्तर किए जा सकते हैं –

(क) क्या अपराध के बारे में ऐसी कोई असामान्य बात है जिसके आधार पर आजीवन कारावास का दंडादेश अपर्याप्त माना जाए और मृत्यु का दंडादेश अपेक्षित है ?

(ख) क्या अपराध की परिस्थितियां, ऐसी हैं, कि अपराध का उपशमन करने वाली परिस्थितियों को जो अपराधी के पक्ष में हैं, अधिकतम महत्व देने/के पश्चात् भी, मृत्यु का दंडादेश अधिरोपित करने के अतिरिक्त कोई और विकल्प नहीं है ?

40. यदि पूर्वोक्त प्रतिपादना को ध्यान में रखते हुए सभी परिस्थितियों के बारे में सब प्रकार से व्यापक दृष्टिकोण अपनाने पर तथा ऊपर बताए गए प्रश्नों के उत्तरों को विचार में लेने पर मामले की परिस्थितियां ऐसी हैं कि मृत्यु का दंडादेश आवश्यक बन जाता है, तब न्यायालय ऐसा करने के लिए अग्रसर होगा ।"

21. **रोनी** उर्फ **रोनाल्ड जेम्स अल्वारिस और अन्य** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने **अल्लाउद्दीन मियां और अन्य** बनाम **बिहार राज्य**[2] वाले मामले में अधिकथित विधि का इस प्रकार उल्लेख किया है कि जब तक अपराध की प्रकृति और अपराधी की परिस्थितियों से यह प्रकट न हो जाए कि अपराधी समाज के लिए एक अभिशाप है और आजीवन कारावास का दंड देना अनुचित है, तब तक न्यायालय को सामान्यतया न्यूनतर दंड ही देना चाहिए न कि मृत्यु दंड जो कि केवल

---

[1] (1998) 3 एस. सी. सी. 625.

[2] (1989) 3 एस. सी. सी. 5.

आपवादिक मामलों में ही दिया जाना चाहिए । अत्यंत मानसिक या भावनात्मक विक्षोभ के अधीन कारित किए गए अपराध, अभियुक्त का नवायु होना, सुधार और पुनर्वास की संभावना आदि जैसे सभी संघटकों के संचयी प्रभाव पर विचार करते हुए न्यायालय मृत्यु दंड को आजीवन कारावास में परिवर्तित कर सकता है ।

22. इस न्यायालय ने **रामनरेश और अन्य** बनाम **छत्तीसगढ़ राज्य**[1] वाले मामले में गुरुतरकारी और न्यूनकारी परिस्थितियों पर विचार किया है और निम्न अभिनिर्धारित किया है :–

> "76. इस न्यायालय द्वारा हाल ही में किए गए निर्णय में प्रतिपादित विधि, जैसाकि पहले ही विचार किया गया है, के अंतर्गत ऐसे सिद्धांतों की व्याख्या की गई है जिनका उल्लेख **बचन सिंह** (उपरोक्त) और **माछी सिंह** (उपरोक्त) वाले मामलों में किया गया है । उपर्युक्त निर्णयों के अंतर्गत इन सिद्धांतों का प्राथमिक रूप से दो भिन्न रूपों अर्थात् 'गुरुतरकारी और न्यूनकारी परिस्थितियों', में विश्लेषण किया गया है । न्यायालय इन दोनों पहलुओं के संचयी प्रभाव पर विचार करेगा और सामान्यतया न्यायालय के लिए यह अत्यंत समुचित नहीं है कि वह निम्न श्रेणियों में से किसी एक श्रेणी के अधीन किसी वर्ग के संबंध में दंड पद्धति के अत्यंत महत्वपूर्ण पहलू को विनिश्चित करे और अन्य श्रेणियों के अधीन अन्य वर्गों को अनदेखा करे । दोनों परिस्थितियों का संतुलन बनाए रखना न्यायालय का कर्तव्य है । न्यायालय के लिए यह उचित होगा कि वह ऐसी प्रक्रिया के संतुलन के आधार पर अंतिम निष्कर्ष निकाले जो दांडिक न्याय तंत्र को बेहतर चलाने में सहायक हो और उसके आधार पर न्यायालय प्रभावी और अर्थपूर्ण तर्क दे सके जैसाकि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 354(3) के अधीन अनुध्यात है ।
>
> **गुरुतरकारी परिस्थितियां**
>
> 1. मृत्यु दंड के लिए पहले से दोषसिद्ध व्यक्ति द्वारा कारित किए गए हत्या, बलात्संग, सशस्त्र डकैती, व्यपहरण आदि जैसे अपराध या ऐसे अपराध जो ऐसे व्यक्ति द्वारा कारित किए गए हों जिसने पहले से जघन्य हमले किए हों और दांडिक अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया गया हो ।

---

[1] (2012) 4 एस. सी. सी. 257.

2. ऐसी स्थिति में अपराध कारित किया जाना जब अपराधी ने पहले से कोई गंभीर अपराध किया हुआ हो ।

3. जनसाधारण के मन को भयोपरत करने के आशय से अपराध कारित किया गया हो और वह अपराध सार्वजनिक स्थल पर हथियार या अन्य किसी वस्तु द्वारा कारित किया गया हो जो एक से अधिक व्यक्तियों के लिए परिसंकटमय हो ।

4. हत्या का ऐसा अपराध मुक्ति-धन के लिए कारित किया गया हो या ऐसे अपराध जो धन या धनीय फायदे प्राप्त करने के लिए कारित किए गए हों ।

5. भाड़े पर की गई हत्याएं ।

6. अपराध, आहत के साथ अमानवीय व्यवहार और यातना देने के लिए हिंसक रूप से कारित किया गया हो ।

7. अपराध ऐसे व्यक्ति द्वारा कारित किया गया हो जो विधिपूर्ण अभिरक्षा में हो ।

8. गिरफ्तार करने या विधिपूर्ण परिरोध के अधीन अभिरक्षा में लेने जैसे कर्तव्य का विधिपूर्ण निर्वहन करने से किसी व्यक्ति को रोकने के लिए ऐसे व्यक्ति द्वारा हत्या या कोई अपराध कारित किया गया हो जो स्वयं अभिरक्षा में हो या उसके पक्ष में अन्य किसी व्यक्ति द्वारा अपराध किया गया हो । उदाहरणार्थ, ऐसे व्यक्ति की हत्या किया जाना जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 43 के अधीन अपने कर्तव्य का निर्वहन कर रहा था ।

9. जब संपूर्ण परिवार या किसी समुदाय विशेष के सदस्यों की बड़े अनुपात में हत्या का प्रयास करने जैसा अपराध किया गया हो ।

10. जब आहत कोई निर्दोष, मजबूर या कोई बच्चा, असहाय महिला, पिता के साथ रहने वाली पुत्री/चाचा के साथ रहने वाली भतीजी जैसा कोई नातेदार, नातेदारी और सामाजिक सन्नियमों पर भरोसा करे और ऐसे विश्वसनीय व्यक्ति के अपराध का शिकार हो जाए ।

11. जब अपराध पूर्णतया दुष्टता और नीचता के हेतु के साथ कारित किया गया हो ।

12. जब बिना किसी प्रकोपन के नृशंस हत्या की गई हो ।

13. जब अपराध इतनी बर्बरता से किया गया हो कि इससे न केवल न्यायिक अपितु सामाजिक अंतरात्मा को भी ठेस पहुंचे ।

न्यूनकारी परिस्थितियां

(1) ऐसी रीति और परिस्थितियां जिनमें और जिनके अधीन अपराध कारित किया है, उदाहरणार्थ – अत्यधिक मानसिक या भावनात्मक विक्षोभ या उपरोक्त सभी परिस्थितियों से भिन्न सामान्य अनुक्रम में होने वाला अत्यधिक प्रकोपन ।

(2) अभियुक्त की आयु जो कि एक सुसंगत संघटक है किंतु यह स्वयं में निर्णायक नहीं है ।

(3) अभियुक्त के अपराध में पुनः आलिप्त न होने की संभावना और उसके सुधर जाने तथा उसका पुनर्वास होने की संभाव्यता ।

(4) अभियुक्त की दशा ऐसी दिखाई देती हो कि वह मानसिक रूप से अशक्त है और वह अपनी इस अशक्तता से अपने आपराधिक कार्य की परिस्थितियों का मूल्यांकन करने में अक्षम हो ।

(5) ऐसी परिस्थितियां जिनसे, जीवन के सामान्य अनुक्रम में, अभियुक्त द्वारा उपरोक्त व्यवहार किया जाना संभव हो और निरंतर तंग किए जाने जैसी स्थिति से मानसिक संतुलन बिगड़ता हो, वास्तव में वे परिस्थितियां कहलाएंगी जिनसे मानवीय आचरण उस सीमा तक पहुंच जाता है कि तथ्य और परिस्थितियों में अभियुक्त को यह विश्वास हो जाता है कि अपराध कारित करने के लिए वह नैतिक रूप से न्यायोचित है ।

(6) साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् जब न्यायालय यह मत व्यक्त करे कि अपराध पूर्वनियोजित रूप में कारित नहीं किया गया है और किसी अन्य अपराध के कारित किए जाने में, मृत्यु कारित की गई है अर्थात् यह अर्थ लगाया जा सके कि मूल अपराध कारित किए जाने के परिणामस्वरूप, मृत्यु कारित की गई है ।

(7) जब एक मात्र प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के परिसाक्ष्य का अवलंब लेना पूर्णतया अनुचित हो भले ही अभियोजन पक्ष ने अभियुक्त का दोष साबित कर दिया हो ।

दंडादेश की नीति से संबंधित प्रश्नों का समाधान करते हुए

न्यायालय ने उक्त निर्णय के पैरा 77 में सिद्धांत अधिकथित किए हैं जो निम्न प्रकार हैं –

77. दंडादेश की नीति से संबंधित प्रश्नों को विनिश्चित करने के लिए न्यायालय को कतिपय सिद्धांतों का अनुसरण करना चाहिए और ये सिद्धांत मृत्यु दंडादेश अधिरोपित करने या अन्यथा के लिए उपर्युक्त मताभिव्यक्तियों के अतिरिक्त महत्वपूर्ण संघटक हैं ।

सिद्धांत

(1) न्यायालय को यह परखना चाहिए कि मृत्यु दंडादेश अधिरोपित किए जाने के लिए मामला 'विरल से विरलतम' मामले की कोटि में आता है या नहीं ।

(2) न्यायालय के मतानुसार अन्य दंड अर्थात् आजीवन कारावास अधिरोपित किया जाना पूर्णतया अनुचित हो और उससे न्याय का उद्देश्य पूरा नहीं होता हो ।

(3) आजीवन कारावास नियम और मृत्यु दंडादेश अपवाद होना चाहिए ।

(4) आजीवन कारावास का दंडादेश अधिरोपित किए जाने के विकल्प का प्रयोग अपराध की प्रकृति और परिस्थितियों तथा सभी सुसंगत मताभिव्यक्तियों को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए ।

(5) अपराध कारित किए जाने की रीति (नियोजित या अन्यथा) और अपराध कारित किए जाने के ढंग (बर्बरता और अमानवता आदि की सीमा) और उन परिस्थितियों को ध्यान में रखना चाहिए जिनके कारण जघन्य अपराध कारित किया गया है ।"

23. **शंकर किशन राव खड़े** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] वाले मामले में मृत्यु दंडादेश पर विचार करते हुए यह मत व्यक्त किया है :–

"52. जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है, न तो गुरुतरकारी परिस्थितियां सर्वांगीण हैं और न ही न्यूनकारी परिस्थितियां । मेरी सुविचारित राय में मृत्यु दंडादेश अधिनिर्णीत करने के लिए जिस कसौटी का प्रयोग किया जाना चाहिए वह 'अपराध परीक्षण', 'अपराधी परीक्षण' और 'विरल से विरलतम मामला परीक्षण' है न कि

[1] (2013) 5 एस. सी. सी. 546.

'संतुलन परीक्षण'। मृत्यु दंडादेश अधिनिर्णीत करने के लिए 'अपराध परीक्षण' का पूर्णतया अर्थात् 100 प्रतिशत समाधान होना चाहिए और 'अपराधी परीक्षण' शून्य प्रतिशत होना चाहिए अर्थात् अभियुक्त के पक्ष में कोई भी न्यूनकारी परिस्थिति नहीं होनी चाहिए । यदि अपराध कारित करने के आशय का अभाव होने जैसी परिस्थिति अभियुक्त के पक्ष में है अर्थात् सुधार की संभावना, अभियुक्त की नव आयु, अभियुक्त का समाज के लिए संकट न होना, आपराधिक पूर्व-वृत्त आदि का न होना तब मृत्यु दंड से बचने के लिए अभियुक्त को 'अपराधी परीक्षण' से फायदा हो सकता है । यदि दोनों परीक्षणों का समाधान हो जाता है अर्थात् गुरुतरकारी परिस्थिति पूर्णतया साबित हो जाए और न्यूनकारी परिस्थिति बिल्कुल भी अभियुक्त के पक्ष में न हो, तब भी हमें अंतिम रूप से यह देखना होगा कि मामला 'विरल से विरलतम' मामले की कोटि में आता है या नहीं । 'विरल से विरलतम' का परीक्षण समाज के प्रतिबोधन पर निर्भर करता है अर्थात् यह परीक्षण 'समाज-केंद्रिक' होता है न कि 'न्यायाधीश-केंद्रिक' अर्थात् यह देखना होता है कि उन अपराधों के लिए समाज मृत्यु दंडादेश का अनुमोदन करता है या नहीं । उक्त परीक्षण के लिए, न्यायालय को मानसिक रोग से ग्रसित अप्राप्तवय कन्या जो शारीरिक रूप से अशक्त है, वृद्ध और ऐसे ही शिथिलताओं से पीड़ित महिलाओं के साथ यौन अपराध किए जाने या उनकी हत्या किए जाने जैसे अपराधों के प्रति समाज की घृणा, अत्यधिक आक्रोश और विद्वेष को ध्यान में रखना चाहिए । ऐसे उदाहरण केवल दृष्टांत रूप में हैं न कि सर्वांगीण । न्यायालय मृत्यु दंडादेश इसलिए अधिनिर्णीत करता है कि परिस्थिति की ऐसी ही मांग होती है अर्थात् समाज की इच्छा से न कि न्यायाधीश की इच्छा से जो प्रतिबिम्बित होता है उसका पूरा किया जाना संविधान के अधीन आवश्यक है ।"

24. मृत्यु दंडादेश के प्रश्न पर विचार करने के संबंध में **हरेश मोहन दास राजपूत** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] वाले मामले में संक्षेप में जो सिद्धांत अधिकथित किए गए हैं वे निम्न प्रकार हैं :–

"विरल से विरलतम मामला वहां बनता है जब एक दोषी समाज के सुव्यवस्थित और शांतिमय वातावरण के लिए संकट बन जाए ।

---

[1] (2011) 12 एस. सी. सी. 56.

अपराध जघन्य या नृशंस हो सकता है किंतु यह आवश्यक नहीं है कि वह 'विरल से विरलतम' मामले की कोटि में आ जाए । यह विश्वास करने का कोई कारण नहीं होना चाहिए कि अभियुक्त में सुधार नहीं आ सकता या उसका पुनर्वास नहीं किया जा सकता और यह विश्वास करने का भी कोई कारण नहीं होना चाहिए कि अपराधी हिंसा के आपराधिक कार्य करता रहेगा और वह समाज के लिए एक संकट बना रहेगा । अभियुक्त समाज के लिए संकट हो सकता है और वह आगे भी समाज के सुव्यवस्थित और शांतिमय वातावरण के लिए संकट बना रह सकता है । जिस रीति में अपराध कारित किया गया है वह ऐसी होनी चाहिए कि उससे समाज को अत्यंत घृणा हो और उससे समाज की संचयी अंतरात्मा को ठेस पहुंचती हो । जब कोई अभियुक्त अचानक प्रकोपन के परिणामस्वरूप कृत्य नहीं करता है और वह जानबूझकर पूर्व नियोजित अपराध करता है और सूक्ष्मता के साथ इसका निष्पादन करता है तब ऐसी स्थिति में ऐसे जघन्य अपराध के लिए मृत्यु दंडादेश दिया जाना ही उचित होगा । मृत्यु दंडादेश वहां वांछित होता है जहां आहत अबोध बच्चे और असहाय महिलाएं होती हैं । इस प्रकार यदि अपराध अत्यंत क्रूर और अमानवीय रीति में कारित किया गया है जो कि अत्यंत नृशंस, राक्षसीय, नारकीय, प्रतिशोधात्मक और नीचता के साथ कारित किया गया है और जहां अपराधी के कृत्य से समाज की संपूर्ण नैतिकता क्षत-विक्षत हो जाए अर्थात् अपराध शक्ति प्रदर्शन या राजनीतिक उद्देश्य या संगठित आपराधिक क्रियाकलाप के साथ कारित किया गया है तब ऐसी स्थिति में मृत्यु दंडादेश अधिनिर्णीत किया जाना चाहिए । (सी. मुनियप्पन **बनाम** तमिलनाडु राज्य [(2010) 9 एस. सी. सी. 567], दारा सिंह **बनाम** भारत गणराज्य [(2011) 2 एस. सी. सी. 490], सुरेन्द्र कोली **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य [(2011) 4 एस. सी. सी. 80], मोहम्मद मन्नान [(2011) 5 एस. सी. सी. 317] और सुदाम **बनाम** महाराष्ट्र राज्य [(2011) 7 एस. सी. सी. 125] वाले मामले देखिए)"

25. **संदीप** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है :–

---

[1] (2012) 6 एस. सी. सी. 107.

"72. अतः यह सुस्थापित है कि आजीवन कारावास का दंडादेश अधिनिर्णीत किया जाना नियम है और मृत्यु दंडादेश एक अपवाद । विरल से विरलतम मामले का सिद्धांत अलग-अलग मामलों में अलग-अलग प्रकार से लागू होता है । तथापि, इसमें इसके पूर्व अधिकथित सिद्धांतों का, जिनका इस न्यायालय के उपर्युक्त अनेक विनिश्चयों में उल्लेख किया गया है, व्यापक रूप से यह अर्थ निकलता है कि जानबूझकर योजनाबद्ध किए गए अपराध में जिसका निष्पादन बर्बरतापूर्ण रीति में अत्यंत सूक्ष्मता के साथ किया गया हो और जिससे अमानवीय आचरण दिखाई पड़ता हो और जो प्रत्येक व्यक्ति की अंतरात्मा को कचोटता हो और जिससे समाज की नैतिकता विचलित होती हो, ऐसे अपराध में मृत्यु दंड अधिरोपित किया जाना चाहिए ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि दिया गया दंड भयोपरतकारी है ।"

26. यद्यपि हमारा यह समाधान हो गया है कि अभियोजन पक्ष ने सभी संदेहों के परे अभियुक्त का दोष साबित कर दिया है और अभियुक्त ने अत्यंत क्रूर और अमानवीय रीति में अपराध कारित किया है और असहाय पत्नी तथा छोटे-छोटे बच्चे जो अपीलार्थी के राक्षसी कृत्य और आवेश के शिकार हुए हैं, फिर भी यह मामला विरल से विरलतम मामले के सिद्धांत की परिधि के भीतर पूर्णतया नहीं आता है, किंतु अपीलार्थी के साथ कोई भी उदारता नहीं बरती जा सकती ।

27. यह विश्वास करने का कोई कारण नहीं है कि अभियुक्त में सुधार नहीं आ सकता या उसका पुनर्वास नहीं किया जा सकता और यह भी विश्वास करने का कोई कारण नहीं है कि वह आगे भी हिंसक अपराध करता रहेगा और वह समाज के लिए संकट बना रहेगा ।

28. **स्वामी श्रद्धानंद** बनाम **कर्नाटक राज्य**[1] वाले मामले में मृत्यु दंडादेश को अपास्त करते हुए और न्याय के उद्देश्य को पूरा करने के लिए आजीवन कारावास अधिनिर्णीत करते हुए न्यायालय ने यह आदेश किया कि अपीलार्थी को उसके जीवित रहने तक कारागार से नहीं छोड़ा जाएगा । इसी प्रकार, **रामराज** बनाम **छत्तीसगढ़ राज्य**[2] वाले मामले में इस न्यायालय ने मृत्यु दंडादेश अपास्त करते हुए यह निदेश दिया है कि उस मामले में के अपीलार्थी को परिहार सहित कम से कम 20 वर्ष का कारावास भोगना

---

[1] (2008) 13 एस. सी. सी. 767.

[2] (2010) 1 एस. सी. सी. 573.

होगा और 14 वर्ष के कारावास की अवधि पूरी करने पर भी नहीं छोड़ा जाएगा ।

29. **संदीप** (उपरोक्त) वाले मामले में उपर्युक्त विनिश्चयों और मामले के तथ्यों और परिस्थिति पर विचार करते हुए, इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करते हुए कि अभियुक्त संदीप पर मृत्यु दंडादेश अधिरोपित किया जाना वांछित नहीं है और आजीवन कारावास अधिनिर्णीत करते हुए इस न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि अभियुक्त संदीप को जेल में कम से कम 30 वर्ष बिना किसी परिहार के दंड भोगना होगा और उसके बाद ही उसके कारावास की अवधि के पूरा होने के पूर्व छोड़े जाने पर विचार किया जा सकेगा ।

30. वर्तमान मामले में उपर्युक्त मामले के तथ्यों और परिस्थितियों तथा ऊपर कथित कारणों को ध्यान में रखते हुए हम यह भी अभिनिर्धारित करते हैं कि अभियुक्त अमर सिंह यादव को मृत्यु दंडादेश अधिरोपित किया जाना वांछित नहीं है । तदनुसार हम इस दंडादेश का आजीवन कारावास में लघूकरण करते हैं । इसके अतिरिक्त, हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि अभियुक्त अमर सिंह यादव समयपूर्व कारावास से छोड़े जाने के आवेदन पर सुनवाई किए जाने से पहले कारावास में कम से कम 30 वर्ष तक रहेगा । इस प्रकार दांडिक अपीलों और निर्देश का निपटारा किया जाता है, अभियुक्त अमर सिंह यादव के दंडादेश को आजीवन कारावास में उपांतरित किया जाता है और वह बिना किसी परिहार के 30 वर्ष की नियत अवधि के लिए कारावास भोगेगा ।

31. दांडिक अपीलों का उपर्युक्त मताभिव्यक्तियों के साथ निपटारा किया जाता है ।

अपील भागतः मंजूर की गई ।

अस./अनू.

दुर्योधन राउत

बनाम

उड़ीसा राज्य

1 जुलाई, 2014

न्यायमूर्ति सुधांशु ज्योति मुखोपाध्याय और न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 376 और 302 [सपठित दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 433 और 433क] – बलात्संग और हत्या – आजीवन कारावास का लघूकरण – सरकार की शक्ति – 14 वर्ष का कारावास आवश्यक – केवल समुचित सरकार ही आजीवन कारावास का लघूकरण कर सकती है परंतु यह तब जबकि दोषसिद्ध व्यक्ति ने 14 वर्ष की अवधि का कारावास पूरा कर लिया हो ।

दंड संहिता, 1860 – धारा 376 और 302 [सपठित दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 432] – बलात्संग और हत्या – आजीवन कारावास की अवधि – दंड का परिहार – आजीवन कारावास के दंड का अर्थ बंदी के संपूर्ण जीवन का कारावास है जब तक कि समुचित सरकार द्वारा दंड का परिहार न कर दिया जाए ।

दंड संहिता, 1860 – धारा 376 और 302 [सपठित दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 31] – बलात्संग और हत्या – एक ही विचारण में कई अपराधों के लिए दोषसिद्ध होने के मामलों में दंडादेश – धारा 302 के अधीन आजीवन कारावास और 376 के अधीन 10 वर्ष का कारावास अधिनिर्णीत किया जाना – अपीलार्थी द्वारा क्रमवर्ती रूप से कारावास का दंड चलाए जाने को चुनौती दिया जाना – हत्या के अपराध के लिए आजीवन कारावास का दंड अधिनिर्णीत किए जाने की स्थिति में, बलात्संग के अपराध के लिए 10 वर्ष के कारावास को क्रमवर्ती रूप में चलाना अनुचित होगा, अतः दोनों दंडादेश साथ-साथ चलाए जाने से ही न्याय होगा ।

इस मामले में अभियुक्त ने 10 वर्ष की एक अबोध कन्या के साथ बलात्संग किया है और फिर उसकी हत्या की है । विचारण न्यायालय द्वारा अभियुक्त को पारिस्थितिक साक्ष्य और चिकित्सीय साक्ष्य के आधार पर दंड संहिता की धारा 376/302/201 के अधीन दोषसिद्ध किया गया । धारा

302 के अधीन अपीलार्थी को मृत्यु दंडादेश दिया गया और अन्य धाराओं के अधीन दिए गए कारावास को क्रमवर्ती चलने का आदेश दिया गया । इस आदेश से व्यथित होकर अभियुक्त-अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । राज्य ने भी मृत्यु दंड की पुष्टि के लिए उच्च न्यायालय के समक्ष मृत्यु निर्देश फाइल किया । उच्च न्यायालय ने मृत्यु दंड को आजीवन कारावास में परिवर्तित कर दिया किंतु शेष दंडादेश में कोई परिवर्तन नहीं किया । इस आदेश से व्यथित होकर अभियुक्त/अपीलार्थी ने उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील की । उच्चतम न्यायालय ने क्रमवर्ती दंडादेश को साथ-साथ चलाए जाने के दंडादेश में उपांतरित कर दिया । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलें भागतः मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – आजीवन कारावास 14 वर्ष के कारावास तक की अवधि के लिए सीमित नहीं है । दंड संहिता की धारा 55 तथा दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 433 और 433क का परिशीलन करने से यह उपदर्शित होता है कि केवल समुचित सरकार ही आजीवन कारावास का लघूकरण 14 वर्ष से अनधिक में कर सकती है और समुचित सरकार ही ऐसे व्यक्ति को आजीवन कारावास की अवधि के पूर्व छोड़ सकती है परंतु यह तब जबकि दोषसिद्ध व्यक्ति ने 14 वर्ष की अवधि का कारावास पूरा कर लिया हो । (पैरा 17)

इस न्यायालय द्वारा दिए गए उपर्युक्त विनिश्चयों से यह स्पष्ट हो जाता है कि आजीवन कारावास के दंड का अर्थ बंदी के संपूर्ण जीवन का कारावास है जब तक कि समुचित सरकार दंड प्रक्रिया संहिता के उपबंधों के अधीन अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करते हुए संपूर्ण दंड या उसके किसी भाग का परिहार न कर दे । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31 ऐसे मामलों के बारे में है जिनमें विभिन्न अपराधों के लिए एक ही विचारण के दौरान दोषसिद्धि की जाती है । धारा 31 की उपधारा 2 के परंतुक के अनुसार बंदी को कुल दंड 14 वर्ष की अवधि से अधिक दिए जाने पर रोक लगाई गई है । इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुए कि आजीवन कारावास का अर्थ संपूर्ण जीवन का कारावास है, इसलिए एक ही विचारण के दौरान विभिन्न अपराधों के लिए दंडादेश के एक के बाद एक चलने का प्रश्न ही नहीं उठता है । अतः यदि किसी व्यक्ति को आजीवन कारावास सहित विभिन्न अपराधों के लिए दंडादिष्ट किया जाता है तब धारा 31(2) का परंतुक लागू होगा और कोई भी क्रमवर्ती दंडादेश अधिरोपित नहीं किया जा सकता है । (पैरा 26 और 27)

उपर्युक्त चर्चा और इस न्यायालय द्वारा किए गए विनिश्चयों को दृष्टिगत करते हुए न्यायालय यह अभिनिर्धारित करता है कि विचारण न्यायालय ने दंड संहिता की धारा 376(च)/302/201 के अधीन अधिरोपित दंडादेश को क्रमवर्ती रूप से चलाए जाने में न्यायोचित नहीं किया है । उच्च न्यायालय उक्त मुद्दे का समाधान करने में असफल रहा है । ऊपर कथित कारणों के आधार पर, इस तथ्य पर विचार करने पर कि अभियुक्त को दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए आजीवन कारावास अधिनिर्णीत किया गया है, यह न्यायालय दोषसिद्धि के आदेश और दंडादेश में हस्तक्षेप करने के लिए तैयार नहीं है और यह निदेश देता है कि भारतीय दंड संहिता के अधीन अधिरोपित सभी दंडादेश साथ-साथ चलेंगे । सेशन न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय जिसकी पुष्टि उच्च न्यायालय द्वारा की गई है, उपरोक्त सीमा तक उपांतरित किया जाता है । (पैरा 31 और 32)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[2012]	(2012) 11 एस. सी. सी. 629 : **रमेश चिलवाल** उर्फ **बम्बइया** बनाम **उत्तराखंड राज्य** ।	30

निर्दिष्ट निर्णय

[2013]	(2013) 2 एस. सी. सी. 452 : **संगीत और एक अन्य** बनाम **हरियाणा राज्य** ;	25
[2008]	(2008) 13 एस. सी. सी. 767 : **स्वामी श्रद्धानंद** बनाम **कर्नाटक राज्य** ;	25
[2006]	(2006) 12 एस. सी. सी. 37 : **छतर सिंह** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ;	29
[2005]	(2005) 7 एस. सी. सी. 417 : **मुहम्मद मुन्ना** बनाम **भारत संघ और अन्य** ;	24
[2005]	(2005) 5 एस. सी. सी. 194 : **कमलानंत और अन्य** बनाम **तमिलनाडु राज्य** ;	28
[2001]	(2001) 4 एस. सी. सी. 458 : **सुभाष चंदर** बनाम **कृष्ण लाल और अन्य** ;	23
[2001]	(2001) 6 एस. सी. सी. 296 : **श्री भगवान** बनाम **राजस्थान राज्य** ;	23

[1992]	(1992) 4 एस. सी. सी. 172 : **सतपाल** बनाम **हरियाणा राज्य और एक अन्य** ;	22
[1991]	(1991) 3 एस. सी. सी. 498 : **अशोक कुमार** बनाम **भारत संघ और अन्य** ;	21
[1983]	(1983) 2 एस. सी. सी. 454 : **नायब सिंह** बनाम **पंजाब राज्य और अन्य** ;	20,22
[1976]	(1976) 3 एस. सी. सी. 470 : **मध्य प्रदेश राज्य** बनाम **रतन सिंह और अन्य** ;	19
[1961]	ए. आई. आर. 1961 एस. सी. 600 : **गोपाल विनायक गोडसे** बनाम **महाराष्ट्र राज्य और अन्य** ।	18,20,22

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2009 की दांडिक अपील सं. 2277 और 2278.

2007 के मृत्यु दंड निर्देश सं. 2 और 2007 के जेल दांडिक आवेदन सं. 12 में उड़ीसा उच्च न्यायालय, कटक के तारीख 8 जनवरी, 2008 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री टी. एन. सिंह और वी. के. सिंह

प्रत्यर्थी की ओर से श्री शिबाशीश मिश्रा

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति सुधांशु ज्योति मुखोपाध्याय ने दिया ।

न्या. मुखोपाध्याय – यह अपीलें 2007 के मृत्यु दंड निर्देश मामला सं. 2 और 2007 के जेल दांडिक आवेदन सं. 12 में उड़ीसा उच्च न्यायालय, कटक द्वारा पारित किए गए तारीख 8 जनवरी, 2008 के एक ही निर्णय के विरुद्ध की गई हैं । उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय द्वारा भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे इसमें इसके पश्चात् संक्षेप में "दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 376, 302 और 201 के अधीन अपराध के लिए अपीलार्थी की दोषसिद्धि कायम रखी है । तथापि, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों, अपीलार्थी की आयु, उसकी पारिवारिक पृष्ठभूमि और इस तथ्य पर विचार करने पर कि अपीलार्थी ने इसके पूर्व कभी कोई अपराध नहीं किया है, दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए मृत्यु दंडादेश को आजीवन कारावास में परिवर्तित कर दिया गया है और शेष

दंडादेश अपरिवर्तित रखा गया है ।

2. अभियोजन का यह पक्ष कथन है कि तारीख 11 सितंबर, 2004 को लगभग 3.00 बजे अपराह्न में अभियुक्त दुर्योधन राउत इस बहाने से मृतका सुभाषिनी (अप्राप्तवय कन्या) जिसकी आयु 10 वर्ष थी, साइकिल पर बैठाकर ले गया कि वह उसके भाई बामोदेव भोई से टेलीफोन पर बात करेगी । सायंकाल होने पर, केवल अभियुक्त ग्राम वापस आया और मृतका के पिता मुलिया भोई (अभि. सा. 5) द्वारा सुभाषिनी के बारे में पूछताछ किए जाने पर अभियुक्त ने बताया कि सुभाषिनी रानीबांध की महिला के साथ उसके घर चली गई है । अगले दिन चूंकि सुभाषिनी वापस नहीं आई, मुलिया भोई (अभि. सा. 5) ने अभियुक्त से मृतका के पते-ठिकाने के बारे में मालूम किया । अभियुक्त ने रविन्द्र बिस्वाल (अभि. सा. 3), दसरथी भोई (अभि. सा. 4) और सुभाषिनी भोई की मौजूदगी में यह संस्वीकृत किया कि उसने मृतका का गला दबाकर उसकी हत्या कर दी है । इन तीनों साक्षियों की सहायता से मुलिया भोई (अभि. सा. 5) अभियुक्त को ठाकुरगढ़ पुलिस थाने ले गया और लक्ष्मण सेनापति नाम के एक व्यक्ति द्वारा प्रथम इत्तिला रिपोर्ट लिखाई और उस पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी उदित नारायण पाणि के समक्ष दर्ज कराई । तारीख 12 सितंबर, 2004 को दंड संहिता की धारा 302/201 के अधीन आपराधिक मामला सं. 51 संस्थित किया गया । अभियुक्त गिरफ्तार किया गया, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 27 के अधीन उसका कथन अभिलिखित किया गया जिसके आधार पर भारसाधक अधिकारी घटनास्थल पर गया और उसने मृतका का शव बरामद किया, शव की मृत्यु समीक्षा की, घटनास्थल पर पड़ी हुई मृतका की चड्डी बरामद की, इस संबंध में अभिग्रहण सूची तैयार की और शव को शवपरीक्षण के लिए अधमलिक अस्पताल भेज दिया । उसने अभियुक्त के पहने हुए कपड़े भी अभिगृहीत किए, तारीख 13 सितंबर, 2004 को उन्हें न्यायालय के लिए अग्रेषित कर दिया तथा मामले का अन्वेषण पुलिस सर्किल निरीक्षक को सौंप दिया । अन्वेषण पूरा होने के पश्चात् अन्वेषक अधिकारी ने दंड संहिता की धारा 376/202/201 के अधीन अभियुक्त के विरुद्ध आरोप पत्र प्रस्तुत किया ।

3. विद्वान् सेशन न्यायाधीश ने अभियुक्त को न्यायालय में पेश करवाया और दंड संहिता की धारा 376/302/201 के अधीन आरोप विरचित किए । अभियुक्त ने दोषी न होने का अभिवाक् किया और विचारण किए जाने की मांग की ।

4. अभियोजन पक्ष ने अपना पक्षकथन सिद्ध करने के लिए 8 साक्षियों की परीक्षा कराई । अभियुक्त ने अपना पक्षकथन साबित करने के लिए प्रतिरक्षा साक्षी-1 के रूप में अपनी परीक्षा कराई और साथ ही अपने पिता की भी परीक्षा कराई । अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात्, विचारण न्यायालय ने अभियुक्त को दंड संहिता की धारा 376(च)/ 302/201 के अधीन अपराध के लिए दोषी पाया और उसे उक्त अपराध के लिए दोषसिद्ध किया तथा दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए मृत्यु दंडादेश दिया । सेशन न्यायाधीश ने उसे दंड संहिता की धारा 376(च) के अधीन दंडनीय अपराध के लिए भी 10 वर्ष का कठोर कारावास भोगने और 5,000/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने और दंड संहिता की धारा 201 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए एक वर्ष का कठोर कारावास भोगने तथा 1,000/- रुपए जुर्माने का संदाय करने के लिए दंडादिष्ट किया । यह भी आदेश किया गया कि जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम किए जाने पर दंड संहिता की धारा 376(च) के अधीन दंडनीय अपराध के लिए एक वर्ष का कारावास और दंड संहिता की धारा 201 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दोषसिद्ध तीन मास का कारावास भोगेगा और सारभूत दंडादेश क्रमवर्ती चलेंगे ।

5. जैसाकि निर्देश मामले में विचार किया गया है, उच्च न्यायालय ने मृत्यु दंड को आजीवन कारावास में परिवर्तित किया है किंतु यह आदेश किया है कि शेष दंडादेश अपरिवर्तित रहेगा ।

6. स्वीकृततः, इस घटना का कोई भी प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं है, दोषसिद्धि का आदेश मात्र पारिस्थितिक साक्ष्य पर आधारित है । परमला नाहक (अभि. सा. 1) और पेची **उर्फ** बिलास भोई (अभि. सा. 2), के साक्ष्य से यह प्रतीत होता है कि घटना के दिन लगभग 4.00 बजे अपराह्न में जब वे सड़क के किनारे पत्थरों को तोड़कर छोटे-छोटे टुकड़े कर रहे थे, उन्होंने देखा अभियुक्त मृतका को साइकिल पर ले जा रहा था और लगभग 5.00 बजे अपराह्न में उन्होंने उसे अकेले वापस आते हुए देखा । मुलिया भोई (अभि. सा. 5) और कल्पना भोई (अभि. सा. 6) अर्थात् मृतका के क्रमशः माता और पिता, ने यह कथन किया है कि अभियुक्त मृतका को यह बहाना बनाकर साइकिल पर बैठाकर ले गया था कि वह अपने भाई से जो बारगढ़ में काम करता है, ग्राम आनंदपुर स्थित बिजय भोई के मकान से फोन पर बात करेगी । जब अभियुक्त पुलिस अभिरक्षा में था, तब उसने अपना दोष संस्वीकृत किया और इसे प्रदर्श-7 में अभिलिखित किया गया ।

प्रदर्श-7 से यह प्रतीत होता है कि 11 सितंबर, 2004 को दोपहर के समय, उसने अरक्कुडा सलाबानी जंगल के निकट मृतका को अपने साथ लिया, उसे वस्त्रहीन कर दिया और उसके साथ बलात्संग किया । जब वह चिल्लाई तो उसने गला घोंटकर उसकी हत्या कर दी और उसके शव को वृक्ष की शाखाओं से छिपा दिया । अभियुक्त के कथन के आधार पर, अन्वेषक अधिकारी ने अरक्कुडा सलाबानी जंगल से शव बरामद किया और निकट ही पड़ी मृतका की चड्डी भी बरामद की । अभियुक्त द्वारा पुलिस अधिकारी को दिया गया वह कथन विधि के अधीन ग्राह्य होता है जो विशेष रूप से बरामदगी के तथ्य से संबंधित होता है ।

7. डा. नारायण उदगाता (अभि. सा. 9) ने यह कथन किया है कि तारीख 12 सितंबर, 2004 को वह उपखंड अस्पताल अथमलिक में प्रसूति और स्त्रीरोग विभाग में विशेषज्ञ के रूप में ड्यूटी पर था । उस दिन 5.00 बजे अपराह्न में पुलिस के कहने पर उसने मृतका सुभाषिनी भोई आयु लगभग 10 वर्ष के शव का शवपरीक्षण किया था और निम्न क्षतियां पाईं :–

(i) नासाद्वार, मुख और कानों से रक्तस्राव हो रहा है जिसमें कहीं-कहीं पर रक्त का थक्का बना हुआ है ।

(ii) नेत्र आधी खुली हुई हैं ।

(iii) नासाद्वार और मुख पर छाग बने हुए हैं ।

(iv) गुदाद्वार से मल निकला हुआ है ।

(v) ग्रीवा के सामने की ओर अंगूठे के चिह्न बने हुए हैं ।

(vi) ग्रीवा के सामने की ओर 3 इंच × 4 इंच माप की दो रेखीय खरोंच हैं जो मानव-नाखून जैसी किसी धारदार वस्तु से कारित की गई प्रतीत होती हैं ।

(vii) ग्रीवा के दोनों ओर और उसके पश्च भाग में अंगुलियों के चिह्न हैं ।

(viii) ग्रीवा पर बने अंगूठे और अंगुलियों के चिह्नों के नीचे और उसके साथ सटे हुए अधस्त्वक ऊतक में रक्तमोक्षण (वाहिका के बाहर रक्त का स्राव) है ।

(ix) ग्रीवा पर अंगूठे और अंगुलियों के चिह्नों के समवर्ती मांस-पेशियां न्यून रूप से विदीर्ण हैं ।

(x) दोनों ओर की स्कंधास्थि पर 2 इंच से लेकर 3 इंच के रेखीय आकार में अनेक खरोंचें हैं जिसकी अत्यधिक यह संभावना है कि ये खरोंचें मानव-नाखूनों जैसी वस्तु से कारित की गई हैं ।

(xi) दोनों नितम्भों के पीछे की ओर अनेक खरोंचें हैं जो किसी खुरदुरी सतह से रगड़ लगने पर आ सकती हैं और इन खरोंचों से थोड़ा रक्तस्राव भी हुआ है । इन खरोंचों का आकार 0.5 इंच × 0.5 इंच से लेकर 0.75 इंच × 0.5 इंच तक है ।

(xii) योनि विदीर्ण है जिसमें रक्त का थक्का बना हुआ है, यह क्षति बलपूर्वक शिश्न प्रविष्ट करने से कारित हुई प्रतीत होती है । संभवतः शिश्न का आकार बड़ा प्रतीत होता है और लगभग 10 वर्ष की उस कन्या का योनिद्वार संकीर्ण प्रतीत होता है । विदीर्ण क्षतियों से प्रतीत होता है कि योनि में शिश्न प्रविष्ट करने का प्रयास कई बार किया गया है ।

(xiii) सभी क्षतियां मृत्युपूर्व की प्रतीत होती हैं । गला घोंटने से कारित हुई क्षति की प्रकृति मृत्युपूर्व की है । आहत के शरीर के किसी भी भाग में या उसके कपड़ों में किसी भी जगह वीर्य लगे होने का कोई भी साक्ष्य नहीं है ।

डा. नारायण उदगाता (अभि. सा. 9) के अनुसार मृत्यु गला घोंटने से कारित हुई है और यह मृत्यु मानव वध प्रकृति की है । चिकित्सक ने यह भी कथन किया है कि अभियुक्त ने मृतका की योनि में तीन से चार बार शिश्न प्रविष्ट करने का प्रयास किया है । चिकित्सक के साक्ष्य से यह भी स्पष्ट होता है कि तारीख 13 सितंबर, 2004 को उसने अभियुक्त की चिकित्सा परीक्षा की और उसने उसकी पेंट पर वीर्य के धब्बे पाए । चिकित्सक ने अभियुक्त की बाईं कोहनी के पश्च-पार्श्विक भाग में 0.25 इंच की रेखीय खरोंच और उसके दाएं घुटने के मध्य भाग में इसी आकार की एक अन्य रेखीय खरोंच देखी । उसके अनुसार, संभवतः ये क्षतियां अभिकथित घटना के 12 घंटों के पूर्व कारित हुई हैं । अतः, यह अभिनिर्धारित करना उचित नहीं होगा कि मृतका के साथ बलात्संग किए जाने और उसकी हत्या किए जाने के दौरान अभियुक्त को ये क्षतियां पहुंची हैं । तथापि, डा. नारायण उदगाता (अभि. सा. 9) ने अभियुक्त के गुप्तांगों पर ऐसा कोई लक्षण नहीं देखा है जिससे यह प्रतीत होता हो कि उसने निकट भविष्य में मैथुन किया है ।

8. मुलिया भोई (अभि. सा. 5) ने यह कथन किया है कि अभियुक्त ने उसके, रविन्द्र बिस्वाल (अभि. सा. 3) और दसरथी भोई (अभि. सा. 4) के समक्ष यह संस्वीकृत किया था कि उसने (अभियुक्त ने) मृतका की हत्या की है । रविन्द्र बिस्वाल (अभि. सा. 3) और दसरथी भोई (अभि. सा. 4) पक्षद्रोही हो गए और उन्होंने अभियोजन पक्ष का समर्थन नहीं किया है । तथापि, कल्पना भोई (अभि. सा. 6) ने मुलिया भोई (अभि. सा. 5) के साक्ष्य के इस भाग की संपुष्टि की है । जब मुलिया भोई (अभि. सा. 5) ने मृतका के पते-ठिकाने के बारे में पूछा तो अभियुक्त ने बताया कि वह रानीबांध की निवासी एक महिला के साथ गई है और यह कथन गलत पाया गया ।

9. विचारण न्यायालय ने अभियुक्त के विरुद्ध उपलब्ध पारिस्थितिक साक्ष्य की शृंखला के आधार पर उसे दोषसिद्ध किया है । यह निष्कर्ष निकाला गया है कि अभियुक्त लगभग 4.00 बजे अपराह्न में अपनी साइकिल से मृतका को लेकर गया था किंतु 5.00 बजे अपराह्न में अकेला वापस आया । उसने मुलिया भोई (अभि. सा. 5) के समक्ष यह संस्वीकृत किया है कि उसने मृतका की हत्या की है । भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 27 के अधीन अभिलिखित अभियुक्त के कथन के आधार पर अन्वेषक अधिकारी ने शव का पता लगाया ; चिकित्सक ने यह राय दी कि मृतका के साथ बलात्संग किया गया है और उसकी हत्या की गई है । चिकित्सक ने अभियुक्त की चिकित्सा परीक्षा की और उसकी पैन्ट पर वीर्य के धब्बे पाए । अभियुक्त ने मिथ्या कथन दिया है कि मृतका रानीबांध की निवासी किसी महिला के साथ गई है । परमला नाहक (अभि. सा. 1) और पेची **उर्फ** बिलास भोई (अभि. सा. 2) ने अभियुक्त को, मृतका को लगभग 4.00 बजे अपराह्न में साइकिल से ले जाते हुए देखा और वह एक घंटे के पश्चात् अकेला वापस आया । इस प्रकार, अभियुक्त को अंतिम बार मृतका के साथ देखा गया था । यह उपदर्शित करने के लिए कोई सामग्री नहीं है कि इस एक घंटे के दौरान अभियुक्त के सिवाय अन्य कोई व्यक्ति मृतका के साथ बलात्संग या उसकी हत्या कर सकता था । इस मामले की परिस्थितियों की शृंखला से यह परिकल्पित होता है कि अभियुक्त और केवल अभियुक्त ने ही यह अपराध कारित किया है, अतः विचारण न्यायालय ने अभियुक्त को दंड संहिता की धारा 376(च)/302/201 के अधीन ठीक ही दोषसिद्ध किया है ।

10. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने दलील देने के दौरान विचारण

न्यायालय द्वारा पारित और उच्च न्यायालय द्वारा कायम रखे गए क्रमवर्ती दंडादेश के प्रश्न पर मुख्य रूप से प्रतिवाद किया है । यह दलील दी गई है कि विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय ने यह गलत अभिनिर्धारित किया है कि दंड संहिता की धारा 376(च)/302/201 के अधीन दंडादेश क्रमवर्ती रूप में चलेंगे ।

11. विचारण न्यायालय द्वारा यह निर्णय पारित किया गया था कि दंड संहिता की धारा 376(च)/302/201 के अधीन दंडादेश क्रमवर्ती रूप में चलेंगे और इस आदेश की पुष्टि उच्च न्यायालय द्वारा की गई है, अब यह प्रश्न उठता है कि क्या यह दंडादेश दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 31 की उपधारा (2) के परंतुक के प्रतिकूल है या नहीं ।

12. प्रत्यर्थी-उड़ीसा राज्य की ओर से विद्वान् काउंसेल के अनुसार दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31 की उपधारा (2) का परंतुक दंड संहिता की धारा 302 के अधीन आजीवन कारावास के लिए की गई दोषसिद्धि को लागू नहीं हो सकता ।

13. यह दलील दी गई है कि (दंड संहिता की धारा 60 के अधीन) कारावास कठोर या साधारण हो सकता है । जहां तक आजीवन कारावास का संबंध है, ऐसा कोई भी वर्गीकरण नहीं किया गया है । कठोर कारावास के रूप में प्रथम वर्गीकरण भारतीय विधि आयोग द्वारा उसकी 39वीं रिपोर्ट के अनुसार किया गया था किंतु विधान-मंडल में उसका कभी भी अनुवाद नहीं किया गया है । परंतु यह दलील किसी भी तर्कणा पर आधारित नहीं है ।

14. वर्तमान मामले में अंतर्वलित प्रश्न का पूर्णतया मूल्यांकन करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता और भारतीय दंड संहिता के सुसंगत उपबंधों पर विचार करना वांछनीय होगा ।

15. "संहिता" की धारा 31, विचारण के दौरान अनेक अपराधों के लिए की गई दोषसिद्धि के मामलों से संबंधित है । संहिता की धारा 31 की उपधारा (2) के परंतुक के अधीन किसी भी व्यक्ति को 14 वर्ष से अधिक समय के कारावास के लिए दंडादिष्ट नहीं किया जा सकता है और संकलित दंड की मात्रा उस दंड की मात्रा के दोगुने से अधिक नहीं होगी जिसके लिए वह न्यायालय एक अपराध के संबंध में अधिरोपित करने के लिए सक्षम है । "संहिता" की धारा 31 निम्न प्रकार है :–

"31. एक ही विचारण में कई अपराधों के लिए दोषसिद्ध होने

के मामलों में दंडादेश – (1) जब एक विचारण में कोई व्यक्ति दो या अधिक अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया जाता है तब, भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 71 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, न्यायालय उसे उन अपराधों के लिए विहित विभिन्न दंडों में से उन दंडों के लिए, जिन्हें देने के लिए ऐसा न्यायालय सक्षम है, दंडादेश दे सकता है ; जब ऐसे दंड कारावास के रूप में हों तब, यदि न्यायालय ने यह निदेश न दिया हो कि ऐसे दंड साथ-साथ भोगे जाएंगे, तो वे ऐसे क्रम से एक के बाद एक प्रारंभ होंगे जिसका न्यायालय निदेश दे ।

(2) दंडादेशों के क्रमवर्ती होने की दशा में केवल इस कारण से कि कई अपराधों के लिए संकलित दंड उस दंड से अधिक है जो वह न्यायालय एक अपराध के लिए दोषसिद्धि पर देने के लिए सक्षम है, न्यायालय के लिए यह आवश्यक नहीं होगा कि अपराधी को उच्चतर न्यायालय के समक्ष विचारण के लिए भेजे :

परंतु –

(क) किसी भी दशा में ऐसा व्यक्ति चौदह वर्ष से अधिक की अवधि के कारावास के लिए दंडादिष्ट नहीं किया जाएगा ;

(ख) संकलित दंड उस दंड की मात्रा के दुगने से अधिक न होगा जिसे एक अपराध के लिए देने के लिए वह न्यायालय सक्षम है ।

(3) किसी सिद्धदोष व्यक्ति द्वारा अपील के प्रयोजन के लिए उन क्रमवर्ती दंडादेशों का योग, जो इस धारा के अधीन उसके विरुद्ध दिए गए हैं, एक दंडादेश समझा जाएगा ।"

16. दंड संहिता की धारा 45 के अधीन "जीवन" शब्द को इस प्रकार परिभाषित किया गया है कि "जब तक कि संदर्भ से तत्प्रतिकूल प्रतीत न हो, "जीवन" शब्द मानव के जीवन का द्योतक है" ।

"कारावास" शब्द न तो "दंड प्रक्रिया संहिता" में और न ही "दंड संहिता" में परिभाषित किया गया है ।

साधारण खंड अधिनियम, 1897 की धारा 3(27) के अधीन "कारावास" से भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) में यथापरिभाषित दोनों में से किसी भांति का कारावास अभिप्रेत होगा । अतः साधारण खंड

अधिनियम के अधीन आजीवन कारावास के मामले में कारावास की परिभाषा का अभिप्राय दोषसिद्ध व्यक्ति के शेष जीवन की अवधि के कारावास से होगा ।

हम राज्य की ओर से दी गई दलील से सहमत नहीं हैं कि आजीवन कारावास साधारण खंड अधिनियम, 1897 की धारा 3(27) के अधीन उल्लिखित "कारावास" शब्द की परिभाषा के अंतर्गत नहीं आता है ।

17. आजीवन कारावास 14 वर्ष के कारावास तक की अवधि के लिए सीमित नहीं है । दंड संहिता की धारा 55 तथा दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 433 और 433क का परिशीलन करने से यह उपदर्शित होता है कि केवल समुचित सरकार ही आजीवन कारावास का लघूकरण 14 वर्ष से अनधिक में कर सकती है और समुचित सरकार ही ऐसे व्यक्ति को आजीवन कारावास की अवधि के पूर्व छोड़ सकती है परंतु यह तब जबकि दोषसिद्ध व्यक्ति ने 14 वर्ष की अवधि का कारावास पूरा कर लिया हो ।

दंड संहिता की धारा 57 दंडावधियों की मात्र गणना करने के संबंध में है जिसके अंतर्गत आजीवन कारावास को 20 वर्ष के कारावास के तुल्य माना गया है । दंड संहिता की धारा 53 के अंतर्गत उन दंडों को सूचीबद्ध किया गया है जिनके लिए अपराधी संहिता के अधीन दायी होते हैं, ये निम्न प्रकार हैं :–

पहला - मृत्यु

दूसरा - आजीवन कारावास

* * *

चौथा - कारावास जो दो भांति का है,

(1) कठोर अर्थात् कठिन श्रम के साथ,

(2) सादा

पांचवां - संपत्ति का समपहरण,

छठा - जुर्माना

अतः, आजीवन कारावास से दंडादिष्ट किया गया व्यक्ति पूरे जीवन कारावास में रहेगा जब तक कि दंड संहिता की धारा 55 और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 433 और 433क के निबंधनों में समुचित सरकार द्वारा दंडादेश का लघूकरण न कर दिया जाए ।

18. **गोपाल विनायक गोडसे** बनाम **महाराष्ट्र राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की संविधान न्यायपीठ ने इस प्रश्न पर विचार करते हुए कि क्या विधि में ऐसा कोई उपबंध है जिसके अधीन आजीवन कारावास के दंड को समुचित सरकार द्वारा औपचारिक परिहार किए जाने के बिना स्वतः ही उसे किसी निश्चित अवधि का कारावास मान लिया जाए, यह मत व्यक्त किया है :–

> "5. अगर ऐसा है तो अगला यह प्रश्न सामने आता है कि क्या विधि का कोई ऐसा उपबंध है जिसके अधीन आजीवन कारावास के दंड को समुचित सरकार द्वारा औपचारिक परिहार किए जाने के बिना स्वतः ही उसे किसी निश्चित अवधि का कारावास मान लिया जाए । भारतीय दंड संहिता, 1860, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 या कारागार अधिनियम, 1894 में ऐसा कोई भी उपबंध नहीं है । यद्यपि भारत सरकार ने न्यायिक समिति के समक्ष ऊपर उद्धृत मामले में दंड संहिता की धारा 57 के संबंध में यह कथन किया है कि 20 वर्ष का कारावास आजीवन निर्वासन के दंडादेश के तुल्य है, न्यायिक समिति ने उस प्रश्न पर अपनी अंतिम राय व्यक्त नहीं की है । न्यायिक समिति ने उस मामले में पृष्ठ 10 पर इस प्रकार व्यक्त किया है –
>
> > यह उपधारित करते हुए कि दंडादेश 20 वर्ष का होता है, और परिहार के अध्यधीन अच्छे आचरण के आधार पर, दोषसिद्ध को इतनी छूट नहीं मिली है कि उसे उसके आवेदन के समय पर कारावास से छोड़ दिया जाए, और उस आवेदन को ठीक ही खारिज किया गया है, किंतु माननीय न्यायाधीशों ने इसका यह अर्थ नहीं लगाया है कि आजीवन कारावास की अवधि को 20 वर्ष से अधिक नहीं माना जा सकता या दोषसिद्ध व्यक्ति किसी भी स्थिति में दंड के परिहार के लिए हकदार होगा ।
>
> दंड संहिता की धारा 57 का हमारे समक्ष उठाए गए प्रश्न के साथ कोई वास्तविक संबंध नहीं है । दंड की अवधि के अंशों की गणना करने के लिए इस धारा के अधीन यह उपबंध किया गया है कि आजीवन निर्वासन को 20 वर्ष के कारावास के समतुल्य माना जाएगा । इसका यह अर्थ नहीं है कि सभी प्रयोजनों के लिए आजीवन निर्वासन 20 वर्ष के निर्वासन के समतुल्य है ; न ही संशोधित धारा,

---

[1] ए. आई. आर. 1961 एस. सी. 600.

जिसमें 'आजीवन निर्वासन' के लिए 'आजीवन कारावास' शब्दों को प्रतिस्थापित किया गया है, के अधीन ऐसा भ्रांतिमान अर्थ लगाया गया है । 'आजीवन निर्वासन' या 'आजीवन कारावास' का दंड प्रथमदृष्ट्या दोषसिद्ध व्यक्ति के पूरे शेष प्राकृतिक जीवन की अवधि के निर्वासन या कारावास का दंड है ।"

19. **मध्य प्रदेश राज्य** बनाम **रतन सिंह और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि आजीवन कारावास का दंड 20 वर्ष पूरे होने पर स्वतः समाप्त नहीं होता है । इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है :–

"9. प्राधिकारियों और दंड प्रक्रिया संहिता के कानूनी उपबंधों के पुनर्विलोकन से निम्न प्रतिपादनाएं उद्भूत होती हैं –

'(1) आजीवन कारावास का दंड परिहार सहित 20 वर्ष पूरे होने पर समाप्त नहीं होता है क्योंकि विभिन्न जेल निर्देशिका या कारागार अधिनियम के अधीन विरचित प्रशासनिक नियमों के अनुसार भारतीय दंड संहिता के कानूनी उपबंधों को अतिष्ठित नहीं किया जा सकता है । आजीवन कारावास के दंड का अर्थ बंदी के पूरे जीवन के कारावास का दंड तब तक माना जाएगा जब तक कि समुचित सरकार दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 की धारा 401 के अधीन अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करते हुए संपूर्ण दंड का या उसके किसी भाग का परिहार न करे ।'"

20. **नायब सिंह** बनाम **पंजाब राज्य और अन्य**[2] वाले मामले में प्रिवी कौंसिल द्वारा '**किशोरी लाल**' वाले मामले में दिए गए निर्णय और '**गोपाल विनायक गोडसे**' वाले मामले में इस न्यायालय की संविधान न्यायपीठ द्वारा दिए गए निर्णय का अवलंब लेते हुए इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि उक्त मामले में अपीलार्थी तब तक कारावास में दंड भोगने का दायी है जब तक उसका जीवन शेष है ।

21. **अशोक कुमार** बनाम **भारत संघ और अन्य**[3] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि "आजीवन कारावास"

---

[1] (1976) 3 एस. सी. सी. 470.

[2] (1983) 2 एस. सी. सी. 454.

[3] (1991) 3 एस. सी. सी. 498.

अभिव्यक्ति का अर्थ दंड संहिता की धारा 45 के संदर्भ में लगाया जाना चाहिए जिसका अभिप्राय जीवन की संपूर्ण अवधि का कारावास है । इस न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि धारा 57 के ये उपबंध कि आजीवन कारावास 20 वर्ष के कारावास के समतुल्य माना जाएगा, दंड के भागों की गणना के प्रयोजन हेतु उल्लिखित हैं ।

22. इस न्यायालय ने **नायब सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए मत, **किशोरी लाल** वाले मामले में प्रिवी कौंसिल द्वारा दिए गए निर्णय और **सतपाल** बनाम **हरियाणा राज्य और एक अन्य**[1] वाले मामले में निर्दिष्ट किए गए **गोपाल विनायक गोडसे** (उपरोक्त) वाले मामले का अनुमोदन किया गया है ।

23. **सुभाष चंदर** बनाम **कृष्ण लाल और अन्य**[2] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि आजीवन कारावास का अर्थ तब तक दोषसिद्ध व्यक्ति के जीवन की शेष संपूर्ण अवधि का कारावास है जब तक कि समुचित सरकार अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करते हुए दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 की धारा 401 के अधीन दंड की संपूर्ण अवधि या उसके किसी भाग का परिहार न कर दे ।

इस न्यायालय ने ऐसा ही मत **श्री भगवान** बनाम **राजस्थान राज्य**[3] वाले मामले में व्यक्त किया है ।

24. इस न्यायालय ने **मुहम्मद मुन्ना** बनाम **भारत संघ और अन्य**[4] वाले मामले में यह दोहराया है कि आजीवन कारावास 14 वर्ष या 20 वर्ष की अवधि का कारावास नहीं है । इस न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि आजीवन कारावास का अर्थ दोषसिद्ध व्यक्ति के प्राकृतिक जीवन की संपूर्ण शेष अवधि का कारावास है । न तो दंड संहिता में और न ही दंड प्रक्रिया संहिता में कोई भी उपबंध ऐसा नहीं है जिसके द्वारा आजीवन कारावास को समुचित सरकार द्वारा औपचारिक परिहार किए बिना 14 वर्ष या 20 वर्ष की अवधि का कारावास माना जा सके ।

25. **स्वामी श्रद्धानंद** बनाम **कर्नाटक राज्य**[5] वाले मामले में इस

---

[1] (1992) 4 एस. सी. सी. 172.
[2] (2001) 4 एस. सी. सी. 458.
[3] (2001) 6 एस. सी. सी. 296.
[4] (2005) 7 एस. सी. सी. 417.
[5] (2008) 13 एस. सी. सी. 767.

न्यायालय ने मृत्यु दंड को आजीवन कारावास से प्रतिस्थापित करते समय यह अभिनिर्धारित किया है कि बंदी कारावास से अपने शेष जीवन तक छोड़ा नहीं जाएगा ।

इस न्यायालय द्वारा ऐसा ही मत **संगीत और एक अन्य** बनाम **हरियाणा राज्य**[1] वाले मामले में व्यक्त किया गया है । उक्त मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि आजीवन कारावास भोग रहे बंदी को कोई भी ऐसा अधिकार प्राप्त नहीं है जिसके आधार पर उसे 14 वर्ष या 20 वर्ष के कारावास के पूरे होने पर छोड़ा जा सके । यह प्रत्याशा की जाती है कि आजीवन कारावास भोग रहा दोषसिद्ध व्यक्ति दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 432 के अधीन समुचित सरकार द्वारा प्रदत्त किसी भी परिहार के अध्यधीन अपने पूरे जीवन तक अभिरक्षा में रहेगा ।

26. इस न्यायालय द्वारा दिए गए उपर्युक्त विनिश्चयों से यह स्पष्ट हो जाता है कि आजीवन कारावास के दंड का अर्थ बंदी के संपूर्ण जीवन का कारावास है जब तक कि समुचित सरकार दंड प्रक्रिया संहिता के उपबंधों के अधीन अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करते हुए संपूर्ण दंड या उसके किसी भाग का परिहार न कर दे ।

27. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31 ऐसे मामलों के बारे में है जिनमें विभिन्न अपराधों के लिए एक ही विचारण के दौरान दोषसिद्धि की जाती है । धारा 31 की उपधारा 2 के परंतुक के अनुसार बंदी को कुल दंड 14 वर्ष की अवधि से अधिक दिए जाने पर रोक लगाई गई है । इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुए कि आजीवन कारावास का अर्थ संपूर्ण जीवन का कारावास है, इसलिए एक ही विचारण के दौरान विभिन्न अपराधों के लिए दंडादेश के एक के बाद एक चलने का प्रश्न ही नहीं उठता है । अतः यदि किसी व्यक्ति को आजीवन कारावास सहित विभिन्न अपराधों के लिए दंडादिष्ट किया जाता है तब धारा 31(2) का परंतुक लागू होगा और कोई भी क्रमवर्ती दंडादेश अधिरोपित नहीं किया जा सकता है ।

28. **कमलानंत और अन्य** बनाम **तमिलनाडु राज्य**[2] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है :–

> "75. दंडादेश के संबंध में विचारण न्यायालय ने दंड प्रक्रिया

---

[1] (2013) 2 एस. सी. सी. 452.

[2] (2005) 5 एस. सी. सी. 194.

संहिता की धारा 31 का अवलंब लिया है और उक्त धारा के परंतुक (क) के अध्यधीन दंडादेश के क्रमवर्ती रूप में चलने का आदेश किया है ।

76. श्री जेठमलानी द्वारा दी गई यह दलील कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31 में उल्लिखित 'कारावास' शब्द के अंतर्गत आजीवन कारावास नहीं आता है, स्वीकार्य नहीं है । 'कारावास' शब्द को दंड प्रक्रिया संहिता के अधीन परिभाषित नहीं किया गया है । संहिता की धारा 31 इस संहिता के अध्याय III के अंतर्गत आती है जो न्यायालयों की शक्ति के बारे में है । संहिता की धारा 28 न्यायालय को विधि द्वारा प्राधिकृत कोई भी दंडादेश पारित करने के लिए सशक्त बनाती है । इसी प्रकार, सेशन न्यायाधीश और अपर सेशन न्यायाधीश विधि द्वारा प्राधिकृत कोई भी दंडादेश पारित कर सकते हैं सिवाय मृत्यु दंडादेश के जो उच्च न्यायालय की पुष्टि के अध्यधीन होगा । हमारे मतानुसार 'कारावास' शब्द के अंतर्गत आजीवन कारावास का दंडादेश आता है ।"

29. इस न्यायालय द्वारा **छतर सिंह** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में उपर्युक्त निर्णय का अवलंब लिया गया है और यह अभिनिर्धारित किया गया है :–

"9. यद्यपि, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31 के अधीन क्रमवर्ती दंडादेश अधिरोपित करने की न्यायालय की शक्ति पर इस न्यायालय की संविधान न्यायपीठ द्वारा के. प्रभाकरण **बनाम** पी. जयराजन वाले मामले में विचार किया गया है किंतु उस मामले में उक्त धारा से संबंधित परंतुक का अर्थ समझने के प्रश्न पर विचार नहीं किया गया और न ही किया जा सकता था ।

10. तथापि, **जुल्फिकार अली** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** [इलाहाबाद एल. जे. 1181, पैरा 25] वाले मामले में इस प्रश्न पर विचार किया गया और यह अभिनिर्धारित किया गया –

'25. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31 की उपधारा (2) में

---

[1] (2006) 12 एस. सी. सी. 37.

आरंभ के शब्दों अर्थात् 'क्रमवर्ती दंडादेश के मामले में' से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह उपधारा ऐसे मामले को निर्दिष्ट करती है जिसमें 'क्रमवर्ती दंडादेश' का आदेश किया गया है । ऐसे मामले में यदि विभिन्न अपराधों के लिए संकलित दंड उस दंड से अधिक पाया जाता है जिसे न्यायालय एक अपराध की दोषसिद्धि पर अधिरोपित करने के लिए सक्षम है तब न्यायालय के लिए यह आवश्यक नहीं होगा कि वह अपराधी को उच्चतर न्यायालय के समक्ष विचारण के लिए भेजे । ऐसा उपबंध किए जाने के पश्चात्, इस उपधारा के साथ परंतुक (क) को जोड़ा गया है ताकि दंडादेश के संकलन को उस समय सीमित किया जा सके जब ऐसा न्यायालय क्रमवर्ती दंडादेश पारित करता है । इसी कारण इस परंतुक के अधीन यह उपबंध किया गया है कि किसी भी स्थिति में किसी अभियुक्त के विरुद्ध पारित किया गया क्रमवर्ती दंडादेश का संकलन 14 वर्ष की अवधि से अधिक नहीं होगा । वर्तमान मामले में अपीलार्थी के विरुद्ध पारित किए गए दो दंडादेशों का संकलन 28 वर्ष बनता है जिससे स्पष्ट रूप से उपर्युक्त परंतुक का अतिक्रमण होता है । तदनुसार यह कायम रखे जाने योग्य नहीं है ।'

11. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31 से संलग्न परंतुक को दृष्टिगत करते हुए हमारा यह मत है कि उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी को 20 वर्ष के कठोर कारावास से दंडादिष्ट करने में स्पष्ट त्रुटि की है । अधिकतम अधिरोपित दंडादेश 14 वर्ष हो सकता है और इस तथ्य पर विचार करने पर कि अपीलार्थी 12 वर्ष से अधिक समय से अभिरक्षा में है, हमारा यह मत है कि यदि अपीलार्थी को पहले से भोगे गए दंडादेश की अवधि के लिए ही दंडादिष्ट किया जाए तो न्याय होगा ।"

30. **रमेश चिलवाल** उर्फ **बम्बइया** बनाम **उत्तराखंड राज्य**[1] वाले मामले में हाल ही में दिए गए निर्णय में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है :–

---

[1] (2012) 11 एस. सी. सी. 629.

"4. चूंकि इस न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा अधिनिर्णीत दंडादेश को स्पष्ट करने के लिए नोटिस जारी किया है इसलिए सभी तथ्यात्मक ब्यौरों पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है । हम दंडादेश को उपांतरित करने के लिए आनत नहीं हैं । तथापि, इस तथ्य पर विचार करते हुए कि विचारण न्यायाधीश ने दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए आजीवन कारावास अधिनिर्णीत किया है, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 31 को दृष्टिगत करते हुए हम यह स्पष्ट करते हैं कि दंड संहिता, गैंगस्टर अधिनियम और आयुध अधिनियम के अधीन अधिरोपित सभी दंडादेश साथ-साथ चलाए जाने हैं ।"

31. उपर्युक्त चर्चा और इस न्यायालय द्वारा किए गए विनिश्चयों को दृष्टिगत करते हुए हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि विचारण न्यायालय ने दंड संहिता की धारा 376(च)/302/201 के अधीन अधिरोपित दंडादेश को क्रमवर्ती रूप से चलाए जाने में न्यायोचित नहीं किया है । उच्च न्यायालय उक्त मुद्दे का समाधान करने में असफल रहा है ।

32. ऊपर कथित कारणों के आधार पर, इस तथ्य पर विचार करने पर कि अभियुक्त को दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए आजीवन कारावास अधिनिर्णीत किया गया है, हम दोषसिद्धि के आदेश और दंडादेश में हस्तक्षेप करने के लिए तैयार नहीं हैं और हम यह निदेश देते हैं कि भारतीय दंड संहिता के अधीन अधिरोपित सभी दंडादेश साथ-साथ चलेंगे । सेशन न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय जिसकी पुष्टि उच्च न्यायालय द्वारा की गई है, उपरोक्त सीमा तक उपांतरित किया जाता है । अपीलें उपर्युक्त मताभिव्यक्तियों के साथ भागतः मंजूर की जाती हैं ।

अपीलें भागतः मंजूर की गईं ।

अस./अनू.

परमशिवम् और अन्य

बनाम

राज्य द्वारा पुलिस निरीक्षक

1 जुलाई, 2014

न्यायमूर्ति सुधांशु ज्योति मुखोपाध्याय और न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 364 और 302 [भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 3] – व्यपहरण और हत्या – मृतक को अभियुक्त के साथ अंतिम बार देखा जाना – पारिस्थितिक साक्ष्य – प्रत्यक्षदर्शी साक्षी का अभाव किंतु शनाख्त परेड में अभियुक्तों की पहचान और मृतक के डी. एन. ए. का उसके परिवार से मेल खाना – मृतक को अंतिम बार अभियुक्त के साथ देखा गया और शनाख्त परेड में तीन अभियुक्तों को पहचान लिया गया तथा डी. एन. ए. के आधार पर शव की शनाख्त की गई और अभियुक्तों के प्रकटीकरण कथन के अनुसार उनसे अपराधजन्य सामग्री बरामद हुई, ऐसी स्थिति में अभियुक्तों को प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के अभाव में दोषी ठहराना न्यायोचित होगा ।

इस मामले में मृतक ने खदान के लिए भूमि पट्टे पर ली हुई थी और उस भूमि के बराबर में अभियुक्तों की भूमि थी । अभियुक्तों को मृतक द्वारा किए जा रहे खदान कार्य पर आपत्ति थी । मृतक ने इस संबंध में व्यादेश के लिए मूल वाद फाइल किया हुआ था कि अभियुक्तों को उसके कार्य में हस्तक्षेप करने से रोका जाए । एक दिन अभियुक्तों ने मृतक के घर से बहाने से बुलाया और उसकी हत्या कर दी । विचारण न्यायालय द्वारा अपीलार्थियों सहित सात अभियुक्तों का विचारण किया गया । अभियुक्त सं. 1 से अभियुक्त सं. 3 (इस मामले में के अपीलार्थी) को दोषसिद्ध किया गया तथा शेष चार अभियुक्तों को दोषमुक्त कर दिया गया । विचारण न्यायालय के इस आदेश से व्यथित होकर दोषसिद्ध किए गए अभियुक्तों ने उच्च न्यायालय के समक्ष अपील की । उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय के निर्णय को उचित ठहराते हुए उनकी अपील खारिज कर दी । इन अपीलार्थियों ने उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय ने निचले दोनों न्यायालयों के निर्णयों को उचित ठहराते हुए अपीलार्थियों की अपील

खारिज कर दी । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – न्यायालय ने अपीलार्थियों के संस्वीकृति कथनों पर विचार किया है जिनके आधार पर महत्वपूर्ण साक्ष्य प्राप्त किया गया है । अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य से न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि अभियोजन पक्ष ने हेतु की विद्यमानता; वे परिस्थितियों जिनमें मृतक अपीलार्थी अभियुक्त सं. 1 से 3 के साथ अंतिम बार जीवित देखा गया था; मृत्यु का मानव वध होना और शव का क्षत-विक्षत अवस्था में रेल की पटरी पर पाया जाना; मृतक के शव की डी. एन. ए. परीक्षण द्वारा शनाख्त किया जाना; अभियुक्तों के गिरफ्तार किए जाने पर उन्हें अपराध में फंसाने वाली वस्तुओं की बरामदगी किए जाने जैसे पारिस्थितिक साक्ष्यों को अभिलेख पर सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया है । साक्ष्य का विश्लेषण किए जाने पर, न्यायालय का यह मत है कि अभियोजन पक्ष ने सफलतापूर्वक इन तथ्यों को साबित किया है कि अभियुक्त सं. 1 से 3 मृतक मणि **उर्फ** पराईमणि को लेकर गए थे । इसके पश्चात् मृतक के साथ जो कुछ हुआ वह अभियुक्त-अपीलार्थी सं. 1 से 3 की ही जानकारी में है । यह स्पष्ट करना अपीलार्थी-अभियुक्त सं. 1 से 3 का कर्तव्य है कि मणि **उर्फ** पराईमणि को पकड़कर ले जाने के पश्चात् उसके साथ क्या हुआ किंतु वे इसे स्पष्ट करने में असफल रहे । इसके पश्चात्, मणि **उर्फ** पराईमणि मृतक पाया गया । अतः, यह स्पष्ट है कि अभियुक्त सं. 1 से 3 जिन्होंने मृतक मणि **उर्फ** पराईमणि का अपहरण किया था उन्होंने साशय न्यायालय के समक्ष वह जानकारी प्रस्तुत नहीं की, अतः इस निष्कर्ष पर पहुंचना पूर्णतया न्यायोचित है कि अपीलार्थी अभियुक्त सं. 1 से 3 ने मणि **उर्फ** पराईमणि की हत्या की है । अपीलार्थियों ने अपनी प्रतिरक्षा में अभियोजन पक्षकथन से केवल इनकार किया है । किसी भी स्पष्टीकरण के अभाव में, यही निष्कर्ष निकलता है कि अपीलार्थी मृतक मणि **उर्फ** पराईमणि की हत्या के लिए जिम्मेदार हैं । इस प्रकार, अपीलार्थी अभियुक्त सं. 1 से 3 का दोष युक्तियुक्त संदेह के परे पूर्ण रूप से साबित हो गया है । (पैरा 23, 24 और 25)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2006]	(2006) 13 एस. सी. सी. 36 : **अनिल** उर्फ **राजू नामदेव पाटिल** बनाम **दमन और दीव प्रशासन, दमन और एक अन्य** ;	21

[2001]	(2001) 4 एस. सी. सी. 375 : **सुचा सिंह** बनाम **पंजाब राज्य** ;	17
[2000]	(2000) 8 एस. सी. सी. 382 : **पश्चिमी बंगाल राज्य** बनाम **मीर मुहम्मद उमर और अन्य** ;	16
[1999]	(1999) 4 एस. सी. सी. 370 : **हिमाचल प्रदेश राज्य** बनाम **जीत सिंह** ।	22

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2010 की दांडिक अपील सं. 593.

2007 की दांडिक अपील सं. 441 में मद्रास उच्च न्यायालय के तारीख 27 अप्रैल, 2009 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से	सर्वश्री बी. रघुनाथ और विजय कुमार
प्रत्यर्थी की ओर से	सर्वश्री एन. योगेश कन्ना, (सुश्री) वनिता चंद्रकांत गिरि, और ए. संत कुमार

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति सुधांशु ज्योति मुखोपाध्याय ने दिया ।

न्या. मुखोपाध्याय – यह अपील 2007 की दांडिक अपील सं. 441 में मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए तारीख 27 अप्रैल, 2009 के निर्णय के विरुद्ध की गई है । इस आक्षेपित निर्णय द्वारा अपीलार्थी-अभियुक्त सं. 1 से 3 द्वारा फाइल की गई अपील खारिज की गई है और अभियुक्त सं. 1 से 3 को भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में "दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 364 और अभियुक्त सं. 1 को दंड संहिता की धारा 302 तथा अभियुक्त सं. 2 और 3 को दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया है और अधिरोपित आजीवन कारावास भोगने तथा जुर्माने का संदाय करने के दंडादेश की पुष्टि की गई है ।

2. संक्षेप में अभियोजन पक्षकथन निम्न प्रकार है :–

मृतक मणि **उर्फ** पराईमणि ने कृष्णास्वामी (अभि. सा. 3) और रामास्वामी (अभि. सा. 6) की भूमि जो ग्राम वडापुडुर (एस. एफ सं. 427/1) में स्थित है को पट्टे पर लिया । नागरतिनम (अभियुक्त सं. 6) की भूमि उसके पड़ोस में थी । चूंकि परमशिवम् (अभियुक्त सं. 1)

और नागरतिनम (अभियुक्त सं. 6) ने मृतक को धमकी दी थी कि वह पत्थर न तोड़े, मृतक मणि **उर्फ** पराईमणि ने डी एम सी, पोलाची के समक्ष स्थायी व्यादेश के लिए 2004 का मूल वाद सं. 5 फाइल किया जिसमें यह आवेदन किया गया कि अभियुक्त सं. 6 को रोका जाए और अभि. सा. 3 तथा अभि. सा. 6 को भी खुदाई करने से रोका जाए । मृतक और नागरतिनम (अभियुक्त सं. 6) के परिवार के बीच शत्रुता चल रही थी ।

घटना के लगभग 10 दिन पूर्व नागरतिनम (अभियुक्त सं. 6) और रेवती (अभियुक्त सं. 7) ने मृतक को धमकी दी । घटना के लगभग 4 दिन पूर्व, सेलवराज **उर्फ** सेलवन (अभियुक्त सं. 2) और एक अन्य व्यक्ति ने पत्थर की खरीदारी के लिए मृतक से संपर्क किया और चूंकि अधिक रात हो गई थी, इसलिए मृतक ने उनके साथ जाने से इनकार कर दिया और उसने उनसे अन्य किसी दिन आने को कहा ।

अभियुक्त सं. 2 और एक अन्य व्यक्ति ने तारीख 18 जनवरी, 2004 को मृतक से पुनः संपर्क किया और पत्थरों के बारे में मालूम किया और मृतक अभियुक्तों के साथ खदान पर चला गया । कन्नियां (अभि. सा. 1) और काला (अभि. सा. 2) ने देखा कि मृतक सेलवराज **उर्फ** सेलवन (अभियुक्त सं. 2) और निर्मल (अभियुक्त सं. 3) के साथ गया है । उस दिन अर्थात् तारीख 18 जनवरी, 2004 को शिवकुमार (अभि. सा. 8) और दोराइसामी (अभि. सा. 9) जो कि पेट्रोल पंप से वापस आ रहे थे, ने सफेद रंग की मारुति वैन सड़क पर खड़ी हुई देखी जिसका रजिस्ट्रेशन नं. टीएन-23ई 5951 (तात्विक वस्तु 1) था । अभि. सा. 9 ने देखा कि मृतक और अभियुक्त सं. 1 उस मारुति वैन में बैठे हुए हैं ।

अगले दिन अर्थात् 19 जनवरी, 2004 को पुगाजेनति (अभि. सा. 23) जो कि रेलवे विभाग, तिरुपुर का की-मैन है, ने रेल की पटरी पर शव पड़ा हुआ देखा और उसने स्टेशन मास्टर रामचंद्रन (अभि. सा. 20) को सूचित किया और स्टेशन मास्टर ने पुलिस थाना तिरुपुर से संबद्ध पुलिस चौकी में सूचना दी । हेड कांस्टेबल शंकरलिंगम (अभि. सा. 24) ने रिपोर्ट प्राप्त की और दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 174 के अधीन दांडिक मामला सं. 12/2004

के अनुसार 'संदिग्ध मृत्यु' का मामला रजिस्ट्रीकृत किया । हेड कांस्टेबल (अभि. सा. 24) घटनास्थल पर गया और उसने रेल की पटरी पर एक पुरुष का शव पड़ा हुआ देखा, उसने संप्रेक्षण महाजर (प्रदर्श पी 15) और कच्चा नक्शा (प्रदर्श पी 16) तैयार किया । अभि. सा. 24 ने मृतक के शव की मृत्यु-समीक्षा (प्रदर्श पी 18) भी तैयार की और शव को शवपरीक्षण के लिए सरकारी अस्पताल, तिरुपुर भेज दिया । हेड कांस्टेबल के कहने पर निजार अहमद (अभि. सा. 27) ने रेल की पटरी पर पड़े हुए शव के फोटो (तात्विक वस्तु 18) खींचे ।

डा. परिमाला देवी (अभि. सा. 33) ने शव का शवपरीक्षण किया और क्षतियों पर विचार किया, डा. देवी ने यह राय दी है कि गर्दन और सिर पर आई अनेक क्षतियों के कारण मृत्यु हुई है और यह मृत्यु शवपरीक्षण किए जाने से लगभग 70 से 80 घंटे पहले हुई है । चूंकि शव की शिनाख्त किए जाने के संबंध में कोई भी सुराग नहीं मिल पा रहा था, इसलिए मुरुगासामी अर्थात् कब्रिस्तान के चौकीदार की सहायता से हेड कांस्टेबल (अभि. सा. 24) द्वारा शव तिरुपुर के चेलनदियम्मन कब्रिस्तान में दफन कर दिया गया ।

चूंकि मृतक घर वापस नहीं आया था, इसलिए अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2 ने उसे तलाश किया और तारीख 20 जनवरी, 2004 को अभि. सा. 1 ने लिखित शिकायत (प्रदर्श पी 1) दर्ज कराई । लिखित शिकायत के आधार पर, पुलिस निरीक्षक राजेन्द्रन (अभि. सा. 39) ने दंड संहिता की धारा 363 के अधीन दांडिक मामला सं. 27/2004 रजिस्ट्रीकृत किया । अभि. सा. 39 घटनास्थल पर गया और उसने संप्रेक्षण महाजर तथा कच्चा स्थल नक्शा तैयार किया । उसने अभि. सा. 1 से अभि. सा. 6 तथा अभि. सा. 15 से पूछताछ भी की और उनके कथन अभिलिखित किए ।

पुलिस निरीक्षक शाहुल अहमद (अभि. सा. 41) ने इस मामले से संबंधित कार्यभार तारीख 26 जनवरी, 2004 को संभाला और आगे अन्वेषण किया । तारीख 28 जनवरी, 2004 को लगभग 1.45 बजे अपराह्न में अभि. सा. 41 ने वंजीपलायम रेलवे फाटक के निकट सेलवराज (अभियुक्त सं. 2) को गिरफ्तार किया । परिप्रश्न किए जाने पर, अभियुक्त सं. 2 ने स्वेच्छया संस्वीकृति कथन दिया जिसके आधार पर रस्सियों (तात्विक वस्तु 10), बनियान (तात्विक वस्तु 11),

थैला (तात्विक वस्तु 12), डायरी (तात्विक वस्तु 2) और बटुआ जिसमें मृतक का फोटो (तात्विक वस्तु 3) था, की बरामदगी की गई जिसके संबंध में अभिग्रहण महाजर (प्रदर्श पी 5) तैयार किया गया । इसके पश्चात्, पुलिस इंस्पेक्टर शाहुल अहमद अभियुक्त सं. 2 के साथ घटनास्थल अर्थात् रेल की पटरी पर गया और वहां पर संप्रेक्षण महाजर (प्रदर्श पी 34) तथा कच्चा नक्शा (प्रदर्श पी 35) तैयार किया ।

उसी दिन अर्थात् 28 जनवरी, 2004 को 6.15 बजे अपराह्न में पुलिस इंस्पेक्टर (अभि. सा. 41) ने गुडालिंगम **उर्फ** लिंगासामी (अभियुक्त सं. 5) को गिरफ्तार किया और उसका संस्वीकृति कथन अभिलिखित किया जिसके आधार पर मारुति ओमनी वैन (तात्विक वस्तु 1) की बरामदगी अभिग्रहण महाजर (प्रदर्श पी 37) के अनुसार की गई । उसी दिन लगभग 8.50 बजे अपराह्न में अभि. सा. 41 ने परमशिवम् (अभियुक्त सं. 1) को गिरफ्तार किया और उसका संस्वीकृति कथन अभिलिखित किया जिसके आधार पर मृतक की लुंगी (तात्विक वस्तु 4), कमीज (तात्विक वस्तु 5) और मतदाता पहचान पत्र (तात्विक वस्तु 9) को अभिग्रहण महाजर (प्रदर्श पी 39) के अनुसार बरामद किया गया । इसके पश्चात्, अभि. सा. 41 तिरुपुर पुलिस चौकी पर गया और उसने हेड कांस्टेबल (अभि. सा. 24) से पूछताछ की और प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 12/2004 की एक प्रति बरामद की । इसके पश्चात्, अन्वेषक अधिकारी (अभि. सा. 41) ने दंड संहिता की धारा 363 के अपराध के लिए रजिस्ट्रीकृत की गई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को दंड संहिता की धारा 120ख, 364 और 302 के अधीन परिवर्तित किया और इसका क्रमांक 12/2004 से 27/2004 में परिवर्तित कर दिया ।

तारीख 17 फरवरी, 2004 को अभि. सा. 41 ने मृतक के शव का शवपरीक्षण करने के लिए अध्यापेक्षा भेजी और यह कार्य तहसीलदार (अभि. सा. 31), रिजर्व इंस्पेक्टर (अभि. सा. 21) और अन्य साक्षियों की मौजूदगी में किया गया । अभि. सा. 41 ने चांदी का कमरबंद अभिग्रहण महाजर (प्रदर्श पी 12) के अनुसार अभिगृहीत किया । अभि. सा. 41 ने उस स्थान के संबंध में संप्रेक्षण महाजर (प्रदर्श पी 13) तैयार किया जहां पर शव दफन किया गया था । कच्चा नक्शा (प्रदर्श पी 44) भी तैयार किया गया । शव के रक्त का नमूना भी लिया गया । मृतक की माता मणिकम्मल (अभि. सा. 14)

और भाई सुब्रह्मणि (अभि. सा. 15) के रक्त के नमूने भी लिए गए जिन्हें डी. एन. ए. परीक्षण के लिए भेज दिया गया । सहायक रासायनिक परीक्षक और सहायक निदेशक अर्थात् वनाजा (अभि. सा. 40) ने डी. एन. ए. परीक्षण किया और यह राय व्यक्त की कि अस्थियों के टुकड़े आदि "किसी पुरुष व्यक्ति के हैं" । इस साक्षी ने यह भी राय व्यक्त की कि मणि **उर्फ** पराईमणि जिसकी अस्थियों के टुकड़े पाए गए हैं, वे सुश्री ए. मणिकम्मल (अभि. सा. 14) की संतान के हैं ।

निर्मल (अभियुक्त सं. 3) और सुरेश कुमार **उर्फ** सुरेश **उर्फ** पामबत्ती (अभियुक्त सं. 4) ने न्यायिक मजिस्ट्रेट, पोलाची के समक्ष तारीख 5 फरवरी, 2004 को अभ्यर्पण किया । अभि. सा. 41 को अभियुक्तों को पुलिस अभिरक्षा में लेने की अनुज्ञा दी गई । अभियुक्त सं. 3 के अभिलिखित किए गए संस्वीकृति कथन के आधार पर टार्च (तात्विक वस्तु 6), बैटरी (तात्विक वस्तु 17), चाकू (तात्विक वस्तु 16), सौ रुपए का नोट (तात्विक वस्तु 13), थैला (तात्विक वस्तु 15) को अभिग्रहण महाजर (प्रदर्श पी 7) के अनुसार बरामद किया गया ।

न्यायिक मजिस्ट्रेट सं. II पोलाची (अभि. सा. 38) ने तारीख 13 फरवरी, 2004 को अभियुक्त सं. 2 और 3 की शनाख्त परेड कराई । अभि. सा. 1, 2 और 5 ने इस शनाख्त परेड में भाग लिया और अभियुक्त को पहचान कर बताया । रसायनिक विश्लेषण और डी. एन. ए. की रिपोर्ट प्राप्त किए जाने और अन्वेषण पूरा होने के पश्चात् अभि. सा. 41 ने दंड संहिता की धारा 147, 148, 120ख 364 और 302 के अधीन अंतिम रिपोर्ट फाइल की ।

3. अभियुक्त के विरुद्ध आरोप सिद्ध करने के लिए अभियोजन पक्ष ने 42 साक्षियों की परीक्षा की और अभिलेख पर प्रदर्श पी 1 से पी 44 तक और तात्विक वस्तु 1 से 18 तक प्रस्तुत किए । अभियुक्तों से दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन प्रश्न किए गए । अभियुक्तों ने सभी आरोपों से इनकार किया और दोषी न होने का अभिवाक् किया और यह कथन किया कि उनके विरुद्ध मिथ्या मामला बनाया गया है ।

4. मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य पर विचार करने के आधार पर, सेशन न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि अभियोजन पक्ष ने यह सिद्ध करने के लिए तर्कसम्मत और विश्वासप्रद साक्ष्य प्रस्तुत किया है कि

खदान को लेकर चल रही पुरानी शत्रुता के कारण अभियुक्त सं. 1 से 3 ने मृतक का व्यपहरण किया है और उसकी हत्या कारित की है । सेशन न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि शनाख्त परेड के दौरान अभियुक्त सं. 1 से 3 की पहचान कर ली गई है और उनसे प्राप्त की गई अपराधजन्य सामग्री से आरोप साबित होते हैं । अभियुक्त सं. 4 से 7 के संबंध में सेशन न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि अभियोजन पक्ष उनके विरुद्ध दोषसिद्ध करने में असफल रहा है और न्यायालय ने उन्हें दोषमुक्त कर दिया ।

5. अपीलार्थियों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने आक्षेपित निर्णय को मुख्य रूप से निम्न बातों के आधार पर चुनौती दी है :–

(i) अभियोजन वृत्तांत में असंगतता है । उदाहरणार्थ, मृतक की भाई सुब्रामणि (अभि. सा. 15) का साक्ष्य अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2 के साक्ष्य के प्रतिकूल है ।

(ii) सेशन न्यायालय इस प्रश्न पर विचार करने में असफल रहा है कि क्या अभियोजन पक्ष ने इस तथ्य को साबित कर दिया है कि मृतक का व्यपहरण किया गया है ।

(iii) अभिकथित हत्या का कोई भी प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं है और किसी भी संगत साक्ष्य के अभाव में यह सिद्ध नहीं किया जा सकता है कि वंजीपालयम की रेल की पटरियों पर पाया गया शव मृतक मणि का है ।

(iv) क्षत-विक्षत शव के संबंध में विरोधाभास है । उदाहरणार्थ, अभि. सा. 21 ने यह कथन किया है कि जब शव को खोदकर बाहर निकाला गया था तब वह एक बोरे में रखे टुकड़ों के रूप में पाया गया था जबकि अभि. सा. 23 ने यह कथन किया है कि शव टुकड़ों में पाया गया था और मृतक के शरीर पर कोई वस्त्र नहीं था ।

6. इसके प्रतिकूल, अभियोजन पक्ष ने आरोपों को सिद्ध करने के लिए निम्न परिस्थितियों का अवलंब लिया है :–

(i) हेतु की विद्यमानता,

(ii) यह परिस्थिति कि मृतक को अंतिम बार अभियुक्त-अपीलार्थी सं. 1 से 3 के साथ जीवित देखा गया था,

(iii) मृत्यु मानव वध है और शव रेल की पटरी पर क्षत-विक्षत अवस्था में पाया गया है,

(iv) मृतक के शव की शनाख्त डी. एन. ए. परीक्षण द्वारा की गई है,

(v) अभियुक्तों की गिरफ्तारी की गई है और अपराधजन्य वस्तुओं की बरामदगी उनके बताने पर की गई है ।

7. अभि. सा. 3 और अभि. सा. 6 एक दूसरे के भाई हैं और नागरतिनम (अभियुक्त सं. 6) अभि. सा. 3 के भाई की पत्नी है । मृतक मणि **उर्फ** पराईमणि ने अभि. सा. 3 और अभि. सा. 6 की भूमि जो एस एफ सं. 427/1, ग्राम वडापुदुर ग्राम के अन्तर्गत आती है, खदान के लिए पट्टे पर लिया था । जब मृतक खदान का काम करवा रहा था, नागरतिनम (अभियुक्त सं. 6) उसका पुत्र और उसकी पुत्री अर्थात् परमशिवम् (अभियुक्त सं. 1) और रेवती (अभियुक्त सं. 7) ने खदान के काम पर आपत्ति की । यह अभिकथन किया गया है कि किसी भी विधिपूर्ण अधिकार के बिना अभियुक्त सं. 6 खदान किए जाने पर आपत्ति कर रहा था, इस पर मृतक ने तारीख 2 जनवरी, 2004 को डी एम सी, पोलाची के समक्ष अभियुक्त सं. 6, अभि. सा. 3 और अभि. सा. 6 के विरुद्ध 2004 का मूल वाद सं. 5 फाइल किया । 2004 के मूल वाद सं. 5 में उल्लिखित अभिवाकों (प्रदर्श पी 22) से यह स्पष्ट है कि अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2 ने मृतक द्वारा अभि. सा. 3 और अभि. सा. 6 से पट्टे पर ली गई भूमि पर खदान किए जाने के संबंध में एक जैसा साक्ष्य दिया है और यह भी साक्ष्य दिया है कि अभियुक्त सं. 6, अभियुक्त सं. 1 और अभियुक्त सं. 7 खदान कार्य किए जाने पर आपत्ति कर रहे थे । अभि. सा. 3 और अभि. सा. 6 के साक्ष्य से भी पट्टा मंजूर किए जाने के संबंध में अभियोजन वृत्तांत प्रबलित होता है ।

8. घटना से लगभग दो सप्ताह पूर्व तारीख 2 जनवरी, 2004 को वाद फाइल किए जाने से अभियोजन पक्षकथन की संभाव्यता बढ़ जाती है । पारिस्थितिक साक्ष्य के मामले में हेतु के सबूत पर महत्वपूर्ण रूप से विचार किया जाना चाहिए और यह एक ठोस परिस्थिति है ।

9. अभियोजन पक्षकथन इस प्रकार है कि मृतक को अंतिम बार अभियुक्तों के साथ जीवित देखा गया था । अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2 ने यह साक्ष्य दिया है कि अभियुक्त सं. 2 और अभियुक्त सं. 3 ने मृतक को उसके घर से, जो चिक्कालमपलायम में स्थित है, बुलाया था ।

दोराइसामी (अभि. सा. 9) ने यह साक्ष्य दिया है कि उसने मृतक को अभियुक्त सं. 1 अर्थात् परमशिवम् के साथ उस मारुति ओमनी वैन में किनातुकादावु चेकपोस्ट के निकट देखा था जिसका रजिस्ट्रेशन नं. टीएन-23ई 5951 (तात्विक वस्तु 1) । बालन (अभि. सा. 5) ने यह कथन किया है कि मृतक इलुरकरार थोटम में खदान से अभियुक्त सं. 1 के साथ जाते हुए देखा था ।

घटना की तारीख से लगभग चार दिन पूर्व अभियुक्त सं. 2 और 3 पत्थरों का आकार मालूम करने के लिए मृतक के घर गए । अभियुक्तों से पूछे जाने पर अभियुक्त सं. 2 ने अपना नाम सेलवराज बताया । चूंकि वे अजनबी प्रतीत हो रहे थे और देर शाम का समय था, मृतक ने उनसे अन्य किसी दिन आने को कहा । इसके चार दिनों के पश्चात् अभियुक्त सं. 2 और 3 मृतक के घर गए और उन्होंने पत्थर देखने के लिए उसे अपने साथ चलने को कहा । चूंकि देर शाम का समय था, मृतक ने अपनी पत्नी कला (अभि. सा. 2) से टार्च मांगी और उसने उसे टार्च (तात्विक वस्तु 6) दे दी और मृतक अभियुक्त सं. 2 और 3 के साथ चला गया ।

10. अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2 का साक्ष्य तर्कसम्मत और संगत है जिससे स्पष्ट रूप से यह परिस्थिति साबित होती है कि मृतक अभियुक्त सं. 2 और 3 के साथ गया था । न्यायिक मजिस्ट्रेट (अभि. सा. 38) द्वारा की गई शनाख्त परेड में अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2 ने अभियुक्त सं. 2 और 3 को पहचानकर बताया है जिससे अभियोजन पक्षकथन प्रबलित होता है ।

11. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने शिकायत (प्रदर्श पी 1) में सेलवराज (अभियुक्त सं. 2) के नाम का उल्लेख न किए जाने पर आक्षेप किया है और यह दलील दी है कि निर्मल (अभियुक्त सं. 3) अभियुक्त सं. 2 के साथ था और इस बात से अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2 की विश्वसनीयता पर घोर संदेह होता है । किंतु शिकायत (प्रदर्श पी-1) जैसे साक्ष्य से हमारा यह निष्कर्ष है कि अभि. सा. 1 ने स्पष्ट रूप से यह कथन किया है कि दो व्यक्ति उनके मकान पर आए थे और वे मृतक को मारुति ओमनी वैन में बैठाकर ले गए थे । यद्यपि, शिकायत (प्रदर्श पी 1) में अभि. सा. 1 ने अभियुक्त सं. 1, 6 और 7 के बारे में संदेह व्यक्त किया है, अभि. सा. 1 ने स्पष्ट रूप से यह संदेह व्यक्त किया है कि अभियुक्त सं. 1, 6 और 7 ने मृतक का व्यपहरण कराने के लिए व्यक्तियों को काम पर लगाया था ।

शिकायत (प्रदर्श पी 1) में व्यक्त किया गया ऐसा संदेह अभियुक्त सं. 2 और 3 के विरुद्ध अपराध में फंसाने वाली एक पर्याप्त परिस्थिति है । शिकायत (प्रदर्श पी 1) में अभियुक्त सं. 2 के नाम का उल्लेख न किए जाने के आधार पर अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2 की विश्वसनीयता पर संदेह नहीं किया जा सकता है । अभि. सा. 9 के साक्ष्य से ही यह सिद्ध होता है कि मृतक को परमशिवम् (अभियुक्त सं. 1) के साथ मारुति ओमनी वैन (रजिस्ट्रेशन सं. टीएन-23ई 5951) में किनातुकदावु चैकपोस्ट के निकट अंतिम बार जीवित देखा गया था । अभि. सा. 9 ने अपने साक्ष्य में यह कथन किया है कि चैकपोस्ट के निकट पेट्रोल पम्प से टी.वी.एस. 50 में पेट्रोल डलवाने के पश्चात् जब वह शिवकुमार (अभि. सा. 8) के साथ जा रहा था, तब उसने मृतक को परमशिवम् (अभियुक्त सं. 1) के साथ मारुति ओमनी वैन (तात्विक वस्तु 1) में देखा था और अन्य व्यक्तियों को वैन में बैठे हुए देखा था । चूंकि मृतक और परमशिवम् (अभियुक्त सं. 1) के बीच शत्रुता चल रही थी, अभि. सा. 9 को यह आश्चर्य हुआ कि अभियुक्त सं. 1 और मृतक एक साथ क्यों हैं और उसने शिवकुमार (अभि. सा. 8) से इस संबंध में पूछा । यद्यपि, शिवकुमार (अभि. सा. 8) पक्षद्रोही हो गया है, फिर भी अभि. सा. 9 का साक्ष्य विश्वसनीय है और कोई भिन्न मत व्यक्त करने के लिए हमें कोई कारण दिखाई नहीं देता है ।

12. एक अन्य परिस्थिति जिसका अभियोजन पक्ष ने अवलंब लिया है मृतक का भाई सुब्रह्मणि (अभि. सा. 15) का यह साक्ष्य है कि अभियुक्त सं. 1 और एक अन्य व्यक्ति पत्थर देखने के लिए खदान पर आए थे । जब वे पत्थर तोड़ रहे थे, मृतक पत्थर देखने के लिए उनके साथ गया । मृतक अभियुक्तों के साथ कैसे गया, निःसंदेह इस संबंध में अभि. सा. 15 का साक्ष्य तनिक भिन्न प्रतीत होता है किंतु समय बदलने के कारण, घटनाओं का वर्णन उस रीति में नहीं किया जा सकता है जिस रीति में अभि. सा. 15 ने कथन किया है । हमारा यह मत है कि अभि. सा. 15 के साक्ष्य से अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2 के संगत वृत्तांत और अभियोजन पक्षकथन पर कोई भी दुष्प्रभाव नहीं पड़ता है ।

13. डा. पेरीमालादेवी (अभि. सा. 33) ने शव-परीक्षा की और उन्होंने निम्न क्षतियां पाईं :–

(i) सिर के सामने की ओर का भाग कुचला हुआ है और मस्तिष्क का कुछ भाग बाहर निकला हुआ है ।

(ii) बाईं बाहु के ऊपरी भाग और बाएं कंधे के जोड़ में अस्थि भंग है ।

(iii) दाईं बाहु के ऊपरी भाग में अस्थि भंग है और कंधे के जोड़ से कटी हुई है ।

(iv) बाईं टांग के मध्य भाग में अस्थि भंग है ।

(v) दाईं जंघा और टांग में अस्थि भंग है ।

14. डा. पेरीमालादेवी ने यह राय व्यक्त की है कि मृतक की मृत्यु अनेक क्षतियों और सिर में आई क्षति के परिणामस्वरूप आघात और रक्तस्राव से शव-परीक्षा किए जाने के लगभग 70-80 घंटों पूर्व हुई है । चूंकि मृतक की शनाख्त नहीं की जा सकी थी इसलिए शव तिरुपुर चेलनदियम्मन में स्थित कब्रिस्तान में दफन कर दिया गया । इसके पश्चात् अन्वेषक अधिकारी के निवेदन पर तहसीलदार (अभि. सा. 21) की मौजूदगी में शव को खोदकर निकाला गया । शव जमीन से बाहर निकालने के पश्चात्, डा. वल्लीनयागम ने डी. एन. ए. परीक्षण के लिए रक्त प्राप्त किया । मृतक की माता मणिकम्मल (अभि. सा. 14) और मृतक के भाई सुब्रह्मणि (अभि. सा. 15) के रक्त के नमूने भी लिए गए । डी. एन. ए. परीक्षण और रक्त के नमूनों के परिणामों का विश्लेषण किए जाने के पश्चात् सहायक निदेशक (अभि. सा. 40) ने रिपोर्ट (प्रदर्श पी 32) दी और यह राय व्यक्त की कि "अस्थियों के टुकड़े आदि से पता चलता है कि यह शव किसी पुरुष व्यक्ति का है" । अभि. सा. 40 ने यह भी राय व्यक्त की है कि "मणि **उर्फ** पराईमणि जिसके शव से अस्थियों के टुकड़े लिए गए हैं वह सुश्री ए. मणिकम्मल की जैविक संतान है" । अभि. सा. 40 के साक्ष्य से रेल की पटरियों पर से बरामद किए गए शव की शनाख्त पर्याप्त रूप से हो गई है कि यह मृतक मणि **उर्फ** पराईमणि का है जो मणिकम्मल (अभि. सा. 14) का पुत्र है ।

15. जब मृतक को व्यपहृत दर्शाया जाता है तब व्यपहरण करने वाले ही यह स्पष्ट कर सकते हैं कि उन्होंने व्यपहरण किए गए आहत के साथ कैसा व्यवहार किया है । स्पष्टीकरण के अभाव में, न्यायालय को इस निष्कर्ष पर पहुंचना चाहिए कि व्यपहरण करने वालों ने ही हत्या की है ।

16. **पश्चिमी बंगाल राज्य** बनाम **मीर मुहम्मद उमर और अन्य**[1] वाले

---

[1] (2000) 8 एस. सी. सी. 382.

मामले में इस न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है :–

> "34. जब न्यायालय के समाधान के साथ यह साबित हो जाता है कि महेश का अभियुक्त द्वारा व्यपहरण किया गया है और वह उसे उस क्षेत्र के बाहर ले गया था तब केवल अभियुक्त ही यह जानता है कि उसके साथ रहने तक महेश के साथ क्या हुआ है । यदि व्यपहरण किए जाने के पश्चात् थोड़े समय के भीतर ही यह पाया जाता है कि उसकी हत्या कर दी गई है तब अनुज्ञात तर्कणा के आधार पर न्यायालय यह उपधारणा कर सकता है कि अभियुक्त ने उसकी हत्या की है । ऐसा निष्कर्ष केवल तभी बदला जा सकता है जब अभियुक्त न्यायालय को यह बताए कि महेश के उनकी अभिरक्षा में रहने के दौरान उसके साथ इसके अन्यथा क्या हुआ था ।"

17. **सुचा सिंह** बनाम **पंजाब राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है :–

> "15. केवल व्यपहरण करने वाले ही न्यायालय को यह बता सकते हैं कि व्यपहरण किए जाने के पश्चात् मृतक के साथ क्या हुआ था । यदि व्यपहरणकर्ता न्यायालय को अन्यथा स्पष्ट नहीं कर पाते हैं तब पूर्वगामी और पश्चगामी परिस्थितियों के आधार पर न्यायालय के लिए इस निष्कर्ष पर पहुंचना प्रत्येक दृष्टि से न्यायोचित होगा कि व्यपहरणकर्ताओं ने ही मृतक की हत्या की है ।
>
> 19. हमने यह मत व्यक्त किया है कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 का आशय अभियोजन पक्ष को अभियुक्त का दोष युक्तियुक्त संदेह के परे साबित करने के भार से मुक्त करना नहीं है, किंतु यह धारा ऐसे मामलों को लागू होगी जिनमें अभियोजन पक्ष ऐसे तथ्यों को साबित करने में सफल रहता है जिनके संबंध में कतिपय अन्य तथ्यों को लेकर युक्तियुक्त निष्कर्ष निकाला जा सकता है परंतु यह तब जबकि अभियुक्त ऐसे तथ्यों की विशेष जानकारी के आधार पर ऐसा कोई भी स्पष्टीकरण देने में असफल न रहे जिसके आधार पर न्यायालय भिन्न निष्कर्ष पर पहुंचे ।
>
> 21. हमने इन दिनों अपनाई जा रही परिपाटी पर विचार किया

---

[1] (2001) 4 एस. सी. सी. 375.

है । लोगों को अन्य लोगों के सामने से व्यपहृत कर दिया जाता है और उन्हें अन्य सभी लोगों के सामने से बलपूर्वक ले जाया जाता है और इसके पश्चात् व्यपहृत किए गए लोगों की हत्या कर दी जाती है । यदि यह विधिक सिद्धांत अधिकथित किया जाए कि व्यपहृत किए गए ऐसे व्यक्तियों की हत्या के लिए ऊपर प्रगणित परिस्थितियों से अन्यथा स्वतंत्र साक्ष्य अवश्य होना चाहिए, हम ऐसे आपराधिक क्रियाकलापों को रोकने के लिए उचित न्यायशास्त्र उपलब्ध कराएंगे । अब भारत ऐसे विधिक सिद्धांतों को अधिकथित नहीं कर सकता है जिनके आधार पर लोगों की संज्ञा की परिधि से अपहरण किए गए निर्दोषों की हत्या करने जैसे क्रियाकलापों से अपराधियों को रोका जा सके ।"

18. वर्तमान मामले में, अभियोजन पक्ष ने अभिलेख पर यह साक्ष्य प्रस्तुत किया है कि अभियुक्त सं. 1 से 3 ने मृतक का अपहरण किया है । अतः, केवल अभियुक्त सं. 1 से 3 ही जानते थे कि मृतक के साथ क्या हुआ है क्योंकि अपहरण किए जाने के थोड़े समय बाद ही मृतक की हत्या कर दी गई है । अभियुक्त सं. 1 से 3 कोई भी स्पष्टीकरण देने में असफल रहे हैं और न्यायालय ने यह ठीक ही उपधारणा की है कि अभियुक्तों ने मृतक मणि **उर्फ** पराईमणि की हत्या की है ।

19. अभियोजन पक्ष ने अभियुक्तों के उस कथन का अवलंब लिया है जिसके आधार पर भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन यथा अनुध्यात तथ्यों को प्रकट किया गया है । तारीख 28 जनवरी, 2004 को अभियुक्त सं. 1, 2 और 5 को अलग-अलग समय पर गिरफ्तार किया गया है । अभियुक्त सं. 1 के संस्वीकृति कथन के आधार पर मणि के मतदाता पहचान-पत्र (तात्विक वस्तु 9) और अन्य वस्तुओं अर्थात् तात्विक वस्तु 4 और 5 की बरामदगी की गई है । सेलवराज **उर्फ** सेलवन (अभियुक्त सं. 2) द्वारा दिए गए संस्वीकृति कथन के आधार पर पाकेट डायरी (तात्विक वस्तु 2), बटुआ (तात्विक वस्तु 3) जिसमें मृतक का फोटो और अन्य वस्तुएं (तात्विक वस्तु 10 से 12) रखी हुई थी । चालक लिंगासामी (अभियुक्त सं. 5) द्वारा दिए गए संस्वीकृति कथन के आधार पर मारुति ओमनी वैन (रजिस्ट्रेशन सं. टीएन-23ई 5951) का अभिग्रहण किया गया है । निर्मल (अभियुक्त सं. 3) और सुरेश कुमार **उर्फ** सुरेश **उर्फ** पामबत्ती ने न्यायालय के समक्ष अभ्यर्पण किया और अन्वेषक अधिकारी (अभि. सा. 41) ने

आवेदन करके अभियुक्तों को पुलिस अभिरक्षा में लिया । अभियुक्त सं. 3 द्वारा दिए गए संस्वीकृति कथन के आधार पर टार्च (तात्विक वस्तु 6) की बरामदगी की गई है जो अभि. सा. 2 द्वारा मृतक को उस समय दी गई थी जब वह घर से चला था । अभियुक्त सं. 1 से 3 के कब्जे से मृतक की अनेक वस्तुओं का बरामद होना ऐसी परिस्थिति है जो अपीलार्थियों को अपराध से संबद्ध करती है ।

20. भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 27 निम्न प्रकार है :–

> "27. **अभियुक्त से प्राप्त जानकारी में से कितनी साबित की जा सकेगी** – परंतु जब किसी तथ्य के बारे में यह अभिसाक्ष्य दिया जाता है कि किसी अपराध के अभियुक्त व्यक्ति से, जो पुलिस आफिसर की अभिरक्षा में हो, प्राप्त जानकारी के परिणामस्वरूप उसका पता चला है, तब ऐसी जानकारी में से, उतना चाहे वह संस्वीकृति की कोटि में आती हो या नहीं, जितनी तद्द्वारा पता चले हुए तथ्य से स्पष्टतया संबंधित है, साबित की जा सकेगी ।"

21. **अनिल** उर्फ **राजू नामदेव पाटिल** बनाम **दमन और दीव प्रशासन, दमन और एक अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है :–

> "23. साक्ष्य से प्रकट होने वाली ऐसी जानकारी जिसके आधार पर ऐसा तथ्य प्रकट हो जाए जो अभियुक्त की मानसिक स्थिति पर आधारित हो, ग्राह्य साक्ष्य होता है ।"

22. **हिमाचल प्रदेश राज्य** बनाम **जीत सिंह**[2] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह राय व्यक्त की है कि जब अभियुक्त द्वारा बताए गए किसी एकांत स्थान से कोई वस्तु बरामद की जाती है तब वह साक्ष्य में ग्राह्य होगी ।

23. हमने अपीलार्थियों के संस्वीकृति कथनों पर विचार किया है जिनके आधार पर महत्वपूर्ण साक्ष्य प्राप्त किया गया है ।

24. अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि

---

[1] (2006) 13 एस. सी. सी. 36.

[2] (1999) 4 एस. सी. सी. 370.

अभियोजन पक्ष ने हेतु की विद्यमानता; वे परिस्थितियों जिनमें मृतक अपीलार्थी अभियुक्त सं. 1 से 3 के साथ अंतिम बार जीवित देखा गया था; मृत्यु का मानव वध होना और शव का क्षतविक्षत अवस्था में रेल की पटरी पर पाया जाना; मृतक के शव की डी. एन. ए. परीक्षण द्वारा शनाख्त किया जाना; अभियुक्तों के गिरफ्तार किए जाने पर उन्हें अपराध में फंसाने वाली वस्तुओं की बरामदगी किए जाने जैसे पारिस्थितिक साक्ष्यों को अभिलेख पर सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया है ।

25. साक्ष्य का विश्लेषण किए जाने पर, हमारा यह मत है कि अभियोजन पक्ष ने सफलतापूर्वक इन तथ्यों को साबित किया है कि अभियुक्त सं. 1 से 3 मृतक मणि **उर्फ** पराईमणि को लेकर गए थे । इसके पश्चात् मृतक के साथ जो कुछ हुआ वह अभियुक्त-अपीलार्थी सं. 1 से 3 की ही जानकारी में है । यह स्पष्ट करना अपीलार्थी-अभियुक्त सं. 1 से 3 का कर्तव्य है कि मणि **उर्फ** पराईमणि को पकड़कर ले जाने के पश्चात् उसके साथ क्या हुआ किंतु वे इसे स्पष्ट करने में असफल रहे । इसके पश्चात्, मणि **उर्फ** पराईमणि मृतक पाया गया । अतः, यह स्पष्ट है कि अभियुक्त सं. 1 से 3 जिन्होंने मृतक मणि **उर्फ** पराईमणि का अपहरण किया था उन्होंने साशय न्यायालय के समक्ष वह जानकारी प्रस्तुत नहीं की, अतः इस निष्कर्ष पर पहुंचना पूर्णतया न्यायोचित है कि अपीलार्थी-अभियुक्त सं. 1 से 3 ने मणि **उर्फ** पराईमणि की हत्या की है । अपीलार्थियों ने अपनी प्रतिरक्षा में अभियोजन पक्षकथन से केवल इनकार किया है । किसी भी स्पष्टीकरण के अभाव में, यही निष्कर्ष निकलता है कि अपीलार्थी मृतक मणि **उर्फ** पराईमणि की हत्या के लिए जिम्मेदार हैं । इस प्रकार, अपीलार्थी-अभियुक्त सं. 1 से 3 का दोष युक्तियुक्त संदेह के परे पूर्ण रूप से साबित हो गया है । हमें इस अपील में कोई गुणता दिखाई नहीं देती है और तदनुसार यह खारिज की जाती है ।

अपील खारिज की गई ।

अस./अनू.

अर्जुन जादव

बनाम

पश्चिमी बंगाल राज्य और अन्य

2 जुलाई, 2014

न्यायमूर्ति सुधांशु ज्योति मुखोपाध्याय और न्यायमूर्ति रंजन प्रकाश देसाई

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 [सपठित दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 432] – हत्या – आजीवन कारावास से दंडित किया जाना – 18 वर्ष से अधिक कारावास भोगे जाने के आधार पर निर्मुक्त किए जाने का अभिवाक् – समुचित सरकार की दंड का परिहार करने की शक्ति – जब तक समुचित सरकार या सक्षम प्राधिकारी द्वारा दंड का परिहार न कर दिया जाए तब तक आजीवन कारावास, संपूर्णकाल का कारावास ही माना जाएगा और याची को समयपूर्व निर्मुक्त नहीं किया जाएगा ।

इस मामले में याची को दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए सेशन विचारण न्यायालय द्वारा दोषसिद्ध किया गया था । इस आदेश से व्यथित होकर याची ने कलकत्ता उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की थी जो खारिज हो गई । कलकत्ता उच्च न्यायालय के आदेश से व्यथित होकर याची ने उच्चतम न्यायालय के समक्ष विशेष इजाजत याचिका फाइल की थी और वह याचिका भी खारिज हो गई । इसके पश्चात् याची ने संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन उच्चतम न्यायालय के समक्ष दंड के परिहार के आधार पर निर्मुक्त किए जाने की ईप्सा करते हुए रिट याचिका फाइल की । उच्चतम न्यायालय ने यह रिट याचिका भी खारिज कर दी । याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – वर्तमान मामले में, याची की पत्नी द्वारा फाइल की गई दया याचिकाएं दो बार खारिज की गई हैं । याची के मामले पर पश्चिमी बंगाल राज्य द्वारा गठित पुनर्विलोकन बोर्ड द्वारा विचार किया गया है जिसने याची की प्रार्थना खारिज की है । अतः, इस न्यायालय द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन कोई भी अनुतोष नहीं दिया जा सकता है । तथापि, इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुए कि याची ने वास्तव में 18

वर्ष से अधिक अवधि का कारावास भोगा है; अलीपुर केंद्रीय कारागार के पुलिस अधीक्षक ने तारीख 18 सितंबर, 2003 का स्वयं एक पत्र लिखा है जिसमें उसने याची के मामले पर विचार करने का निवेदन किया है और उसे छोड़े जाने का अनुमोदन किया है । न्यायालय का यह मत है कि यदि याची द्वारा या याची की ओर से किसी व्यक्ति द्वारा परिहार के लिए कोई आवेदन फाइल किया जाता है, तब सक्षम प्राधिकारी उसे पुनर्विलोकन बोर्ड के समक्ष प्रस्तुत करेगा और वह बोर्ड याची को विधि और राज्य द्वारा जारी मार्ग-दर्शक सिद्धांतों के अनुसरण में छोड़े जाने के लिए उसके मामले पर विचार करेगा । समुचित सरकार विधि के अनुसरण में समुचित आदेश पारित करने के लिए स्वतंत्र है । (पैरा 14)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[2013]	(2013) 3 एस. सी. सी. 425 : **आजीवन सिद्धदोष बंगाल** उर्फ **खोका** उर्फ **प्रसंता सेन** बनाम **बी. के. श्रीवास्तव और अन्य** ;	13
[1961]	ए. आई. आर. 1961 एस. सी. 600 : **गोपाल विनायक गोडसे** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ।	11,12

निर्दिष्ट निर्णय

[2005]	(2005) 7 एस. सी. सी. 417 : **मुहम्मद मुन्ना** बनाम **भारत संघ और अन्य** ;	9, 10, 12
[1983]	(1983) 2 एस. सी. सी. 454 : **नायब सिंह** बनाम **पंजाब राज्य और अन्य** ;	12
[1945]	ए. आई. आर. 32 (1945) पी. सी. 64 : **किशोरी लाल** बनाम **एम्परर** ।	12

दांडिक मूल अधिकारिता : 2004 की दांडिक रिट याचिका सं. 229.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 32 के अधीन रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री नवीन सेहरावत और सुश्री संतोष सिंह

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री मबीर एस. बोस, साकार सरदाना, (सुश्री) शगुन मट्टा और अनिप सचदे

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति सुधांशु ज्योति मुखोपाध्याय ने दिया ।

न्या. मुखोपाध्याय – याची ने, जिसे भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 302/34 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया है बंदी प्रत्यक्षीकरण की प्रकृति की एक रिट याचिका भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन याची को कारागार की अवैध अभिरक्षा से निर्मुक्त कराने के लिए फाइल की है ।

2. याची को दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन किए गए हत्या के अपराध के लिए मामला सं. एस.टी. 3 (9) के अंतर्गत अभियुक्त बनाया गया है और उसे तारीख 5 मार्च, 1985 को गिरफ्तार किया गया है । याची के अनुसार उसने प्रत्यर्थी की अभिरक्षा में अवधि का निम्न कारावास भोगा है, जो उसके दंड की अवधि में जोड़ा जाना चाहिए :–

अवधि	वर्ष	मास	दिन
05.03.1985 - 20.06.1986	1	3	15
15.01.1987 - 22.09.1988	1	8	7
26.04.1990 - 22.09.1990		4	26
कुल योग	**3**	**6**	**18**

3. विचारण के पश्चात्, याची को तारीख 15 जनवरी, 1991 के निर्णय के अनुसार दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन दोषसिद्ध किया गया और साथ ही एक अन्य सह-अभियुक्त प्रताप प्रहराज को भी दोषसिद्ध किया गया जिसने याची के अनुसार मृतक के उदर पर बंदूक से एक गोली चलाई थी और उसे नवें अपर सेशन न्यायाधीश अलीपुर, कलकत्ता द्वारा केवल आजीवन कारावास (न कि कठोर आजीवन कारावास) से दंडादिष्ट किया गया है ।

4. इस दोषसिद्धि के विरुद्ध, याची और सह-अभियुक्त ने कलकत्ता उच्च न्यायालय के समक्ष 1991 की दांडिक अपील सं. 56 फाइल की जो तारीख 9 अप्रैल, 1992 को खारिज हो गई । इसके पश्चात्, उनकी दोषसिद्धि के विरुद्ध इस न्यायालय द्वारा विशेष इजाजत याचिका भी ग्रहण

नहीं की गई है ।

5. याची का यह भी पक्षकथन है कि वह 14 वर्ष के नियम के अनुसार परिहार सहित समय पूर्व निर्मुक्त किए जाने के संबंध में उसके मामले पर पश्चिमी बंगाल जेल संहिता के नियम 591(1-4) के अधीन विचार किए जाने का पात्र है जो याची के अनुसार वास्तविक कारावास की अवधि 10 वर्ष है और परिहार 4 वर्ष है । पश्चिमी बंगाल जेल संहिता और इस न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि के होते हुए भी याची के मामले पर विचार नहीं किया गया और एतद्द्वारा प्रत्यर्थियों ने उसके कानूनी अधिकारों और उपबंधों का अतिक्रमण किया है ।

6. वर्ष 2001 में, याची की पत्नी ने राज्य के सक्षम प्राधिकारी के समक्ष दया याचिका फाइल की थी कि याची को समयपूर्व निर्मुक्त किया जाए किंतु तारीख 12 अप्रैल, 2002 को राज्य सरकार द्वारा वह याचिका खारिज कर दी गई यद्यपि जेल/सुधार-गृह में याची का आचरण निरंतर अच्छा बना हुआ था और उसके निर्मुक्त किए जाने के लिए उसके मामले का अनुमोदन कारावास प्राधिकारियों द्वारा किया गया । एक अन्य दया याचिका भी याची की पत्नी द्वारा फाइल की गई और वह भी राज्य सरकार द्वारा खारिज कर दी गई । अलीपुर केन्द्रीय कारावास के अधीक्षक ने स्वयमेव तारीख 18 सितम्बर, 2003 का एक पत्र राज्य सरकार के लिए याची के मामले पर विचार करने के संबंध में लिखा और याची के निर्मुक्त किए जाने के संबंध में दृढ़ अनुमोदन किया । इसके पश्चात् राज्य सरकार की ओर से कोई उत्तर नहीं मिला ।

7. इसी दौरान, याची परिहार की अवधि सहित 20 वर्ष से अधिक अवधि की अभिरक्षा में रहा और लगभग 17 वर्ष वास्तविक अभिरक्षा में रहा, अतः यह अभिकथन किया गया है कि याची का निरोध किया जाना विधि-विरुद्ध और अवैध है ।

8. याची के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि आजीवन कारावास की अवधि 20 वर्ष के समतुल्य है और उसमें भी विधि के अधीन अनुज्ञेय परिहार किया जा सकता है । याची पश्चिमी बंगाल जेल संहिता के नियम 751 (ग) के अधीन निर्मुक्त किया जाना चाहिए । पश्चिमी बंगाल सुधार सेवा अधिनियम, 1992 (1992 का पश्चिमी बंगाल अधिनियम, XXXII) की धारा 61 के स्पष्टीकरण का भी अवलंब लिया गया है जिसके

अधीन आजीवन कारावास को 20 वर्ष की अवधि के कारावास के समतुल्य माना गया है ।

9. तारीख 7 जनवरी, 2005 को इस न्यायालय ने निदेश दिया कि **मुहम्मद मुन्ना** बनाम **भारत संघ और अन्य**[1] 1998 की रिट याचिका (दांडिक) सं. 45 में विनिश्चय दिए जाने के पश्चात् सुनवाई के लिए इस मामले को सूचीबद्ध किया जाए चूंकि याची के विद्वान् काउंसेल ने यह सूचित किया कि उक्त मामले में दलीलें पहले ही दी जा चुकी हैं और निर्णय प्रतीक्षाधीन है । उक्त आदेश द्वारा इस न्यायालय ने याची को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, अलीपुर (24 परगना, जिला कोलकाता - 27), जिनके समक्ष मामला लंबित है, का समाधान किए जाने पर, 5000/- रुपए के निजी बंधपत्र के आधार पर परोल पर निर्मुक्त किए जाने का भी निदेश दिया ।

10. 1998 की उपर्युक्त रिट (दांडिक) याचिका सं. 45 की सुनवाई 2003 की एक अन्य रिट (दांडिक) याचिका सं. 50 के साथ की गई । उक्त मामले में ऐसी ही दलीलें दी गईं कि आजीवन कारावास की अवधि 20 वर्ष के कारावास के समतुल्य होती है और उसमें भी विधि के अधीन अनुज्ञेय परिहार किया जा सकता है । उक्त मामले में पश्चिमी बंगाल जेल संहिता और पश्चिमी बंगाल सुधार सेवा अधिनियम, 1992 की धारा 61 के स्पष्टीकरण का भी अवलंब लिया गया जिसके अधीन आजीवन कारावास को 20 वर्ष के कारावास के समतुल्य माना गया है ।

उपर्युक्त रिट याचिकाएं, इस न्यायालय द्वारा तारीख 16 सितम्बर, 2005 को खारिज कर दी गईं जिन्हें **मुहम्मद मुन्ना** बनाम **भारत संघ और अन्य**[1] वाले मामले में रिपोर्ट किया गया है ।

11. **गोपाल विनायक गोडसे** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[2] वाले मामले में इस न्यायालय की संविधान न्यायपीठ द्वारा ऐसे ही मुद्दे पर विचार किया गया है । उक्त मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि आजीवन कारावास का दंड किसी भी निश्चित अवधि के लिए नहीं है और प्रथमदृष्ट्या आजीवन कारावास को दोषसिद्ध व्यक्ति के संपूर्ण शेष प्राकृतिक जीवन के बराबर माना जाना चाहिए । न्यायालय ने उक्त मामले

---

[1] (2005) 7 एस. सी. सी. 417.

[2] ए. आई. आर. 1961 एस. सी. 600.

के पैरा 5 में यह अभिनिर्धारित किया है :–

> "5. .....इसका यह अर्थ नहीं है कि आजीवन निर्वासन सभी प्रयोजनों के लिए 20 वर्ष के निर्वासन के समतुल्य समझा जाएगा; न ही संशोधित धारा में 'आजीवन कारावास' जिसे 'आजीवन निर्वासन' के लिए प्रतिस्थापित किया गया है, का अर्थ इस प्रकार के बनावटी रूप में लिया गया है । आजीवन निर्वासन के दंडादेश या आजीवन कारावास के दंडादेश की अवधि दोषसिद्ध व्यक्ति के प्राकृतिक जीवन की शेष अवधि के बराबर मानी जानी चाहिए ।"

निर्णय के पैरा 8 में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है :–

> "8. संक्षेप में विधिक स्थिति इस प्रकार है – 1955 के अधिनियम सं. 26 के पूर्व भारत में आजीवन निर्वासन का दंडादेश निर्दिष्ट कारागार में किसी बंदी द्वारा आजीवन कठोर कारावास के रूप में भोगा जाता था । उक्त अधिनियम के पश्चात् ऐसे दोषसिद्ध व्यक्ति के मामले पर उसी रीति में कार्यवाही की जाएगी जैसे इस अवधि के कठोर कारावास के लिए दिए गए दंड के मामले में की जाती है । जब तक कि उक्त दंडादेश किसी समुचित प्राधिकारी द्वारा दंड संहिता या दंड प्रक्रिया संहिता के सुसंगत उपबंधों के अधीन कम न कर दिया जाए या उसका परिहार न कर दिया जाए तब तक आजीवन कारावास से दंडादिष्ट बंदी विधि के अधीन कारागार में आजीवन अवधि का दंड भोगने के लिए ही बाध्य होगा । कारागार अधिनियम के अधीन विरचित नियमों के अंतर्गत ऐसे बंदी को सामान्य, विशेष और राजकीय परिहार प्राप्त करने के लिए सशक्त बनाया गया है और उक्त परिहार से उसके कारावास की अवधि को कम किया जाएगा । परिहार की गणना के प्रयोजन के लिए आजीवन निर्वासन के दंडादेश की अवधि निश्चित मानी गई है किंतु ऐसा केवल इसी विशेष प्रयोजन के लिए किया जा सकता है न कि अन्य किसी और उद्देश्य के लिए । चूंकि आजीवन निर्वासन, आजीवन कारावास के समतुल्य है, इसलिए इसे अनिश्चित अवधि के लिए ही माना जाएगा, इस प्रकार प्राप्त किया गया परिहार व्यवहारिक रूप से दोषसिद्ध व्यक्ति के लिए सहायक नहीं हो सकता क्योंकि उसकी मृत्यु के समय का अनुमान नहीं लगाया जा सकता है । यही कारण है कि समुचित सरकार को

समर्थ बनाने के लिए नियमों के अधीन प्रक्रिया का उपबंध किया गया है ताकि दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 की धारा 401 के अधीन सुसंगत संघटकों पर विचार करके (पहले से) प्राप्त किए गए दंड के परिहार की अवधि सहित और परिहार किया जा सके । परिहार के प्रश्न पर विचार करना एकमात्र रूप से समुचित सरकार के कार्यक्षेत्र के अंतर्गत आता है; और इस मामले में यह स्वीकार किया गया है कि यद्यपि समुचित सरकार ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 401 के अधीन कतिपय परिहार नियत किए हैं फिर भी वह दंड की संपूर्ण मात्रा का परिहार नहीं कर सकती । अतः, हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि याची ने निर्मुक्त होने का कोई अधिकार अभी तक अर्जित नहीं किया है ।"

12. इस न्यायालय ने **मुहम्मद मुन्ना** बनाम **भारत संघ और अन्य** (उपरोक्त) वाले मामले में **नायब सिंह** बनाम **पंजाब राज्य और अन्य**[1] वाले मामले के विनिश्चय, **किशोरी लाल** बनाम **एम्परर**[2] वाले मामले में प्रिवी कौंसिल द्वारा किए गए विनिश्चय और **गोपाल विनायक गोडसे** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[3] वाले मामले में संविधान न्यायपीठ द्वारा किए गए विनिश्चय को निर्दिष्ट करते हुए यह अभिनिर्धारित किया है :–

"8. याची के काउंसेल की उपरोक्त दलील खारिज ही की जानी चाहिए । आजीवन सिद्धदोष व्यक्ति का कारावास, न्यायालय द्वारा पारित किए गए आदेश की प्रबलता के आधार पर निष्पादित किया जाता है । बंदी अधिनियम में अंतर्विष्ट उपबंध मात्र प्रक्रियात्मक हैं । अधिनियम की उद्देशिका के ही अंतर्गत यह उल्लिखित है कि अधिनियम का उद्देश्य न्यायालय के आदेश द्वारा निरुद्ध बंदियों के संबंध में विधि संगठित करना है और बंदी अधिनियम, 1900 की धारा 32 विशिष्ट रूप से निर्वासन का दंड भोग रहे व्यक्तियों के बारे में है और चूंकि जब निर्वासन का दंड ही निरसित कर दिया गया है इसलिए बंदियों की अस्थायी अभिरक्षा के संबंध में धारा 32 के उपबंध राज्य के भीतर या बाहर निर्वासन का दंड भोग रहे व्यक्ति के लिए सुसंगत नहीं होंगे । कारागार प्राधिकारी आजीवन कारावास से दंडित

---

[1] (1983) 2 एस. सी. सी. 454.

[2] ए. आई. आर. 32 (1945) पी. सी. 64.

[3] ए. आई. आर. 1961 एस. सी. 600.

व्यक्तियों को जेल में रखने के लिए बाध्य हैं । निःसंदेह, बंदी अधिनियम, 1900 के कुछ उपबंधों में 1955 के अधिनियम सं. 26 द्वारा पुरःस्थापित आजीवन कारावास के दंड के अनुसरण में युक्तियुक्त रूप से संशोधन नहीं किया गया है ।

9. ..... अतः, यह स्पष्ट है कि यदि किसी व्यक्ति को किसी अवधि के निर्वासन के लिए दंडादिष्ट किया जाता है तब निर्वासन को उतनी अवधि के कठोर कारावास में परिवर्तित किया जाता है । स्वाभाविकतः, आजीवन निर्वासन को आजीवन कठोर कारावास ही माना जाएगा ।

10. यदि आजीवन निर्वासन की अवधि का कोई भाग आजीवन कठोर कारावास की अवधि के उतने ही भाग के समतुल्य माना जाता है, तब स्वाभाविकतः, निर्वासन की संपूर्ण अवधि को 'आजीवन कठोर कारावास' माना जाना चाहिए । आजीवन कारावास इस प्रकार का दंड है जो सामान्य कारावास से भिन्न होता है और सामान्य कारावास दो प्रकार का होता है अर्थात्, 'कठोर' और 'सादा' । विधान-मंडल के लिए यह आवश्यक था कि वह विशेष रूप से यह उल्लेख करता कि 'आजीवन कारावास', 'आजीवन कठोर कारावास' माना जाएगा क्योंकि आजीवन कारावास का दंड गंभीर अपराधों के लिए ही अधिरोपित किया जाता है ।

16. .....हम संविधान न्यायपीठ द्वारा अधिकथित मत को मानने के लिए बाध्य हैं और हम यह भी अभिनिर्धारित करते हैं कि आजीवन कारावास 14 वर्ष या 20 वर्ष के कारावास के समतुल्य नहीं है जैसाकि याची द्वारा प्रतिवाद किया गया है ।

17. इस प्रकार, याची द्वारा किए गए सभी प्रतिवाद असफल हो जाते हैं और याची रिट याचिका में उल्लिखित किसी भी आधार पर निर्मुक्त किए जाने का हकदार नहीं है क्योंकि समुचित सरकार द्वारा उसके पक्ष में परिहार किए जाने का कोई भी आदेश पारित नहीं किया गया है । हम यह स्पष्ट करते हैं कि हमारे विनिश्चय का यह अर्थ लगाने की आवश्यकता नहीं है कि हमारे विचार से याची किसी भी प्रकार के परिहार का बिल्कुल भी हकदार नहीं है । समुचित सरकार विधि के अनुसरण में परिहार का कोई भी समुचित आदेश

पारित करने के लिए स्वतंत्र है ।"

13. **आजीवन सिद्धदोष बंगाल** उर्फ **खोका** उर्फ **प्रसंता सेन** बनाम **बी. के. श्रीवास्तव और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा ऐसा ही मत व्यक्त किया गया है । इस न्यायालय ने आजीवन कारावास की परिभाषा देते हुए यह दोहराया है कि जब तक सक्षम प्राधिकारी द्वारा समुचित रूप से परिहार न कर दिया जाए तब तक आजीवन कारावास का अर्थ सिद्धदोष व्यक्ति के संपूर्ण जीवनकाल का कारावास है, इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है :–

> "18. यह स्पष्ट है कि न तो दंड संहिता की धारा 57 और न ही पश्चिमी बंगाल अधिनियम की धारा 61 के स्पष्टीकरण के अधीन यह अधिकथित किया गया है कि आजीवन कारावास के बंदी को 20 वर्ष पूरे होने के पश्चात् छोड़ देना चाहिए । पश्चिमी बंगाल अधिनियम की धारा 61 के स्पष्टीकरण में 20 वर्ष का उल्लेख परिहार का आदेश करने के प्रयोजन हेतु ही किया गया है । यदि राज्य सरकार अनेक पहलुओं पर विचार करते हुए संपूर्ण अवधि का परिहार मंजूर करने से इनकार कर देती है तब याची उपरोक्त स्पष्टीकरण का यहां तक कि दंड संहिता की धारा 57 का भी लाभ नहीं ले सकता और न ही समय पूर्व छोड़े जाने की ईप्सा कर सकता है । इसके अतिरिक्त संपूर्ण दंड या उसके किसी भाग के परिहार का प्रश्न दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 432 के अधीन समुचित सरकार के एकमात्र कार्यक्षेत्र के अंतर्गत आता है और न तो दंड संहिता की धारा 57 और न ही कोई नियम या स्थानीय अधिनियम (वर्तमान मामले में पश्चिमी बंगाल अधिनियम) दंड संहिता के अधीन न्यायालय द्वारा दिए गए आजीवन कारावास के दंडादेश को निष्प्रभावी कर सकता है । इसे इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है कि जब एक बार किसी व्यक्ति को आजीवन कारावास से दंडादिष्ट किया जाता है वह तब तक अपने पूरे जीवनकाल के लिए कारावास भोगेगा जब तक कि सक्षम प्राधिकारी द्वारा आजीवन कारावास का लघूकरण न कर दिया जाए । यह भी उतना ही सुस्थापित है कि दंड संहिता की धारा 57, किसी भी प्रकार से, आजीवन कारावास के दंड को 20 वर्ष के लिए सीमित

---

[1] (2013) 3 एस. सी. सी. 425.

नहीं करती है ।"

14. वर्तमान मामले में, याची की पत्नी द्वारा फाइल की गई दया याचिकाएं दो बार खारिज की गई हैं । याची के मामले पर पश्चिमी बंगाल राज्य द्वारा गठित पुनर्विलोकन बोर्ड द्वारा विचार किया गया है जिसने याची की प्रार्थना खारिज की है । अतः, इस न्यायालय द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन कोई भी अनुतोष नहीं दिया जा सकता है । तथापि, इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुए कि याची ने वास्तव में 18 वर्ष से अधिक अवधि का कारावास भोगा है; अलीपुर केंद्रीय कारागार के पुलिस अधीक्षक ने तारीख 18 सितंबर, 2003 का स्वयं एक पत्र लिखा है जिसमें उसने याची के मामले पर विचार करने का निवेदन किया है और उसे छोड़े जाने का अनुमोदन किया है । हमारा यह मत है कि यदि याची द्वारा या याची की ओर से किसी व्यक्ति द्वारा परिहार के लिए कोई आवेदन फाइल किया जाता है, तब सक्षम प्राधिकारी उसे पुनर्विलोकन बोर्ड के समक्ष प्रस्तुत करेगा और वह बोर्ड याची को विधि और राज्य द्वारा जारी मार्ग-दर्शक सिद्धांतों के अनुसरण में छोड़े जाने के लिए उसके मामले पर विचार करेगा । समुचित सरकार विधि के अनुसरण में समुचित आदेश पारित करने के लिए स्वतंत्र है ।

15. याची को तारीख 7 जनवरी, 2005 को इस न्यायालय द्वारा पारित किए गए आदेश द्वारा जमानत पर छोड़ा गया था । हम उस आदेश को बातिल करते हैं । प्रत्यर्थी याची को अभिरक्षा में लेने के लिए स्वतंत्र हैं और जहां तक परिहार का संबंध है राज्य सरकार विधि के अनुसरण में कोई भी समुचित आदेश पारित कर सकती है ।

16. रिट याचिका उपर्युक्त मताभिव्यक्तियों के साथ खारिज की जाती है ।

याचिका खारिज की गई ।

अस./अनू.

भारतीय जीवन बीमा निगम और अन्य

बनाम

त्रिवेणी शरन मिश्रा

2 सितम्बर, 2014

न्यायमूर्ति सुधांशु ज्योति मुखोपाध्याय और न्यायमूर्ति प्रफुल्ल चन्द्र पंत

सेवा विधि – भारतीय जीवन बीमा निगम द्वारा चपरासी के पद के लिए आवेदन आमंत्रित किया जाना – अधिकतम अर्हता नौवीं पास नियत किया जाना – प्रत्यर्थी द्वारा अपने आवेदन में उच्चतर अर्हता रखने संबंधी तात्विक जानकारी छिपाकर और मिथ्या कथन करके नियोजन प्राप्त किया जाना – विभागीय जांच में अवचार का दोषी पाए जाने पर सेवा से हटाया जाना – निगम में समान रूप से अवस्थित एक अन्य कर्मचारी को केवल दो वर्ष की वेतनवृद्धि रोकने का दंड देकर सेवा में बनाए रखना – प्रत्यर्थी पर समान शास्ति अधिरोपित करके सेवा में बहाल करने के लिए दिए गए उच्च न्यायालय के निदेश में हस्तक्षेप करने का कोई पर्याप्त कारण नहीं है ।

सेवा विधि – भारतीय जीवन बीमा निगम द्वारा चपरासी के पद के लिए आवेदन आमंत्रित किया जाना – अधिकतम अर्हता नौवीं पास नियत किया जाना और उच्चतर अर्हता रखने वाले अभ्यर्थियों को पद पर नियुक्ति के लिए विचार में न लिया जाना – उच्च न्यायालय का यह निष्कर्ष सही है कि इससे संविधान के अनुच्छेद 16 और 14 का अतिक्रमण होता है ।

भारतीय जीवन बीमा निगम, शहडोल के ज्येष्ठ प्रभागीय प्रबंधक ने चपरासियों (उप-कर्मचारी) की भर्ती के लिए अर्हित अभ्यर्थियों से रोजगार कार्यालय के माध्यम से आवेदन आमंत्रित किए । इसके अनुसरण में प्रत्यर्थी-त्रिवेणी शरन मिश्रा ने अपना आवेदन प्रस्तुत किया । अपीलार्थी द्वारा विहित की गई अर्हता के अनुसार अभ्यर्थी 9वीं पास होना चाहिए, किंतु ऐसे अभ्यर्थी जिन्होंने 12वीं पास की है और 50 प्रतिशत या अधिक अंक प्राप्त किए हैं, स्नातक या स्नातकोत्तर हैं, उन पर पद के लिए विचार नहीं किया जाएगा । प्रत्यर्थी (रिट याची) ने अपने आवेदन में उपरोक्त पद के लिए अपनी अर्हता "उच्चतर माध्यमिक (पुरानी 11वीं)" उल्लिखित की । अभ्यर्थी (रिट याची) द्वारा तारीख 20 जनवरी, 1996 के आवेदन के अंत में यह घोषणा की गई कि उसके पास आवेदन में उल्लिखित अर्हता के

सिवाय कोई अन्य अर्हता नहीं है । प्रत्यर्थी-रिट याची को चपरासी के पद के लिए चयनित किया गया । तथापि, उसकी सेवा के कई वर्षों के पश्चात् यह पाया गया कि जब उसने यथा उपरोक्त पद के लिए आवेदन किया था तब उसके पास स्नातक की डिग्री थी और वह अर्थशास्त्र में एम. ए. (प्रथम वर्ष) कर रहा था । ऐसा पाए जाने पर अपीलार्थी द्वारा प्रत्यर्थी को आरोप पत्र दिया गया और विभागीय जांच आरंभ की गई । विभागीय जांच पूर्ण होने पर प्रत्यर्थी को अवचार का दोषी पाया गया । परिणामतः, उसे यह कारण बताओ नोटिस दिया गया कि क्यों न उसे सेवा से हटा दिया जाए । प्रत्यर्थी द्वारा प्रस्तुत किए गए उत्तर पर विचार करने के पश्चात् ज्येष्ठ प्रभागीय प्रबंधक, भारतीय जीवन बीमा निगम, शहडोल ने तारीख 30 अक्तूबर, 2000 के अपने आदेश द्वारा प्रत्यर्थी-रिट याची को सेवा से हटा दिया । प्रत्यर्थी द्वारा उक्त आदेश को विभागीय अपील प्राधिकारी के समक्ष चुनौती दी गई । अपील प्राधिकारी ने अपील पर विचार करने के पश्चात् उक्त प्राधिकारी द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण के प्रति अपनी सहमति व्यक्त की और अपील खारिज कर दी । प्रत्यर्थी ने उक्त आदेश से व्यथित होकर उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिका फाइल की । उच्च न्यायालय ने यह पाया कि वर्तमान अपीलार्थी द्वारा तय की गई यह अर्हता कि अभ्यर्थी के पास 9वीं पास के अतिरिक्त उच्चतर अर्हता नहीं होनी चाहिए, भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के अतिक्रमण में है । उच्च न्यायालय ने यह भी पाया कि विभाग में समान रूप से स्थित एक अन्य कर्मचारी पर दो वर्ष की वेतनवृद्धि संचयी प्रभाव से रोकने की शास्ति अधिरोपित की गई थी, इसलिए रिट याची को दिया गया दंड विभेदकारी है । तद्नुसार, उच्च न्यायालय द्वारा रिट याचिका मंजूर की गई । नियोजक-भारतीय जीवन बीमा निगम ने उच्च न्यायालय के उक्त विनिश्चय से व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस न्यायालय के समक्ष यह बात विवादग्रस्त नहीं है कि प्रत्यर्थी उस तारीख को जब उसने चपरासी के पद के लिए अपना आवेदन प्रस्तुत किया था, पहले से ही स्नातक था और नियोजन की ईप्सा करते समय उसके द्वारा उपाबंध पी 3 में की गई यह घोषणा असत्य थी कि उसके पास कोई अन्य अर्हता नहीं है । हमारे समक्ष प्रश्न यह है कि क्या ऊपर यथा उल्लिखित अर्हता होने से भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण हुआ है या नहीं और क्या याची को पद से हटाने का दिया गया दंड, समान से अवस्थित एक कर्मचारी दालू राम पतिदार को दिए गए दंड

अर्थात् केवल दो वर्षों की वेतनवृद्धि संचयी प्रभाव से रोकने के दंड को ध्यान में रखते हुए, विभेदकारी है । इस न्यायालय के समक्ष अभिलेख पर के कागजातों से यह प्रतीत होता है कि नौकरी प्राप्त करने के लिए कम अर्हता होने का उल्लेख करने के लिए समान रूप से अवस्थित एक अन्य कर्मचारी (दालू राम पतिदार) को भारतीय जीवन बीमा निगम द्वारा दो वर्ष की वेतनवृद्धि संचयी प्रभावी से रोकने का दंड देकर मुक्त कर दिया गया था । न्यायालय की यह राय है कि उच्च न्यायालय ने रिट याचिका मंजूर करते हुए और रिट याची को बहाल करने के पश्चात् उस पर इसी प्रकार की शास्ति अधिरोपित करने पर विचार करने के लिए नियोजक को निदेश देते हुए ठीक ही उक्त तथ्य पर विचार किया है । (पैरा 8 और 13)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2006]	(2006) 13 एस. सी. सी. 619 : **केरल सोलवेंट ऐक्सट्रेक्संस लिमिटेड** बनाम **ए. उन्नीकृष्णन्** ;	9
[2003]	(2003) एस. सी. सी. 437 : **केन्द्रीय विद्यालय संगठन और अन्य** बनाम **राम रत्तन यादव** ;	12
[2002]	(2002) 2 एस. सी. सी. 606 : **मोहम्मद रियाज़ुल गनी और अन्य** बनाम **जिला और सेशन न्यायाधीश, नागपुर और अन्य** ।	11

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2007 की सिविल अपील सं. 4335.

2004 की रिट याचिका सं. 542 में जबलपुर स्थित मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 6 जनवरी, 2006 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से श्री बी. बी. साहनी, ज्येष्ठ अधिवक्ता और उनके साथ (सुश्री) इंद्रा साहनी

प्रत्यर्थी की ओर से श्री राजेश सिंह

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति प्रफुल्ल चन्द्र पंत ने दिया ।

न्या. पंत – यह अपील 2004 की रिट याचिका सं. 542 में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 6 जनवरी, 2006 को पारित किए गए

उस निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा रिट याचिका मंजूर की गई और याची को सेवा में बहाल किए जाने का निदेश दिया गया । उच्च न्यायालय द्वारा यह भी निदेश दिया गया कि अपीलार्थी वर्तमान प्रत्यर्थी के विरुद्ध वैसी शास्ति अधिरोपित करने पर विचार करे जैसी कि अपीलार्थी-निगम के एक अन्य कर्मचारी दालू राम पतिदार के मामले में अधिनिर्णीत की गई थी ।

2. मामले के संक्षिप्त तथ्य ये हैं कि भारतीय जीवन बीमा निगम, शहडोल के ज्येष्ठ प्रभागीय प्रबंधक ने चपरासियों (उप-कर्मचारी) की भर्ती के लिए अर्हित अभ्यर्थियों से रोजगार कार्यालय के माध्यम से आवेदन आमंत्रित किए । इसके अनुसरण में प्रत्यर्थी-त्रिवेणी शरन मिश्रा ने अपना आवेदन प्रस्तुत किया । अपीलार्थी द्वारा विहित की गई अर्हता के अनुसार अभ्यर्थी 9वीं पास होना चाहिए, किंतु ऐसे अभ्यर्थी जिन्होंने 12वीं पास की है और 50 प्रतिशत या अधिक अंक प्राप्त किए हैं, स्नातक या स्नातकोत्तर हैं, उन पर पद के लिए विचार नहीं किया जाएगा । प्रत्यर्थी (रिट याची) ने अपने आवेदन (उपाबंध पी 3) में उपरोक्त पद के लिए अपनी अर्हता "उच्चतर माध्यमिक (पुरानी 11वीं)" उल्लिखित की । अभ्यर्थी (रिट याची) द्वारा तारीख 20 जनवरी, 1996 के आवेदन के अंत में यह घोषणा की गई कि उसके पास आवेदन में उल्लिखित अर्हता के सिवाय कोई अन्य अर्हता नहीं है । प्रत्यर्थी-रिट याची को चपरासी के पद के लिए चयनित किया गया । तथापि, उसकी सेवा के कई वर्षों के पश्चात् यह पाया गया कि जब उसने यथा उपरोक्त पद के लिए आवेदन किया था तब उसके पास स्नातक की डिग्री थी और वह अर्थशास्त्र में एम. ए. (प्रथम वर्ष) कर रहा था । ऐसा पाए जाने पर अपीलार्थी द्वारा प्रत्यर्थी को आरोप पत्र दिया गया और विभागीय जांच आरंभ की गई । विभागीय जांच पूर्ण होने पर प्रत्यर्थी को अवचार का दोषी पाया गया । परिणामतः, उसे यह कारण बताओ नोटिस दिया गया कि क्यों न उसे सेवा से हटा दिया जाए । प्रत्यर्थी द्वारा प्रस्तुत किए गए उत्तर पर विचार करने के पश्चात् ज्येष्ठ प्रभागीय प्रबंधक, भारतीय जीवन बीमा निगम, शहडोल ने तारीख 30 अक्तूबर, 2000 के अपने आदेश (उपाबंध पी 11) द्वारा प्रत्यर्थी-रिट याची को सेवा से हटा दिया । प्रत्यर्थी द्वारा उक्त आदेश को विभागीय अपील प्राधिकारी अर्थात् क्षेत्रीय प्रबंधक, भारतीय जीवन बीमा निगम, दिल्ली के समक्ष चुनौती दी गई । अपील प्राधिकारी ने ज्येष्ठ प्रभागीय प्रबंधक, शहडोल द्वारा भारतीय जीवन बीमा निगम (कर्मचारिवृंद) विनियम, 1960 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "विनियम" कहा गया है) के विनियम 39(1)(च) के निबंधनों के अनुसार सेवा से हटाए

जाने की शास्ति अधिरोपित करने के विरुद्ध प्रत्यर्थी द्वारा प्रस्तुत की गई अपील पर विचार करने के पश्चात् उक्त प्राधिकारी द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण के प्रति अपनी सहमति व्यक्त की और तारीख 18 फरवरी, 2003 को अपील खारिज कर दी ।

3. प्रत्यर्थी ने उक्त आदेश से व्यथित होकर उच्च न्यायालय के समक्ष 2004 की रिट याचिका सं. 542 फाइल की । उच्च न्यायालय ने कार्यवाही करने और पक्षकारों को सुनने के पश्चात् यह पाया कि वर्तमान अपीलार्थी द्वारा तय की गई यह अर्हता कि अभ्यर्थी के पास 9वीं पास के अतिरिक्त उच्चतर अर्हता नहीं होनी चाहिए, भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के अतिक्रमण में है । उच्च न्यायालय ने यह भी पाया कि विभाग में समान रूप से स्थित एक अन्य कर्मचारी पर दो वर्ष की वेतनवृद्धि संचयी प्रभाव से रोकने की शास्ति अधिरोपित की गई थी, इसलिए रिट याची को दिया गया दंड विभेदकारी है । तद्नुसार, उच्च न्यायालय द्वारा रिट याचिका मंजूर की गई । नियोजक-भारतीय जीवन बीमा निगम ने उच्च न्यायालय के उक्त विनिश्चय से व्यथित होकर यह अपील फाइल की ।

4. हमने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना और अभिलेख पर के कागजातों का परिशीलन किया ।

5. अपीलार्थी द्वारा चपरासी के पद के लिए विहित की गई अर्हता, जैसी कि उपाबंध पी 1 में उल्लिखित है, निम्नलिखित है :–

> "(ख) अर्हताएं – 9वीं कक्षा उत्तीर्ण । तथापि, ऐसे अभ्यर्थियों पर विचार नहीं किया जाएगा जिन्होंने 12वीं कक्षा उत्तीर्ण की है और 50 प्रतिशत या अधिक अंक प्राप्त किए हैं, स्नातक या स्नातकोत्तर है ।
>
> * * * * *"

6. रिट याची को दिया गया आरोप पत्र नीचे उद्धृत किया जाता है :–

> "**आरोप पत्र**
>
> आप, श्री त्रिवेणी शरन मिश्रा, एसआर सं. 704768, उप-कर्मचारिवृंद, प्रभागीय कार्यालय, शहडोल को तद्द्वारा निम्नानुसार आरोपित किया जाता है –
>
> 1. भारतीय जीवन बीमा निगम के शहडोल प्रभागीय कार्यालय को उप-कर्मचारी के पद के लिए प्रस्तुत किए गए अपने तारीख 20 जनवरी, 1996 के आवेदन में आपने अपनी शैक्षणिक

अर्हता उच्चतर माध्यमिक (पुरानी 11वीं) उल्लिखित की है, जबकि उस समय आपकी शैक्षणिक अर्हता स्नातक स्तर की थी, जो उप-कर्मचारी के पद के लिए वांछित अर्हता से अधिक थी ।

2. आपने शैक्षणिक अर्हता के संबंध में मिथ्या कथन करके कपटपूर्वक उप-कर्मचारी के पद के लिए नियुक्ति प्राप्त की है, जबकि आपने शैक्षणिक वर्ष 1989-90 में राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, शहडोल में बी. ए. (अंतिम वर्ष) में दाखिला लिया था और परीक्षा में बैठने के लिए आपका अनुक्रमांक 48717 था । और वर्ष 1990-91 में भी आपने एम. ए. अर्थशास्त्र (प्रथम वर्ष) में नियमित छात्र के रूप में दाखिला लिया था और परीक्षा में बैठने के लिए आपका अनुक्रमांक 12696 था, जिसे आपके द्वारा जानबूझकर छिपाया गया ।

3. आपने साक्षात्कार के समय तारीख 22 मार्च, 1996 को दी गई घोषणा में भी अपनी वास्तविक शैक्षणिक अर्हता को छिपाया और 11वीं कक्षा उत्तीर्ण करने के समर्थन में राजकीय रघुराज उच्चतर माध्यमिक विद्यालय सं. 1, शहडोल का अनुलिपि स्थानांतरण प्रमाणपत्र सं. 79 कपटपूर्वक प्रस्तुत किया ।

(उन दस्तावेजों की अनंतिम सूची संलग्न है जिनके आधार पर आरोप साबित किए जाएंगे)

आपका उपर्युक्त कृत्य निगम के नियमों के उल्लंघन में है और सदाचरण पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाला है और तद्द्वारा पूर्वोक्त (कर्मचारिवृंद) विनियम, 1960 के विनियम 21, 24 और 39(1) के उपबंधों के अतिक्रमण में है, जिसके लिए आप पर विनियम 39(1)(क) से (छ) के अधीन विनिर्दिष्ट एक या अधिक शास्तियां अधिरोपित की जा सकती हैं ।

तथापि, मामले में आगे कार्यवाही करने से पूर्व, मैं तद्द्वारा आपको यह अवसर देता हूं कि या तो उपर्युक्त आरोपों को लिखित में स्वीकार करें या इनकार करें । यदि आप आरोपों को स्वीकार करते हैं, तो स्वीकार करने का कथन और आपके द्वारा आरोपों से इनकार करने की दशा में, इनकारी का कथन उन दस्तावेजों की सूची के साथ जिनके द्वारा और उन साक्षियों की सूची जिनके माध्यम से आप अपने मामले में प्रतिरक्षा करना

चाहते हैं, इस आरोप पत्र की प्राप्ति की तारीख से 15 दिन की अवधि के भीतर अधोहस्ताक्षरी को प्रस्तुत करें ।

यदि आपका लिखित कथन, जैसा कि ऊपर उल्लिखित है, नियत अवधि के भीतर प्राप्त नहीं होता है या यदि यह असमाधानप्रद पाया जाता है, तो आगे की कार्यवाहियां आपको कोई निर्देश किए बिना जारी रहेंगी ।"

7. रिट याची द्वारा उपरोक्त आरोप पत्र का विभाग को दिया गया उत्तर नीचे उद्धृत किया जाता है :–

"सेवा में

प्रभागीय प्रबंधक/भारसाधक
भारतीय जीवन बीमा निगम
प्रभागीय कार्यालय
शहडोल
मध्य प्रदेश ।

उचित माध्यम से

श्रीमान जी,

संदर्भ : भारतीय जीवन बीमा निगम (कर्मचारिवृंद) विनियम, 1960 के नियम 39 के अधीन अनुशासनिक कार्यवाहियां और मुझे तारीख 29 फरवरी, 2000 को जारी किया गया आरोप पत्र ।

उपरोक्त आरोप पत्र के संदर्भ में मेरा निवेदन निम्नलिखित है –

1. मैं एक बेरोजगार व्यक्ति था और मुझे रोजगार की अति आवश्यकता थी । इसलिए जब मुझे रोजगार कार्यालय से उप-कर्मचारी के पद की रिक्ति के संबंध में जानकारी मिली, तो मैंने तुरंत उप-कर्मचारी के पद के लिए आवेदन किया ।

2. यह सही है कि उप-कर्मचारी के पद के लिए वांछित अर्हता अन्य दस्तावेजों सहित 9वीं पास थी ।

3. चूंकि मैं 11वीं पास था, इसलिए मैंने अपनी शैक्षणिक अर्हता 11वीं पास उल्लिखित की, क्योंकि अतिरिक्त उच्चतर अर्हता आवेदित पद के उत्तरदायित्वों को पूर्ण करने में बाधक नहीं थी, इसलिए मैंने इसको उजागर नहीं किया । ऐसा करते हुए मेरा आशय अपनी अतिरिक्त अर्हता को छिपाने का नहीं था ।

4. उप-कर्मचारी के पद पर नियुक्त किए जाने के पश्चात् मैंने निगम में अत्यधिक निष्ठा, ईमानदारी और सामर्थ्य से सेवा की और मेरी उच्चतर अर्हता निगम के प्रति मेरे कर्तव्यों को पूरा करने में उपयोगी रही है । इस प्रकार मैंने विनियम 21 और 24 का अतिक्रमण नहीं किया है ।

5. यदि मैंने अनजाने में किसी नियम और विनियम का अतिक्रमण किया है, तो उसके लिए मैं खेद प्रकट करता हूं । मेरा कभी विनियमों का अतिक्रमण करने का आशय नहीं था ।

मेरी उपर्युक्त प्रार्थना के साथ आपसे यह नम्र निवेदन है कि मेरे मामले में सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण अपनाया जाए और मुझे ऊपर निर्दिष्ट आरोपों से मुक्त किया जाए ।

भवदीय,
त्रिवेणी शरन मिश्रा
उप-कर्मचारी, प्रभागीय कार्यालय,
शहडोल भर्ती क्रमांक 704768."

8. हमारे समक्ष यह बात विवादग्रस्त नहीं है कि प्रत्यर्थी उस तारीख को जब उसने चपरासी के पद के लिए अपना आवेदन प्रस्तुत किया था, पहले से ही स्नातक था और नियोजन की ईप्सा करते समय उसके द्वारा उपाबंध पी-3 में की गई यह घोषणा असत्य थी कि उसके पास कोई अन्य अर्हता नहीं है । हमारे समक्ष प्रश्न यह है कि क्या ऊपर यथा उल्लिखित अर्हता होने से भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण हुआ है या नहीं और क्या याची को पद से हटाने का दिया गया दंड, समान से अवस्थित एक कर्मचारी दालू राम पतिदार को दिए गए दंड अर्थात् केवल दो वर्षों की वेतनवृद्धि संचयी प्रभाव से रोकने के दंड को ध्यान में रखते हुए, विभेदकारी है ।

9. अपीलार्थियों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री बी. बी. साहनी ने **केरल सोलवेंट ऐक्सट्रेक्संस लिमिटेड** बनाम **ए. उन्नीकृष्णन्**[1] वाले मामले का जोरदार रूप से अवलंब लिया और यह उल्लेख किया कि उक्त मामले में 'बाडली' कर्मकार के लिए अधिकतम शैक्षणिक अर्हता 8वीं पास थी और उक्त मामले में के प्रत्यर्थी ने मिथ्या घोषणा की थी, जिसके आधार पर उसकी सेवाएं समाप्त कर दी गईं थीं ।

---

[1] (2006) 13 एस. सी. सी. 619.

उक्त मामले में इस न्यायालय ने कर्मकार की सेवाएं समाप्त करने वाले तारीख 3 मार्च, 1989 के आदेश को श्रम न्यायालय द्वारा अपास्त करने वाले तारीख 23 मार्च, 1992 के अधिनिर्णय को अभिखंडित कर दिया था और इसके अतिरिक्त श्रम न्यायालय के अधिनिर्णय को मान्य ठहराते हुए केरल उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश को भी अपास्त कर दिया था ।

10. हमने उपर्युक्त निर्णयज विधि का सावधानीपूर्वक परिशीलन किया । उक्त मामले में अंतर्वलित विवाद्यक यह नहीं था कि क्या एक चतुर्थ श्रेणी/ग्रेड-घ कर्मचारी के लिए अधिकतम अर्हता नियत की जा सकती है या नहीं और उक्त मामले में न ही यह प्रतीत होता है कि नियोजक राज्य या राज्य का अभिकरण था । **केरल सोलवेंट ऐक्सट्रेक्संस** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने जो अभिनिर्धारित किया वह यह है कि न्यायालय को अनुचित सहानुभूति नहीं दिखानी चाहिए । उक्त निर्णय का पैरा 9 और 10 नीचे उद्धृत किया जाता है :–

> "9. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री वैद्यनाथन ने यह दलील दी कि श्रम न्यायालय का तर्क अनुचितता पर आधारित है और ऐसी अतार्किक, असम्यक् उदारता और अनुचित सहानुभूति से प्रशासन का समस्त अनुशासन निष्ठाहीन हो जाएगा, हमारी राय में, यह दलील अन्यायोचित नहीं है । विद्वान् काउंसेल ने यह कहा कि प्रबंधतंत्र के पास इसी प्रकार के अनर्हित अभ्यर्थियों के उन दावों के लिए कोई उत्तर नहीं होगा जो नामंजूर किए जा सकते हैं । यह कहा जा सकता है कि जो सत्य कथन करते हैं वे घाटे में रहेंगे और जो सत्य को छिपाते हैं वे फायदे में रहेंगे । विद्वान् काउंसेल की यह भी दलील है कि न्यायिक तर्कणा में इस ढिलाई से विधिक प्रक्रिया में दुर्ग्राह्य रूप से लापरवाही और अननुमेयता आ जाएगी और अंततः न्यायिक प्रक्रिया की विधिसम्मतता को नष्ट कर देगी ।
>
> 10. हम इन दलीलों से सहमत हैं । हाल के दिनों में ऐसे प्रमाण बढ़ते जा रहे हैं और शायद यह बात सही है, किंतु न्यायिक तर्कणा और प्रक्रिया की विधिसम्मतता को निरावृत करने के प्रति यह पूर्णतः असंधार्य प्रवृत्ति है । न्यायालयों द्वारा अनुदत्त अनुतोष विधि के तानेबाने के अंतर्गत तर्कसंगत और मान्य दिखाई देने चाहिएं और यह आलोचना तर्कसंगत न हो जाए कि न्यायालयों की अधिकारिता का झुकाव अनुचित सहानुभूति, दयालुता और प्राइवेट परोपकारिता की ओर है । यह आवश्यक है कि विधिक तर्कणा की निष्ठा और निष्कर्षों

की विधिसम्मतता बनाए रखी जाए । वे विधिक निष्कर्षों के आधार पर तर्कसंगत रूप से निकाले जाने चाहिएं और न्यायिक निष्कर्ष न्यायनिष्ठ दिखाई देने चाहिएं और उन निष्कर्षों से समर्थन होना चाहिए । प्रक्रिया की विधिसम्मतता की कीमत पर गलत और अनुचित खर्चीली न्यायिक व्यवस्था के कारण अंततः पारस्परिक अनम्य स्थिति पैदा होगी और न्यायिक प्रक्रिया की निष्ठा, प्राधिकार, विश्वसनीयता और आदरभाव निरावृत हो जाएगा ।"

11. हमारी राय में, वर्तमान मामले में उच्च न्यायालय ने **मोहम्मद रियाज़ुल गनी और अन्य** बनाम **जिला और सेशन न्यायाधीश, नागपुर और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा अधिकथित की गई विधि का ठीक ही अवलंब लिया है, जिसमें इस न्यायालय ने चपरासी के पद के लिए अधिकतम अर्हता के मानदंड को उचित नहीं समझा है । उक्त निर्णय के पैरा 16 और 18 का सुसंगत भाग इसमें नीचे उद्धृत किया जाता है :–

"16. वर्तमान मामले में हमने यह पाया है कि 7वीं पास से अधिक उच्चतर शिक्षा रखने वाले अभ्यर्थियों को चपरासी के पदों के लिए विचार किए जाने के लिए पूरी तरह से बाहर कर दिया है । भर्ती नियमों में प्रोन्नति का भी उपबंध है । हम नियम 3(ii) को उद्धृत कर सकते हैं –

'(ii) जिला न्यायाधीश –

(क) चपरासी, चौकीदार, माली या सफाईकर्मी को बैलिफ के पद पर ;

(ख) चपरासी, चौकीदार, माली, सफाईकर्मी या बैलिफ को क्षेत्रीय (भाषा) परिच्छेद लेखक, अंग्रेजी परिच्छेद लेखक या लिपिक के पद पर ; और

(ग) चपरासी, चौकीदार, माली, सफाईकर्मी, बैलिफ, क्षेत्रीय (भाषा) परिच्छेद लेखक और अंग्रेजी परिच्छेद लेखक या लिपिक को आशुलिपिक के पद पर,

प्रोन्नत कर सकेगा ।'

* * * * *

18. यदि किसी अभ्यर्थी की चपरासी के पद पर नियुक्ति उसकी

---

[1] (2002) 2 एस. सी. सी. 606.

7वीं पास अर्हता होने तक निर्बंधित की जाती है, तो उसे क्षेत्रीय (भाषा) परिच्छेद लेखक या लिपिक.....के पद प्रोन्नति का अवसर नहीं मिलेगा ।"

12. तथापि, अपीलार्थियों की ओर से यह दलील दी गई है कि नियोजन प्राप्त करने के लिए तात्विक जानकारी छिपाना और मिथ्या कथन करना सेवा से पदच्युति के लिए एक गंभीर अपराध है । अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने इस संबंध में **केन्द्रीय विद्यालय संगठन और अन्य** बनाम **राम रत्तन यादव**[1] वाले मामले को निर्दिष्ट किया । किंतु हमारी राय में अपीलार्थियों की ओर से निर्दिष्ट उपर्युक्त मामले को वर्तमान मामले में लागू नहीं किया जा सकता है और कारण यह है कि उक्त मामले में कर्मचारी ने अपने चरित्र और पूर्ववृत्त से संबंधित तथ्यों को छिपाया था । उक्त मामले में कर्मचारी, जिसे अध्यापक के पद के लिए चयनित किया गया था, ने यह जानकारी छिपायी थी कि उसके विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 323, 341, 294 और 506ख के अधीन दंडनीय अपराधों से संबंधित एक आपराधारिक मामला दर्ज किया गया था । इसलिए वर्तमान मामले के तथ्यों को निर्दिष्ट किए गए मामले के तथ्यों के समान नहीं माना जा सकता है ।

13. हमारे समक्ष अभिलेख पर के कागजातों से यह प्रतीत होता है कि नौकरी प्राप्त करने के लिए कम अर्हता होने का उल्लेख करने के लिए समान रूप से अवस्थित एक अन्य कर्मचारी (दालू राम पतिदार) को भारतीय जीवन बीमा निगम द्वारा दो वर्ष की वेतनवृद्धि संचयी प्रभाव से रोकने का दंड देकर मुक्त कर दिया गया था । हमारी यह राय है कि उच्च न्यायालय ने रिट याचिका मंजूर करते हुए और रिट याची को बहाल करने के पश्चात् उस पर इसी प्रकार की शास्ति अधिरोपित करने पर विचार करने के लिए नियोजक को निदेश देते हुए ठीक ही उक्त तथ्य पर विचार किया है ।

14. अतः उपरोक्त चर्चा को दृष्टिगत करते हुए हम उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई पर्याप्त कारण नहीं पाते हैं । तद्नुसार, यह अपील खारिज की जाती है । खर्चे के लिए कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

जस.

---

[1] (2003) एस. सी. सी. 437.

आशीष कुमार सामंत और अन्य

बनाम

पश्चिमी बंगाल राज्य और अन्य

4 सितम्बर, 2014

मुख्य न्यायमूर्ति आर. एम. लोढा, न्यायमूर्ति कुरियन जोसेफ और न्यायमूर्ति रोहिन्टन फाली नरीमन

पश्चिमी बंगाल सेवा (ज्येष्ठता का अवधारण) नियम, 1981 – नियम 6(2) – ज्येष्ठता – उच्च न्यायालय द्वारा प्रोन्नति पर रोकादेश – रोकादेश के बातिल होने के पश्चात् प्रोन्नति के लिए चयन प्रक्रिया प्रारंभ – न्यायालय द्वारा अंतरिम अनुतोष प्रदान करके हस्तक्षेप किए जाने के कारण प्राइवेट प्रत्यर्थी को नुकसान पहुंचने नहीं दिया जा सकता था ।

22 वन रेंजर काडर में प्रोन्नति कोटे की रिक्ति तारीख 1 जनवरी, 1989 को उद्भूत हुई थी । किन्तु उनके मामले पर इसलिए कार्यवाही नहीं की जा सकी क्योंकि उच्च न्यायालय ने प्राधिकारियों को उन्हें पश्चिमी बंगाल वन सेवा में प्रोन्नति देने से अवरुद्ध करते हुए अंतरिम आदेश पारित कर दिया था । रोकादेश तारीख 11 दिसम्बर, 1990 को बातिल कर दिया गया था । इसके पश्चात् ही प्रोन्नति के लिए चयन प्रक्रिया प्रारंभ हुई थी । इसी कारण लोक सेवा आयोग ने यह सिफारिश की कि प्राइवेट प्रत्यर्थियों को तारीख 31 दिसम्बर, 1990 से भूतलक्षी प्रभाव से ज्येष्ठता प्रदान की जाए । पश्चिमी बंगाल सेवा (ज्येष्ठता का अवधारण) नियम, 1981 (जिसे संक्षेप में "1981 के नियम" कहा गया है) के नियम 6(2) के अनुसार प्रोन्नत किए गए व्यक्ति उसी वर्ष के सीधे भर्ती किए गए व्यक्तियों से सामूहिक रूप से ज्येष्ठ होंगे, रिट याचिका में के प्राइवेट प्रत्यर्थियों को तारीख 1 जनवरी, 1990 से काल्पनिक ज्येष्ठता प्रदान की गई थी । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – यू. डी. लामा और अन्य बनाम सिक्किम राज्य वाले मामले की विधिक स्थिति प्रस्तुत तथ्यात्मक स्थिति को भी समान रूप से लागू होती है । प्राइवेट प्रत्यर्थियों को न्यायालय द्वारा अंतरिम अनुतोष के रूप में

हस्तक्षेप किए जाने के कारण नुकसान नहीं पहुंचने दिया जा सकता था । राज्य सरकार, न्यायालय द्वारा पारित रोकादेश के कारण नियमों के अधीन प्रोन्नति द्वारा चयन करने की कार्यवाही करने की स्थिति में नहीं थी । जैसे ही रोकादेश बातिल कर दिया गया था, प्रोन्नति द्वारा चयन के लिए कार्यवाही प्रारंभ की गई थी । इन परिस्थितियों में, आक्षेपित ज्येष्ठता सूची के बारे में यह नहीं कहा जा सकता है कि वह विधिक रूप से त्रुटिपूर्ण है । द्वितीयतः, कुछ प्राइवेट प्रत्यर्थी, जिन्हें पश्चिमी बंगाल सेवा (ज्येष्ठता का अवधारण) नियम, 1981 के नियम 6(2) के आधार पर तारीख 1 जनवरी, 1980 को प्रोन्नति प्रदान की गई थी, पहले ही अधिवर्षिता प्राप्त कर चुके हैं । उपर्युक्त दृष्टिकोण से मामले को दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ के पास वापस भेजना आवश्यक नहीं है । (पैरा 5, 6 और 7)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[1997]	(1997) 1 एस. सी. सी. 111 : **यू. डी. लामा और अन्य** बनाम **सिक्किम राज्य और अन्य** ।	2,3,5

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2001 की सिविल अपील सं. 1331.

1997 के डब्ल्यू. पी. एस. टी. सं. 33(डब्ल्यू.) को खारिज करते हुए कलकत्ता उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा पारित तारीख 24 मार्च, 1999 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से — सर्वश्री रुपेश कुमार, परवेश बहुगुणा और (सुश्री) पंखुरी श्रीवास्तव

प्रत्यर्थियों की ओर से — सर्वश्री पी. पी. राव, ज्येष्ठ अधिवक्ता, अनिप सचदे, सौमित्र जी. चौधरी, (सुश्री) शगुन माटा, (श्रीमती) सरला चन्द्रा, राज कुमार मेहता, (सुश्री) रजनी के. प्रसाद, (सुश्री) आभा आर. शर्मा, रेरी मंगस्तबन, रामेश्वर प्रसाद गोयल, सत्येन्द्र कुमारसिंह, सुमिरन शर्मा, अहंतम बिमल सिंह, अहंतम हैनरी, अहंतम रोहन सिंह, अनिल कुमार मिश्रा-I और विवेक कुमार

न्यायालय का निर्णय मुख्य न्यायमूर्ति आर. एम. लोढा ने दिया ।

मु. न्या. लोढा – इस निर्देश का दो कारणों से उत्तर देना आवश्यक नहीं है ।

2. प्रथमतः, इससे पूर्व दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा इस मुद्दे पर निर्देशित तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ का विनिश्चय, अर्थात्, **यू. डी. लामा और अन्य** बनाम **सिक्किम राज्य और अन्य**[1] वाले मामले का विनिश्चय विद्यमान है । **यू. डी. लामा** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने रिपोर्ट के पैरा 20 और पैरा 21 में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया था :–

> "20. दूसरी ओर, इस बात को अनदेखा नहीं किया जा सकता है कि अपीलार्थियों को नियुक्ति की नियमित प्रक्रिया का अनुसरण करते हुए नियुक्त नहीं किया गया था । नियम 4(1) के अधीन नई सृजित राज्य सिविल सेवा में भर्ती सिक्किम लोक सेवा आयोग द्वारा ली जाने वाली प्रतियोगी परीक्षाओं द्वारा की जा सकती थी । यह प्रतियोगिता ऐसे व्यक्तियों तक सीमित नहीं है जो पहले से सरकारी नियोजन में हैं । भर्ती की दूसरी पद्धति ऐसे व्यक्तियों में से 'चयन करके है, जो सिक्किम राज्य के कामकाज के संबंध में सेवा कर रहे हैं ।' भर्ती के दूसरे प्रवर्ग में लिखित और मौखिक परीक्षा आयोजित करने का विनिर्दिष्ट रूप से कोई उपबंध अधिकथित नहीं किया गया है । प्रत्यर्थियों का दावा यह है कि यदि नियम 4(1)(ख) में दी गई प्रक्रिया का अनुपालन किया गया होता तो वे किसी परीक्षा के बिना सेवा में प्रवेश कर गए होते । किन्तु सरकार द्वारा आयोग की स्थापना करने या अध्यक्ष नियुक्त करने में असफल होने के कारण उनके विधिपूर्ण अपवाद से इनकार किया गया था । जो कुछ सामान्य अनुक्रम में होना चाहिए था वह सरकार की असफलता के कारण नहीं हुआ । एकमात्र इसी कारण, नियमों के पूर्णतः विपरीत, लिखित और मौखिक परीक्षाएं आयोजित की गई थीं । इसे इस न्यायालय द्वारा मुख्यतः ऐसे आधार पर कायम रखा गया था जिसे 'विशिष्ट स्थिति' के रूप में वर्णित किया गया था जो कि आयोग और उसका अध्यक्ष

---

[1] (1997) 1 एस. सी. सी. 111.

न होने के कारण सृजित हुई थी । वर्ष 1982 में किया गया चयन और की गई नियुक्तियां उस समय विद्यमान विशिष्ट परिस्थितियों के कारण थीं । वे नियुक्तियां यथार्थतः नियमों के अनुसार नहीं की गई थीं बल्कि जैसा कि इस न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है, राज्य की कार्यपालक शक्ति का प्रयोग करते हुए की गई थीं । यह सही है कि कुछ प्रत्यर्थी परीक्षाओं में बैठे और उत्तीर्ण नहीं हुए किन्तु प्रत्यर्थियों की इस दलील में सार है कि यदि नियम 4(1)(ख) का अनुपालन किया गया होता तो वे इन परीक्षाओं के बिना भी नियुक्त किए जाने के हकदार थे । उन्हें इस अवसर से वंचित रखा गया था । नियम 4(1)(ख) की दृष्टि से भी कोई नियुक्ति करने के लिए लोक सेवा आयोग का माध्यम आवश्यक नहीं था । अब चूंकि लोक सेवा आयोग की स्थापना हो गई है इसलिए राज्य सरकार को उस गलती को सुधारना है जो कि इन कर्मचारियों के साथ आरंभ में की गई थीं जब उन्हें उन परीक्षाओं के अध्यधीन रखा गया था जो कि नियम 4(1)(ख) द्वारा अपेक्षित नहीं थीं । इसलिए, राज्य सरकार की ओर से उसके द्वारा अधिकथित नियमों के कार्यान्वित करने में हुई असफलता के कारण उन्हें किसी भी प्रकार से ज्येष्ठता या प्रोन्नति के मामले में नुकसान नहीं पहुंचने देना चाहिए । इन परिस्थितियों में, राज्य सरकार ने नए भर्ती किए गए व्यक्तियों को उस तारीख को, जिसको अपीलार्थियों की भर्ती की गई थी, भर्ती किए गए मानने का निदेश देकर कुछ भी प्रतिकूल या गलत नहीं किया है बल्कि राज्य सरकार द्वारा उन्हें नियम 4(1)(ख) के अनुसार सेवा में भर्ती करने के संबंध में हुई असफलता के कारण प्रत्यर्थियों के साथ हुए अन्याय को दूर किया है । वास्तव में, अपीलार्थियों के लिए नियमों के अधीन सेवा में प्रवेश करने का एकमात्र मार्ग नियम 4(1)(ख) के माध्यम से सेवा में प्रवेश करना था । वे खुली प्रतियोगिता के माध्यम से भी प्रवेश कर सकते थे किन्तु इनमें से कोई भी कदम नहीं उठाया गया था या उठाया जा सकता था । इन परिस्थितियों में, अपीलार्थियों ने वास्तव में उन परीक्षाओं में सफल होकर, जो कि किसी भी दशा में आयोजित नहीं की जानी चाहिए थीं, प्रत्यर्थियों से आगे निकलने का प्रयास किया था ।

(जोर देने के लिए रेखांकित)

21. हमारा यह मत है कि प्रत्यर्थियों की दलील अवश्य ही कायम रखी जानी चाहिए । विवादग्रस्त मुद्दे की राज्य सरकार द्वारा स्थापित दो समितियों द्वारा सविस्तार परीक्षा की गई है । इस न्यायालय का पूर्ववर्ती निर्णय जिसके द्वारा अपीलार्थियों की भर्ती को कायम रखा गया था, राज्य सरकार द्वारा राज्य लोक सेवा आयोग नियुक्त करने में असफल रहने के कारण किया गया था । चूंकि कई वर्षों से कोई नियुक्ति नहीं की जा रही थी इसलिए सरकार ने एक लिखित परीक्षा आयोजित करने की युक्ति अपनाई जो कि नियमों द्वारा अधिकथित नहीं की गई थी । इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि विशिष्ट परिस्थितियों में यह न्यायोचित था । तथापि, इसका यह अभिप्राय नहीं है कि राज्य सरकार विरचित नियमों के आधार पर सेवा को नियमित करने की हकदार नहीं होगी । अपीलार्थी, जिन्हें अत्यंत विशेष परिस्थितियों में नियुक्त किया गया था, प्रोन्नति या ज्येष्ठता के मामले में किसी विशेष अधिकार का दावा नहीं कर सकते हैं । यह प्रत्यर्थियों का दोष नहीं था कि नियुक्तियां नियमों के अनुसार समय पर नहीं की जा सकी थीं । मामले को समग्र दृष्टि से देखते हुए हमारी यह राय है कि उच्च न्यायालय ने सही विनिश्चय किया है । अतः, यह अपील खारिज की जाती है और खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।"

3. हम **यू. डी. लामा** (उपर्युक्त) वाले मामले में प्रतिपादित विधिक स्थिति से ससम्मान सहमत हैं ।

4. प्रस्तुत मामले के तथ्यों को उपर्युक्त विधिक स्थिति लागू करते हुए यह उल्लेखनीय है कि 22 वन रेंजर काडर में प्रोन्नति कोटे की रिक्ति तारीख 1 जनवरी, 1989 को उद्भूत हुई थी । किन्तु उनके मामले पर इसलिए कार्यवाही नहीं की जा सकी क्योंकि उच्च न्यायालय ने प्राधिकारियों को उन्हें पश्चिमी बंगाल वन सेवा में प्रोन्नति देने से अवरुद्ध करते हुए अंतरिम आदेश पारित कर दिया था । रोकादेश तारीख 11 दिसम्बर, 1990 को बातिल कर दिया गया था । इसके पश्चात् ही प्रोन्नति के लिए चयन प्रक्रिया प्रारंभ हुई थी । इसी कारण लोक सेवा आयोग ने यह सिफारिश की कि प्राइवेट प्रत्यर्थियों को तारीख 31 दिसम्बर, 1990 से भूतलक्षी प्रभाव से ज्येष्ठता प्रदान की जाए । पश्चिमी बंगाल सेवा (ज्येष्ठता

का अवधारण) नियम, 1981 (जिसे संक्षेप में "1981 के नियम" कहा गया है) के नियम 6(2) के अनुसार प्रोन्नत किए गए व्यक्ति उसी वर्ष के सीधे भर्ती किए गए व्यक्तियों से सामूहिक रूप से ज्येष्ठ होंगे, रिट याचिका में के प्राइवेट प्रत्यर्थियों को तारीख 1 जनवरी, 1990 से काल्पनिक ज्येष्ठता प्रदान की गई थी ।

5. **यू. डी. लामा** (उपर्युक्त) वाले मामले की विधिक स्थिति प्रस्तुत तथ्यात्मक स्थिति को भी समान रूप से लागू होती है । प्राइवेट प्रत्यर्थियों को न्यायालय द्वारा अंतरिम अनुतोष के रूप में हस्तक्षेप दिए जाने के कारण नुकसान नहीं पहुंचने दिया जा सकता था । राज्य सरकार, न्यायालय द्वारा पारित रोकादेश के कारण नियमों के अधीन प्रोन्नति द्वारा चयन करने की कार्यवाही करने की स्थिति में नहीं थी । जैसे ही रोकादेश बातिल कर दिया गया था, प्रोन्नति द्वारा चयन के लिए कार्यवाही प्रारंभ की गई थी । इन परिस्थितियों में, आक्षेपित ज्येष्ठता सूची के बारे में यह नहीं कहा जा सकता है कि वह विधिक रूप से त्रुटिपूर्ण है ।

6. द्वितीयतः, कुछ प्राइवेट प्रत्यर्थी, जिन्हें 1981 के नियमों के नियम 6(2) के आधार पर तारीख 1 जनवरी, 1980 को प्रोन्नति प्रदान की गई थी, पहले ही अधिवर्षिता प्राप्त कर चुके हैं ।

7. हम समझते हैं कि उपर्युक्त दृष्टिकोण से मामले को दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ के पास वापस भेजना आवश्यक नहीं है । सिविल अपील खारिज की जाती है और खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

ग्रो.

तनुआ रबिदास

बनाम

असम राज्य

4 सितम्बर, 2014

न्यायमूर्ति एम. वाई. इकबाल और न्यायमूर्ति पिनाकी चंद्र घोस

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 [सपठित साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 32] – हत्या – मृत्युकालिक कथन – मृतका द्वारा अपनी मृत्यु से पूर्व डाक्टर तथा नर्स के समक्ष किए गए कथन, कि उसके पति ने उस पर मिट्टी का तेल छिड़का और आग लगा दी, की संपुष्टि मृतका द्वारा अन्य साक्षियों की मौजूदगी में किए गए इसी प्रकार के कथन से होने पर अभियुक्त-अपीलार्थी की दोषसिद्धि और दंडादेश उचित हैं ।

अपीलार्थी-अभियुक्त का विवाह मृतका के साथ हुआ था और दोनों एक साथ रह रहे थे और उनकी कोई संतान नहीं थी । उनके विवाह वर्षगांठ के दिन अभियुक्त-अपीलार्थी ने अपनी पत्नी पर मिट्टी का तेल छिड़का और उसे आग लगा दी । उसे तुरंत अस्पताल ले जाया गया । विपदग्रस्त की दाह-क्षतियों के कारण मृत्यु हो गई । उसने अपनी मृत्यु से पूर्व ये दो मृत्युकालिक कथन किए कि उसके पति ने उस पर मिट्टी का तेल छिड़का और आग लगा दी । पुलिस थाने में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दाखिल की गई । पुलिस ने अन्वेषण करने के पश्चात् आरोप पत्र प्रस्तुत किया । विचारण न्यायालय ने अभियोजन पक्ष द्वारा दो मृत्युकालिक कथनों सहित प्रस्तुत किए गए साक्ष्य के आधार पर अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध का दोषी पाया और तद्नुसार उसे आजीवन कारावास का दंडादेश दिया । उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई अपील पर संपूर्ण साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन किया और विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित किए गए निष्कर्ष की अभिपुष्टि की तथा अपील खारिज कर दी । अभियुक्त-अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के निर्णय से व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – न्यायालय ने साक्ष्य का परिशीलन किया और न्यायालय

का यह निष्कर्ष है कि अभि. सा. 6, डा. लंगकुमार और अभि. सा. 7, नबनीता बरुआ के इस कथन की कि विपदग्रस्त ने यह मृत्युकालिक कथन किया था कि उसके पति ने उस पर मिट्टी का तेल छिड़क दिया और उसे आग लगा दी, अभि. सा. 1 और अभि. सा. 8 द्वारा पूरी तरह संपुष्टि की गई है । श्री गोस्वामी ने जोरदार रूप से यह दलील दी कि अभि. सा. 6, डा. लंगकुमार के साक्ष्य पर विश्वास नहीं किया जा सकता है क्योंकि जब मृतका को अस्पताल लाया गया था तब अभि. सा. 6 ने मृतका द्वारा किए गए मृत्युकालिक कथन के बारे में पुलिस को सूचित नहीं किया था । न्यायालय श्री गोस्वामी द्वारा दी गई दलील में कोई बल नहीं पाता है । निर्विवाद रूप से, अभि. सा. 6, डा. लंगकुमार और अभि. सा. 7, नबनीता बरुआ का विपदग्रस्त से संपर्क केवल तब हुआ था जब उसे उपचार के लिए अस्पताल लाया गया था । अभिलेख पर यह दर्शित करने के लिए कुछ नहीं है कि विपदग्रस्त की उनसे जान-पहचान थी । इसके अतिरिक्त, वे विपदग्रस्त के नातेदार नहीं हैं और न ही वे हितबद्ध साक्षी हैं । मामले को इस दृष्टि से देखते हुए, अभि. सा. 6, डा. लंगकुमार और अभि. सा. 7, नबनीता बरुआ का साक्ष्य अति महत्वपूर्ण साक्ष्य है और विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दोषसिद्ध करके और उच्च न्यायालय द्वारा इसकी अभिपुष्टि करके ठीक किया है । (पैरा 12, 13, 14 और 15)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[1996]	(1996) 8 एस. सी. सी. 217 : **राजस्थान राज्य** बनाम **किशोर** ।	17

निर्दिष्ट निर्णय

[2011]	(2011) 10 एस. सी. सी. 173 : **सुरिन्द्र सिंह** बनाम **हरियाणा राज्य** ।	10, 16

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2007 की दांडिक अपील सं. 1503.

2006 की दांडिक अपील सं. 118 में गुवाहाटी उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 20 मार्च, 2007 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से	सर्वश्री पी. के. गोस्वामी, ज्येष्ठ अधिवक्ता और उनके साथ पार्थिव गोस्वामी, ए. हेनरी और राजीव के. मेहता
प्रत्यर्थी की ओर से	श्री अविजित राय (मैसर्स कारपोरेट ला ग्रुप की ओर से)

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति एम. वाई. इकबाल ने दिया ।

न्या. इकबाल – अपीलार्थी का सह-अभियुक्त सरबनंदा दास के साथ भारतीय दंड संहिता की धारा 302/326/34 के अधीन अपराध के लिए विचारण किया गया था । अपर सेशन न्यायाधीश, जोरहट ने 2005 के सेशन मामला सं. 27 (जे. जे.) में तारीख 30 मार्च, 2006 के निर्णय द्वारा सह-अभियुक्त सरबनंदा दास को दोषमुक्त कर दिया किंतु अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध का दोषी ठहराया और उसे कठोर आजीवन कारावास भोगने और 1,000/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने का दंडादेश, व्यतिक्रम खंड के साथ, दिया । अपीलार्थी ने इससे व्यथित होकर उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्च न्यायालय ने 2006 की दांडिक अपील सं. 118 में तारीख 20 मार्च, 2007 को पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा अपीलार्थी की दोषसिद्धि और दंडादेश की अभिपुष्टि की और उक्त अपील खारिज कर दी । अपीलार्थी ने इससे व्यथित होकर विशेष इजाजत लेकर यह अपील फाइल की ।

2. अभियोजन पक्ष के अनुसार, अपीलार्थी-अभियुक्त, तनुआ रबिदास समाज कल्याण विभाग में सहायक के रूप में कार्यरत था । उसका विवाह मीरा सैकिया रबिदास के साथ हुआ था और दोनों एक साथ रह रहे थे और उनकी कोई संतान नहीं थी । यह अभिकथन किया गया है कि उनके विवाह वर्षगांठ के दिन अभियुक्त-अपीलार्थी तथा सह-अभियुक्त सरबनंदा दास मकान में मौजूद थे । अपीलार्थी ने अपनी पत्नी पर मिट्टी का तेल छिड़का और उसे आग लगा दी । उसे तुरंत मिसन अस्पताल, जोरहट ले जाया गया और वहां से उसे डिबरुगढ़ चिकित्सा महाविद्यालय अस्पताल ले जाया गया । विपदग्रस्त की दाह-क्षतियों के कारण मृत्यु हो गई । विपदग्रस्त के भाई अतुल सैकिया (अभि. सा. 1) द्वारा जोरहट पुलिस थाने में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट (मामला सं. 496/99) दाखिल की गई । पुलिस ने प्रायिक अन्वेषण करने के पश्चात् दोनों अभियुक्तों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता

की धारा 302/326/34 के अधीन आरोप पत्र प्रस्तुत किया और तद्नुसार मामला सेशन न्यायालय के सुपुर्द किया गया ।

3. अभियोजन पक्ष ने कुल सात साक्षियों की परीक्षा कराई । विपदग्रस्त के भाई अभि. सा. 1, अतुल सैकिया ने अपने साक्ष्य में यह कथन किया कि उसकी बहिन का विवाह अभियुक्त-अपीलार्थी के साथ घटना से नौ वर्ष पूर्व हुआ था । उसने यह अभिसाक्ष्य दिया कि उसकी बहिन से विवाह होने से पूर्व अभियुक्त-अपीलार्थी की दो पत्नियां थीं और उसने उसकी बहिन से विवाह करने से पूर्व पहली पत्नी का अभित्यजन कर दिया था । घटना के बारे में सूचना प्राप्त होने पर यह साक्षी अस्पताल गया और डाक्टर द्वारा यह परामर्श दिया गया कि वह अपनी बहिन को बेहतर उपचार के लिए डिबरुगढ़ चिकित्सा महाविद्यालय अस्पताल ले जाए ।

4. अभि. सा. 2 अभियुक्त-अपीलार्थी का उसकी पहली पत्नी से उत्पन्न पुत्र है । वह उन दोनों के साथ रह रहा था, किंतु उसने यह अभिसाक्ष्य दिया कि उसने शोर-गुल सुनाई देने के पश्चात् अपनी सौतेली माता को दरवाजे के निकट देखा था ।

5. अभि. सा. 3 और अभि. सा. 4 विपदग्रस्त के पड़ोसी हैं । शोर-गुल सुनाई देने के पश्चात् उन्होंने विपदग्रस्त को दरवाजे के निकट देखा था । अभि. सा. 8, अभि. सा. 1 के साथ अस्पताल गया था और उसने यह अभिसाक्ष्य दिया कि मृतका ने उनकी मौजूदगी में यह कहते हुए एक मृत्युकालिक कथन किया था कि उसके पति ने उसे आग लगाई थी ।

6. घटना के समय मौजूद एक अन्य व्यक्ति मामू बारबरा, नौकरानी थी । उसका कथन दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के अधीन अभिलिखित किया गया था किंतु उसकी गैर-मौजूदगी के कारण उसकी परीक्षा नहीं कराई जा सकी और उसका कोई अता-पता नहीं था ।

7. डा. रूपक कुमार गोगोई, जिसने विपदग्रस्त के शव की शव-परीक्षा की थी, की परीक्षा कराई गई । उसने यह राय व्यक्त की कि मृत्यु-पूर्व आग की लपटों में जलने से पहुंची क्षतियों, जिसमें शरीर की बाह्य त्वचा 90 प्रतिशत जल गई थी, और गंभीर डरमो ऐपीडरमल के परिणामस्वरूप पहुंचे सदमे के कारण मृत्यु हुई थी ।

8. विपदग्रस्त ने मौखिक मृत्युकालिक कथन के अतिरिक्त अभि. सा. 6, डा. ईम्नुकसुगंबा लंगकुमार, जो जोरहट क्रिश्चियन अस्पताल में कार्यरत था, के समक्ष भी एक मृत्युकालिक कथन किया था । इस साक्षी ने यह

अभिसाक्ष्य दिया कि उसने तारीख 4 दिसम्बर, 1999 को विपदग्रस्त, जिसे जली हुई हालत में अस्पताल लाया गया था, की परीक्षा की थी । इस साक्षी ने यह भी अभिसाक्ष्य दिया कि उसने रोगी से यह पूछा था कि उसे दाह-क्षतियां कैसे पहुंचीं, जिस पर उसने यह बताया कि उसके पति ने उस पर मिट्टी का तेल छिड़क दिया और आग लगा दी । अभि. सा. 6, डा. लंगकुमार ने केस का इतिवृत्त अभिलिखित करते समय उक्त रिपोर्ट (प्रदर्श 6) में विपदग्रस्त द्वारा किया गया कथन भी अभिलिखित किया था । अभि. सा. 6, डा. लंगकुमार के साक्ष्य का समर्थन अभि. सा. 7, नबनीता बरुआ, जो एक नर्स है और उक्त अस्पताल में विपदग्रस्त की देखरेख कर रही थी, द्वारा किया गया है ।

9. विचारण न्यायालय ने अभियोजन पक्ष द्वारा दो मृत्युकालिक कथनों सहित प्रस्तुत किए गए साक्ष्य के आधार पर अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध का दोषी पाया और तद्नुसार उसे आजीवन कारावास भुगतने और 1,000/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने, व्यतिक्रम खंड के साथ, का दंडादेश दिया । उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई अपील पर संपूर्ण साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन किया और विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित किए गए निष्कर्ष की अभिपुष्टि की तथा अपील खारिज कर दी ।

10. अपीलार्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल, श्री पी. के. गोस्वामी ने उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय और आदेश को दो आधारों पर चुनौती दी । उसने प्रथमतः यह दलील दी कि प्रदर्श 6 अर्थात् डा. लंगकुमार द्वारा तैयार की रिपोर्ट का कोई अवंलब नहीं लिया जा सकता है क्योंकि यह अभिकथित रूप से एक मौखिक मृत्युकालिक कथन है और यह बात अति संदेहास्पद है कि विपदग्रस्त उस समय बोलने की हालत में थी या नहीं जब उसे 90 प्रतिशत दाह-क्षतियों के साथ जोरहट मिसन अस्पताल में भर्ती कराया गया था । विद्वान् काउंसेल ने **सुरिन्द्र सिंह** बनाम **हरियाणा राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय का अवलंब लिया । उसने यह दलील दी कि विपदग्रस्त के शरीर से मिट्टी के तेल की कोई गंध नहीं आ रही थी जिससे अभियोजन का संपूर्ण पक्षकथन मिथ्या हो जाता है ।

11. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी-राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि अभियोजन ने अपने पक्षकथन को सभी

---

[1] (2011) 10 एस. सी. सी. 173.

युक्तियुक्त संदेह के परे साबित किया है । अभि. सा. 6 और अभि. सा. 7 अर्थात् डा. लंगकुमार और नबनीता बरुआ, नर्स, जोरहट मिसन अस्पताल के साक्ष्य की अभि. सा. 1 और अभि. सा. 8 द्वारा पूरी तरह संपुष्टि की गई है ।

12. हमने साक्ष्य का परिशीलन किया और हमारा यह निष्कर्ष है कि अभि. सा. 6, डा. लंगकुमार और अभि. सा. 7, नबनीता बरुआ के इस कथन की कि विपदग्रस्त ने यह मृत्युकालिक कथन किया था कि उसके पति ने उस पर मिट्टी का तेल छिड़क दिया और उसे आग लगा दी, अभि. सा. 1 और अभि. सा. 8 द्वारा पूरी तरह संपुष्टि की गई है ।

13. श्री गोस्वामी ने जोरदार रूप से यह दलील दी कि अभि. सा. 6, डा. लंगकुमार के साक्ष्य पर विश्वास नहीं किया जा सकता है क्योंकि जब मृतका को अस्पताल लाया गया था तब अभि. सा. 6 ने मृतका द्वारा किए गए मृत्युकालिक कथन के बारे में पुलिस को सूचित नहीं किया था ।

14. हम श्री गोस्वामी द्वारा दी गई दलील में कोई बल नहीं पाते हैं । निर्विवाद रूप से, अभि. सा. 6, डा. लंगकुमार और अभि. सा. 7, नबनीता बरुआ का विपदग्रस्त से संपर्क केवल तब हुआ था जब उसे उपचार के लिए अस्पताल लाया गया था । अभिलेख पर यह दर्शित करने के लिए कुछ नहीं है कि विपदग्रस्त की उनसे जान-पहचान थी । इसके अतिरिक्त, वे विपदग्रस्त के नातेदार नहीं हैं और न ही वे हितबद्ध साक्षी हैं ।

15. मामले को इस दृष्टि से देखते हुए, अभि. सा. 6, डा. लंगकुमार और अभि. सा. 7, नबनीता बरुआ का साक्ष्य अति महत्वपूर्ण साक्ष्य है और विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दोषसिद्ध करके और उच्च न्यायालय द्वारा इसकी अभिपुष्टि करके ठीक किया है ।

16. श्री गोस्वामी द्वारा अवलंबित **सुरिन्द्र कुमार** (उपरोक्त) वाले मामले में का विनिश्चय प्रभेदनीय है और इसका स्पष्ट कारण यह है कि मृत्युकालिक कथन से अभियोजन के वृत्तांत का पूरी तरह से समर्थन होता है ।

17. इसके अतिरिक्त, सेशन न्यायालय का सावधानीपूर्वक संवीक्षा करने के पश्चात् पूरी तरह यह समाधान हो गया था कि अभि. सा. 6, डा. लंगकुमार का साक्ष्य सत्य है और इसके प्रतिकूल ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है कि किसी व्यक्ति द्वारा मृतका को मिथ्या कथन करने के लिए उत्प्रेरित किया गया था । इसके अतिरिक्त, रासायनिक परीक्षा के लिए भेजे गए

मृतका के बालों में से मिट्टी के तेल की गंध की गैर-मौजूदगी से मृत्युकालिक कथन संदिग्ध और अविश्वसनीय नहीं हो जाता है, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा **राजस्थान राज्य** बनाम **किशोर**[1] वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है ।

18. हमारे द्वारा मामले में गंभीरता से विचार करने के पश्चात्, हमारा यह निष्कर्ष है कि विचारण न्यायालय द्वारा पारित और उच्च न्यायालय द्वारा अभिपुष्ट दोषसिद्धि और दंडादेश के निर्णय और आदेश में कोई कमी या अनुचितता नहीं है ।

19. उपर्युक्त कारणों से, इस अपील में कोई गुणागुण नहीं है और इसे तद्नुसार खारिज किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

जस.

[2014] 4 उम. नि. प. 403

नरेन्द्र सिंह

बनाम

न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य

4 सितम्बर, 2014

न्यायमूर्ति एम. वाई. इकबाल और न्यायमूर्ति पिनाकी चन्द्र घोष

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 39, 43 और 192 – मोटर यान का रजिस्ट्रीकरण – अस्थायी रजिस्ट्रीकरण – किसी प्रकार के रजिस्ट्रीकरण के बिना सार्वजनिक मार्ग पर यान का प्रयोग करना न केवल मोटर यान अधिनियम की धारा 192 के अधीन दंडनीय अपराध है बल्कि बीमा पालिसी संबंधी संविदा की शर्तों और निबंधनों का आधारभूत भंग भी है ।

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 39 –

---

[1] (1996) 8 एस. सी. सी. 217.

अस्थायी रजिस्ट्रीकरण – कोई व्यक्ति विधिमान्य रजिस्ट्रीकरण के बिना कोई मोटर यान नहीं चलाएगा तथा अस्थायी रजिस्ट्रीकरण तब तक एक मास से अनधिक की अवधि के लिए विधिमान्य होता है जब तक वह अवधि मोटर यान के स्वामी के नियंत्रण से परे किन्हीं अनिश्चित परिस्थितियों में बढ़ाई न गई हो ।

याची-परिवादी ने एक महिन्द्रा पिक-अप बी. एस.- II 4 डब्ल्यू. डी. यान क्रय किया था और उसे प्रत्यर्थी सं. 1 - मैसर्स न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड के पास 12 दिसम्बर, 2005 से 11 दिसम्बर, 2006 की अवधि के लिए 4,30,037/- रुपए की रकम के लिए बीमाकृत कराया था । वह यान अस्थायी रूप से एक मास की अवधि के लिए रजिस्ट्रीकृत था जो कि तारीख 11 जनवरी, 2006 को समाप्त हो गई थी । तथापि, तारीख 2 फरवरी, 2006 को यान दुर्घटनाग्रस्त हो गया और क्षतिग्रस्त हो गया । परिवादी ने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई और इसकी सूचना प्रत्यर्थी-कंपनी को दी जिसने सर्वेक्षक नियुक्त किया और मरम्मत के आधार पर 2,60,845/- रुपए की हानि निर्धारित की । तथापि, बीमा दावे को विरोधी पक्षकार द्वारा इस आधार पर निराकृत कर दिया गया था कि जो व्यक्ति दुर्घटना के समय यान चला रहा था उसके पास विधिमान्य और प्रभावी चालन अनुज्ञप्ति नहीं थी और अस्थायी रजिस्ट्रीकरण के अवसान के पश्चात् यान को रजिस्ट्रीकृत भी नहीं कराया गया था । परिणामस्वरूप, अपीलार्थी ने जिला पीठ के समक्ष उपभोक्ता परिवाद फाइल किया । जिला पीठ ने परिवाद मंजूर कर लिया और प्रत्यर्थी-कंपनी को परिवाद फाइल करने की तारीख से 9 प्रतिशत वार्षिक दर पर ब्याज सहित 4,30,037/- रुपए के 75 प्रतिशत रकम की क्षतिपूर्ति करने का निदेश दिया । जिला पीठ के विनिश्चय से व्यथित होकर, प्रत्यर्थी-कंपनी तथा अपीलार्थी-परिवादी ने अपील के रूप में राज्य आयोग में समावेदन किया । राज्य आयोग ने अपने सामान्य आदेश द्वारा दोनों अपीलों का निपटारा कर दिया और कंपनी की अपील मंजूर कर ली तथा परिवादी के परिवाद को खारिज कर दिया जिसके कारण अपीलार्थी-परिवादी द्वारा फाइल की गई अपील निष्फल मानकर खारिज कर दी गई थी । अपीलार्थी ने राज्य आयोग के विनिश्चय से व्यथित होकर उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 की धारा 21(ख) के अधीन राष्ट्रीय आयोग के समक्ष पुनरीक्षण याचिका फाइल की और वह भी खारिज कर दी गई । अतः, परिवादी द्वारा विशेष इजाजत लेकर प्रस्तुत अपील फाइल की गई है । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस मामले में एकमात्र विचारार्थ प्रश्न यह है कि क्या

राष्ट्रीय आयोग का यह अभिनिर्धारित करना विधि की दृष्टि से सही है कि अपीलार्थी यान की बाबत नुकसानी के लिए प्रतिकर का दावा करने का हकदार नहीं है जब कि वह यान स्वीकृत रूप से दुर्घटना की तारीख को मोटर यान अधिनियम की धारा 39 और धारा 43 के उपबंधों के अधीन यथा-अनुध्यात किसी विधिमान्य रजिस्ट्रीकरण के बिना चलाया जा रहा था । धारा 39 के परिशीलन मात्र से यह दर्शित होता है कि कोई व्यक्ति किसी मोटर यान को सार्वजनिक स्थान में रजिस्ट्रीकर्ता प्राधिकारी द्वारा अधिनियम के उपबंधों के अनुसार दिए गए किसी विधिमान्य रजिस्ट्रीकरण के बिना नहीं चलाएगा । तथापि, धारा 43 के अनुसार, यान का स्वामी अस्थायी रजिस्ट्रीकरण और अस्थायी रजिस्ट्रीकरण चिह्न के लिए रजिस्ट्रीकर्ता प्राधिकारी को आवेदन कर सकेगा । यदि प्राधिकारी द्वारा ऐसा अस्थायी रजिस्ट्रीकरण दे दिया जाता है तो वह एक मास से अनधिक की अवधि के लिए ही विधिमान्य होगा । धारा 43 के परन्तुक में यह स्पष्ट किया गया है कि एक मास की अवधि रजिस्ट्रीकर्ता प्राधिकारी द्वारा केवल ऐसी दशा में ऐसी किसी अतिरिक्त अवधि के लिए बढ़ाई जा सकेगी जहां अस्थायी रजिस्ट्रीकरण ऐसी किसी चेसिस की बाबत दिया गया है जिसे बाडी नहीं लगाई गई है और उसे बाडी लगाने के लिए या स्वामी के नियंत्रण के परे किन्हीं अनिश्चित परिस्थितियों में उसे कर्मशाला में एक मास की उक्त अवधि से आगे रखा जाता है । निर्विवाद रूप से, प्रश्नगत यान की बाबत अस्थायी रजिस्ट्रीकरण दिया गया था जो तारीख 11 जनवरी, 2006 को समाप्त हो गया था और अभिकथित दुर्घटना तारीख 2 फरवरी, 2006 को घटी जब यान किसी रजिस्ट्रीकरण के बिना था । अपीलार्थी द्वारा यह दर्शित करने के लिए अभिलेख पर कुछ भी प्रस्तुत नहीं किया गया है कि तारीख 11 जनवरी, 2006 से पूर्व या उसके पश्चात् जब अस्थायी रजिस्ट्रीकरण की अवधि समाप्त हो गई थी, अपीलार्थी-यान के स्वामी ने या तो अधिनियम की धारा 39 के अधीन यथा-अनुध्यात स्थायी रजिस्ट्रीकरण के लिए आवेदन किया था या किन्हीं विशेष कारणों के आधार पर अस्थायी रजिस्ट्रीकरण के रूप में अवधि के विस्तार के लिए कोई आवेदन किया था । अतः, किसी रजिस्ट्रीकरण के बिना सार्वजनिक मार्ग पर यान का प्रयोग करना न केवल मोटर यान अधिनियम की धारा 192 के अधीन दंडनीय अपराध है बल्कि पालिसी संबंधी संविदा की शर्तों और निबंधनों का आधारभूत भंग भी है । (पैरा 11, 12, 13 और 14)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2010] (2010) 4 एस. सी. सी. 536 :
अमलेन्दु साहू बनाम **ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** । 9

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2014 की सिविल अपील सं. 8463.

2012 की पुनरीक्षण याचिका सं. 4951 में नई दिल्ली स्थित राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद प्रतितोषण आयोग द्वारा पारित तारीख 12 अप्रैल, 2013 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री वीरेन्द्र गोस्वामी और गौतम नारायण

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री सेंथिल जगदीशन, डा. आनन्द वर्धन शर्मा, चन्द्र प्रताप सिंह, वीरेन्द्र कुमार शर्मा और वी. के. वासुदेव

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति एम. वाई. इकबाल ने दिया ।

न्या. इकबाल – इजाजत दी जाती है ।

2. विशेष इजाजत लेकर की गई यह अपील राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद प्रतितोषण आयोग, नई दिल्ली (जिसे संक्षेप में "राष्ट्रीय आयोग" कहा गया है) द्वारा पारित तारीख 12 अप्रैल, 2013 के उस निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा प्रस्तुत अपीलार्थी की 2012 की पुनरीक्षण याचिका सं. 4961 खारिज कर दी गई थी और राज्य उपभोक्ता विवाद प्रतितोषण आयोग, शिमला (जिसे संक्षेप में "राज्य आयोग" कहा गया है) के निर्णय को कायम रखा गया था, जिसने परिवाद खारिज कर दिया था और गैर-मानक आधार पर किए गए दावे को मंजूर करने वाले जिला उपभोक्ता विवाद प्रतितोषण पीठ, शिमला (जिसे संक्षेप में "जिला पीठ" कहा गया है) के आदेश को अपास्त कर दिया था ।

3. मामले के तथ्य बहुत संक्षिप्त हैं ।

4. याची-परिवादी ने एक महिन्द्रा पिक-अप बी. एस.- II 4 डब्ल्यू. डी. यान क्रय किया था और उसे प्रत्यर्थी सं. 1 - मैसर्स न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड के पास 12 दिसम्बर, 2005 से 11 दिसम्बर, 2006 की

अवधि के लिए 4,30,037/- रुपए की रकम के लिए बीमाकृत कराया था । वह यान अस्थायी रूप से एक मास की अवधि के लिए रजिस्ट्रीकृत था जो कि तारीख 11 जनवरी, 2006 को समाप्त हो गई थी । तथापि, तारीख 2 फरवरी, 2006 को यान दुर्घटनाग्रस्त और क्षतिग्रस्त हो गया । परिवादी ने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई और इसकी सूचना प्रत्यर्थी-कंपनी को दी जिसने सर्वेक्षक नियुक्त किया और मरम्मत के आधार पर 2,60,845/- रुपए की हानि निर्धारित की । तथापि, बीमा दावे को विरोधी पक्षकार द्वारा इस आधार पर निराकृत कर दिया गया था कि राजीव हेत्ता नामक व्यक्ति, जो कि दुर्घटना के समय यान चला रहा था, विधिमान्य और प्रभावी चालन अनुज्ञप्ति धारण नहीं करता था और अस्थायी रजिस्ट्रीकरण के अवसान के पश्चात् यान को रजिस्ट्रीकृत भी नहीं कराया गया था । परिणामस्वरूप, अपीलार्थी ने जिला पीठ के समक्ष उपभोक्ता परिवाद फाइल किया ।

5. जिला पीठ ने दोनों ओर के पक्षकारों की सुनवाई करने और मामले के अभिलेख की सूक्ष्म रूप से जांच करने के पश्चात् परिवाद मंजूर कर लिया और प्रत्यर्थी-कंपनी को परिवाद फाइल करने की तारीख से 9 प्रतिशत वार्षिक दर पर ब्याज सहित 4,30,037/- रुपए के 75 प्रतिशत रकम की क्षतिपूर्ति करने का निदेश दिया । जिला पीठ के विनिश्चय से व्यथित होकर, प्रत्यर्थी-कंपनी तथा अपीलार्थी-परिवादी ने अपील के रूप में राज्य आयोग में समावेदन किया । राज्य आयोग ने अपने सामान्य आदेश द्वारा दोनों अपीलों का निपटारा कर दिया और कंपनी की अपील मंजूर कर ली तथा परिवादी के परिवाद को खारिज कर दिया जिसके कारण अपीलार्थी-परिवादी द्वारा फाइल की गई अपील निष्फल मानकर खारिज कर दी गई थी ।

6. अपीलार्थी ने राज्य आयोग के विनिश्चय से व्यथित होकर उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 की धारा 21(ख) के अधीन राष्ट्रीय आयोग के समक्ष पुनरीक्षण याचिका फाइल की और वह भी खारिज कर दी गई । राष्ट्रीय आयोग ने इस प्रकार मत व्यक्त किया :–

> "हमने अभिलेख पर मौजूद समस्त सामग्री की परीक्षा की है और अपने समक्ष दी गई दलीलों पर गंभीरतापूर्वक विचार किया है । राज्य आयोग इस मामले के तथ्यों की सावधानीपूर्वक परीक्षा करने के पश्चात् और अनुज्ञापन प्राधिकारी के अनुज्ञापन लिपिक की परीक्षा करने के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि राजीव हेत्ता द्वारा धारित अनुज्ञप्ति भारी माल यान के लिए 20 अप्रैल, 2002 से पृष्ठांकित की गई थी जो कि तीन वर्ष तक विधिमान्य थी । वह अनुज्ञप्ति 7 जून,

2003 से हल्का मोटर यान के लिए भी पृष्ठांकित की गई थी और वह भी तीन वर्ष के लिए विधिमान्य था । दुर्घटना तारीख 2 फरवरी, 2006 को हुई थी जिस तारीख को भारी माल यान के लिए अनुज्ञप्ति का अवसान हो गया था किन्तु वह हल्के मोटर यान के लिए विधिमान्य बनी रही । अतः, यह स्पष्ट है कि चालक के पास विधिमान्य और प्रभावी अनुज्ञप्ति थी । तथापि, अभिलेख पर के तथ्यों से यह भी स्पष्ट होता है कि चंडीगढ़ संघ-राज्यक्षेत्र के रजिस्ट्रीकर्ता प्राधिकारी द्वारा किया गया यान का अस्थायी रजिस्ट्रीकरण तारीख 11 जनवरी, 2006 को समाप्त हो गया था । तारीख 2 फरवरी, 2006 को दुर्घटना के समय यान रजिस्ट्रीकरण के बिना चलाया जा रहा था जो कि मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 39 के अधीन प्रतिषिद्ध है और उक्त अधिनियम की धारा 192 के अधीन एक अपराध भी है ।"

अतः, परिवादी द्वारा विशेष इजाजत लेकर प्रस्तुत अपील फाइल की गई है ।

7. हमने पक्षकारों के विद्वान् काउन्सेलों की सुनवाई की है ।

8. अपीलार्थी की ओर से यह दलील दी गई है कि किसी यान की दुर्घटना हो जाने की दशा में जब बीमाकृत व्यक्ति यान का प्रयोग मोटर यान अधिनियम (जिसे संक्षेप में "अधिनियम" कहा गया है) की धारा 66 के अधीन दी गई शर्तों के प्रतिकूल करता है या चालक अनुचित अनुज्ञप्ति धारण किए हुए है जो कि अधिनियम की धारा 3 के अधीन दी गई अपेक्षा के प्रतिकूल है तब बीमा कंपनियों द्वारा दावों पर गैर-मानक आधार पर कार्यवाही करनी होती है । इसके अलावा, यह दलील दी गई है कि अधिनियम की धारा 39 के अधीन दी गई अपेक्षा के प्रतिकूल यान के अनुचित रजिस्ट्रीकरण के मामले में इसी प्रकार के मापदंड को ध्यान में रखा जाना होता है और पालिसी को सीधे ही निराकृत करने और दावे को पूर्णतः नामंजूर करने की बजाय दावों का निर्धारण गैर-मानक आधार पर किया जाना चाहिए ।

9. अपीलार्थी का यह पक्षकथन है कि जब किसी यान का प्रयोग रजिस्ट्रीकरण कराए बिना किया जाता है तब भी वह किसी कानूनी अपेक्षा के अतिक्रमण की कोटि में नहीं आता है और ऐसी दशा में, यदि दुर्घटना होती है तो बीमाकृत व्यक्ति बीमा पालिसी के अधीन फायदे का दावा करने का हकदार होता है । रजिस्ट्रीकरण के बिना यान को बीमाकृत कराने के संबंध में कोई कानूनी वर्जन नहीं है और इसलिए कोई दुर्घटना होने की

दशा में बीमाकृत रकम का संदाय करने के संबंध में कोई वर्जन नहीं है । अपीलार्थी ने यह दलील दी कि उच्चतम न्यायालय ने **अमलेन्दु साहू** बनाम **ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि पालिसी दस्तावेज़ में किसी फेरफार/पालिसी दस्तावेज़ के किसी भंग की दशा में बीमा कंपनी दावे को पूर्ण रूप से निराकृत नहीं कर सकती और परिवादी के दावे का निर्धारण गैर-मानक आधार पर किया जाना चाहिए । इसके आगे यह दलील दी गई है कि किसी अस्थायी/स्थायी रजिस्ट्रीकरण का मुख्य प्रयोजन सरकारी प्राधिकारियों के अभिलेख में यान की पहचान रखना होता है जिससे कि उसकी पहचान की जा सके, विशेषकर किसी मोटर दुर्घटना की दशा में, और यान के स्वामी का पता लगाना होता है और इस मामले में यान पर अस्थायी रजिस्ट्रीकरण संख्यांक पड़ा हुआ था (हालांकि उसकी तारीख का अवसान हो गया था) जिसके परिणामस्वरूप विधि में यथापेक्षित स्वामी और अन्य ब्यौरों का पता लग जाएगा ।

10. इसके विपरीत, प्रत्यर्थी का पक्षकथन यह है कि यान को समुचित रजिस्ट्रीकरण के पश्चात् ही चलाया जा सकता है और प्रस्तुत मामले में यान रजिस्ट्रीकरण के बिना चलाया जा रहा है जो कि अधिनियम की धारा 192 के उल्लंघन में है । इसके अलावा, राजीव हेत्ता की चालन अनुज्ञप्ति पर भारी माल यान चलाने के लिए कोई पृष्ठांकन नहीं है जो कि 20 अप्रैल, 2002 तक विधिमान्य थी और इसलिए बीमा पालिसी की शर्तों और निबंधनों का अतिक्रमण किया गया है क्योंकि प्रश्नगत यान ऐसे व्यक्ति द्वारा चलाया जा रहा था जो कि उसे चलाने के लिए प्राधिकृत नहीं था ।

11. हमने तीनों पीठों द्वारा पारित आदेश का परिशीलन किया है । एकमात्र विचारार्थ प्रश्न यह है कि क्या राष्ट्रीय आयोग का यह अभिनिर्धारित करना विधि की दृष्टि से सही है कि अपीलार्थी यान की बाबत नुकसानी के लिए प्रतिकर का दावा करने का हकदार नहीं है जब कि वह यान स्वीकृत रूप से दुर्घटना की तारीख को मोटर यान अधिनियम की धारा 39 और धारा 43 के उपबंधों के अधीन यथा-अनुध्यात किसी विधिमान्य रजिस्ट्रीकरण के बिना चलाया जा रहा था । इस प्रश्न का अच्छी प्रकार से अधिमूल्यन करने के लिए धारा 39 और धारा 43, जो कि सुसंगत हैं, इसमें इसके नीचे उद्धृत की जाती हैं :–

> "39. **रजिस्ट्रीकरण की आवश्यकता** – किसी सार्वजनिक स्थान में अथवा किसी अन्य स्थान में किसी मोटर यान को कोई व्यक्ति

---

[1] (2010) 4 एस. सी. सी. 536.

तभी चलाएगा और कोई मोटर यान का स्वामी तभी चलवाएगा या चलाने की अनुज्ञा देगा जब वह यान इस अध्याय के अनुसार रजिस्ट्रीकृत हो तथा यान का रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र निलंबित या रद्द न किया गया हो और यान पर रजिस्ट्रीकरण चिह्न विहित रीति से प्रदर्शित हो :

परन्तु इस धारा की कोई बात ऐसी शर्तों के अधीन रहते हुए जो केन्द्रीय सरकार द्वारा विहित की जाएं किसी व्यवहारी के कब्जे में के मोटर यान को लागू नहीं होगी ।

43. **अस्थायी रजिस्ट्रीकरण** – (1) धारा 40 में किसी बात के होते हुए भी किसी मोटर यान का स्वामी विहित रीति से यान को अस्थायी रूप में रजिस्टर कराने के लिए और विहित रीति से अस्थायी रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र और अस्थायी रजिस्ट्रीकरण चिह्न दिए जाने के लिए किसी रजिस्ट्रीकर्ता प्राधिकारी अथवा अन्य विहित प्राधिकारी को आवेदन कर सकेगा ।

(2) इस धारा के अधीन किया गया रजिस्ट्रीकरण, अधिक से अधिक एक मास की अवधि के लिए विधिमान्य होगा और नवीकरणीय नहीं होगा :

परन्तु जहां इस प्रकार रजिस्ट्रीकृत कोई मोटर यान चेसिस है जिसमें कोई बाडी नहीं लगाई गई है और जिसमें बाडी लगाने के लिए या स्वामी के नियंत्रण के परे किन्हीं अनिश्चित परिस्थितियों में उसे कर्मशाला में एक मास की उक्त अवधि से आगे रखा जाता है वहां ऐसी फीस, यदि कोई हो, जो विहित की जाए, देने पर उस अवधि को इतनी अतिरिक्त अवधि या अवधियों तक बढ़ाया जा सकेगा जो, यथास्थिति, रजिस्ट्रीकर्ता प्राधिकारी या अन्य विहित प्राधिकारी अनुज्ञात करे ।

(3) ऐसा मामला, जिसमें कोई मोटर यान भाड़ा क्रय करार, पट्टे या आडमान के अधीन रखा जाता है वहां रजिस्ट्रीकर्ता प्राधिकारी या अन्य विहित प्राधिकारी ऐसे यान का एक अस्थायी रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र जारी करेगा, जिसमें ऐसे व्यक्ति, जिसके साथ स्वामी ने अनुबंध निष्पादित किया है, का पूर्ण नाम और पता सुपाठ्य अक्षरों में मुख्य रूप से अभिलिखित किया जाएगा ।"

12. धारा 39 के परिशीलन मात्र से यह दर्शित होता है कि कोई व्यक्ति किसी मोटर यान को सार्वजनिक स्थान में रजिस्ट्रीकर्ता प्राधिकारी

द्वारा अधिनियम के उपबंधों के अनुसार दिए गए किसी विधिमान्य रजिस्ट्रीकरण के बिना नहीं चलाएगा ।

13. तथापि, धारा 43 के अनुसार, यान का स्वामी अस्थायी रजिस्ट्रीकरण और अस्थायी रजिस्ट्रीकरण चिह्न के लिए रजिस्ट्रीकर्ता प्राधिकारी को आवेदन कर सकेगा । यदि प्राधिकारी द्वारा ऐसा अस्थायी रजिस्ट्रीकरण दे दिया जाता है तो वह एक मास से अनधिक की अवधि के लिए ही विधिमान्य होगा । धारा 43 के परन्तुक में यह स्पष्ट किया गया है कि एक मास की अवधि रजिस्ट्रीकर्ता प्राधिकारी द्वारा केवल ऐसी दशा में ऐसी किसी अतिरिक्त अवधि के लिए बढ़ाई जा सकेगी जहां अस्थायी रजिस्ट्रीकरण ऐसी किसी चेसिस की बाबत दिया गया है जिसे बाडी नहीं लगाई गई है और उसे बाडी लगाने के लिए या स्वामी के नियंत्रण के परे किन्हीं अनिश्चित परिस्थितियों में उसे कर्मशाला में एक मास की उक्त अवधि से आगे रखा जाता है ।

14. निर्विवाद रूप से, प्रश्नगत यान की बाबत अस्थायी रजिस्ट्रीकरण दिया गया था जो तारीख 11 जनवरी, 2006 को समाप्त हो गया था और अभिकथित दुर्घटना तारीख 2 फरवरी, 2006 को घटी जब यान किसी रजिस्ट्रीकरण के बिना था । अपीलार्थी द्वारा यह दर्शित करने के लिए अभिलेख पर कुछ भी प्रस्तुत नहीं किया गया है कि तारीख 11 जनवरी, 2006 से पूर्व या उसके पश्चात् जब अस्थायी रजिस्ट्रीकरण की अवधि समाप्त हो गई थी, अपीलार्थी, यान के स्वामी ने या तो अधिनियम की धारा 39 के अधीन यथा-अनुध्यात स्थायी रजिस्ट्रीकरण के लिए आवेदन किया था या किन्हीं विशेष कारणों के आधार पर अस्थायी रजिस्ट्रीकरण के रूप में अवधि के विस्तार के लिए कोई आवेदन किया था । अतः, हमारी राय में, किसी रजिस्ट्रीकरण के बिना सार्वजनिक मार्ग पर यान का प्रयोग करना न केवल मोटर यान अधिनियम की धारा 192 के अधीन दंडनीय अपराध है बल्कि पालिसी संबंधी संविदा की शर्तों और निबंधनों का आधारभूत भंग भी है ।

15. उपरोक्त आधार पर, हमें राज्य आयोग और राष्ट्रीय आयोग द्वारा पारित आदेश में कोई त्रुटि प्रतीत नहीं होती है ।

16. उपरोक्त कारणों से इस अपील में कोई सार नहीं है और वह खारिज की जाती है ।

अपील खारिज की गई ।

ग्रो.

लीला राजगोपाल और अन्य

बनाम

कमला मेनन कोचरन और अन्य

8 सितम्बर, 2014

न्यायमूर्ति रंजन गोगोई और न्यायमूर्ति आर. के. अग्रवाल

भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 (1925 का 39) – धारा 2(ज), 281 और 282 – वसीयतकर्ता द्वारा विल निष्पादित किया जाना – पुत्रों को अपवर्जित करके पुत्री तथा नाती के पक्ष में विल किया जाना – वसीयतकर्ता की मृत्यु पर पुत्री द्वारा प्रोबेट के लिए आवेदन – विल में अनेक विसंगतियों के आधार पर पुत्रों द्वारा इसे विवादग्रस्त किया जाना – विचारण न्यायालय द्वारा विल को अविधिमान्य ठहराया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा विल को विधिमान्य पाया जाना – विल से इसकी स्पष्ट भाषा, असंदिग्ध तात्पर्य और प्रभाव तथा वसीयतकर्ता का स्पष्ट मंतव्य उपदर्शित होने पर उच्च न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं है ।

वसीयतकर्ता स्वर्गीय जानकी अम्मा ने तारीख 28 दिसम्बर, 1981 को एक विल निष्पादित की थी । वसीयतकर्ता ने विल में यह अभिस्वीकार किया था कि उसके सभी पुत्र जीवन में पूरी तरह से संपन्न हैं और उनके पिता के जीवनकाल के दौरान खरीदी गई उनके नाम में संपत्तियां हैं । वसीयतकर्ता ने यह भी कथन किया कि उसे अपनी पुत्री लीला की मृत्यु, जो तारीख 2 फरवरी, 1975 को हुई थी, पर अत्यधिक शोक हुआ था और इसलिए उसका अपनी नाती गीता के प्रति गहरा लगाव है, और उसकी द्वितीय पुत्री के. पी. कमला मेनन अर्थात् प्रत्यर्थी सं. 1 अविवाहित है, इसलिए वह अपनी गृह संपत्ति की वसीयत अपने पुत्रों को अपवर्जित करते हुए अपनी नाती और अपनी पुत्री के पक्ष में कर रही है । वसीयतकर्ता की मृत्यु के पश्चात् प्रत्यर्थी सं. 1 ने प्रोबेट कार्यवाहियां संस्थित की जिसे बाद में एक वाद में तब्दील कर दिया गया क्योंकि मृतका के पुत्रों द्वारा विल को विवादग्रस्त किया गया था । अपीलार्थियों ने, जो वाद में परिवादी और उच्च न्यायालय के समक्ष प्रत्यर्थी थे, तारीख 11 जनवरी, 1982 की विल की वैध विधिमान्यता का यह प्रकथन करते हुए विरोध किया कि यह विल

वसीयतकर्ता की स्वतंत्र इच्छा के आधार पर निष्पादित नहीं की गई थी अपितु इसे प्रथम प्रत्यर्थी-पुत्री की प्रेरणा पर लिखवाया गया था जिसने वसीयतकर्ता पर असम्यक् प्रभाव और प्रपीड़न का प्रयोग किया था । विद्वान् विचारण न्यायालय ने पक्षकारों के पक्षकथनों और प्रस्तुत किए गए साक्ष्य तथा सामग्री पर विचार करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि जिन परिस्थितियों में विल निष्पादित की गई थी वे विल को वसीयतकर्ता की स्वतंत्र इच्छा और स्वेच्छा से निष्पादित एक विधिमान्य लिखत के रूप में स्वीकार करने के लिए संदेहास्पद है । अपील में उच्च न्यायालय ने उन परिस्थितियों और कारणों पर विचार किया जिनसे विद्वान् विचारण न्यायालय उपरोक्त मत अपनाने के लिए प्रेरित हुआ और विचारण न्यायालय के मत से असहमत होना उचित समझा तथा पारिणामिक निष्कर्षों को उलट दिया । उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपीलें फाइल की गईं । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलों को खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – किसी विल की कतिपय विशिष्टताएं हो सकती हैं और ऐसी कतिपय परिस्थितियों में निष्पादित की गई हो सकती हैं जो किंचित अस्वाभाविक प्रतीत हो सकती हैं । किसी विल में प्रतीत होने वाली ऐसी अप्रायिक विशिष्टताओं या इसके निष्पादन से संबंधित अस्वाभाविक परिस्थितियों से उस विल को स्वीकार करने से पूर्व इसकी गहन संवीक्षा करने की बात निश्चित रूप से न्यायोचित होगी । ऐसी संवीक्षा के आधार पर न्यायालय का समग्र निर्धारण, अप्रायिक विशिष्टताओं और परिस्थितियों का संचयी प्रभाव वे बातें हैं जिनकी न्यायालय द्वारा किए जाने वाले अवधारण में उसे विवेचना करनी होगी । अंतिमतः, न्यायिक अधिमत सभी अप्रायिक विशिष्टताओं और संदेहास्पद परिस्थितियों पर एक साथ किए गए विचार पर आधारित होगा न कि किसी ऐसी एकल विशिष्टता के प्रभाव पर जो कि विल में पाई जाए या किसी एकल परिस्थिति के आधार पर जो विल के निष्पादन या रजिष्ट्रीकरण की प्रक्रिया से प्रतीत होती हो । यह बात इस विषय पर इस न्यायालय द्वारा अनेक बार सुनाए गए निर्णयों का सार है और इसमें न्यायालय के समक्ष निर्दिष्ट किए गए और अवलंब लिए गए विनिश्चय भी सम्मिलित हैं । वर्तमान मामले में, विल के गहन पठन से इसकी स्पष्ट भाषा और इसका असंदेहास्पद तात्पर्य और प्रभाव उपदर्शित होता है । विल से वसीयतकर्ता की इच्छा स्पष्ट रूप से दृष्टव्य है और पुत्रों को अपवर्जित करने का कारण स्वतः स्पष्ट है । जहां तक निष्पादन के स्थान का संबंध है, अभि. सा. 3 द्वारा प्रोबेट के लिए आवेदन के साथ फाइल किए गए सत्यापन और उक्त साक्षी द्वारा न्यायालय में दिए गए साक्ष्य में प्रतीत होने

वाली असंगति इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए समझ में आ सकती है कि सत्यापन मद्रास उच्च न्यायालय की मूल अधिकारिता द्वारा विहित किए गए मानक प्ररूप (प्ररूप सं. 55) में है । इसके अतिरिक्त, वर्तमान मामले में विल के निष्पादन और रजिस्ट्रीकरण में प्रथम प्रत्यर्थी की सहभागिता के तथ्य को ऐसी परिस्थिति नहीं कहा जा सकता है जिससे प्रतिकूल निष्कर्ष निकलता हो । पुनः, प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा अपने मित्र (अभि. सा. 3) को अनुप्रमाणक साक्षी होने के लिए बुलाने और वसीयतकर्ता को उप-रजिस्ट्रार के कार्यालय में ले जाने में उसके आचरण से कोई प्रतिकूल निष्कर्ष नहीं निकाला जाना चाहिए । यह बात भी उल्लेखनीय है कि तारीख 11 जनवरी, 1982 की विल की अंतर्वस्तुएं तारीख 28 दिसम्बर, 1981 की विल की अंतर्वस्तुओं के समरूप हैं । जहां तक तारीख 28 दिसम्बर, 1981 की विल के निष्पादन और उसके रजिस्ट्रीकरण का संबंध है, प्रथम प्रत्यर्थी की कोई सक्रिय सहभागिता नहीं रही है । अनुप्रमाणक साक्षियों की तब्दीली और सीता पदमनाभन, जिसने तारीख 11 जनवरी, 1982 की विल को अनुप्रमाणित किया था, की परीक्षा न कराने की बात को पर्याप्त रूप से स्पष्ट किया गया है । भले ही वसीयतकर्ता को अंग्रेजी के ज्ञान के अभाव की बात मानी जा सकती हो, इससे मूलतः स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आएगा क्योंकि यह समझा जा सकता है कि विल के रजिस्ट्रीकरण से पूर्व उसकी अंतर्वस्तुएं वसीयतकर्ता को स्पष्ट कर दी गई थीं या अभि. सा. 4 उप-रजिस्ट्रार द्वारा उससे अभिनिश्चित कर ली गई थीं जिसने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि ऐसी परिपाटी का सामान्य तौर पर पालन किया जाता है । मूल विल का प्रस्तुत न करना और इसकी प्रमाणित प्रति का अवलंब लेना ऐसी परिस्थिति है जिसे प्रथम प्रत्यर्थी (वादी) द्वारा युक्तियुक्त रूप से स्पष्ट किया गया है । मूल विल तारीख 11 जनवरी, 1982 को इसके निष्पादन के पश्चात् से ही वसीयतकर्ता की अभिरक्षा में थी और केवल उसकी मृत्यु के दिन अर्थात् तारीख 27 अप्रैल, 1991 को प्रथम प्रत्यर्थी (वादी) को पता चला था कि "केपीपी विल" के रूप में चिह्नित विल लिफाफे से गायब थी । वादी का यह आधार कि विल तब गुम हुई थी जब वह उसकी माता की अभिरक्षा में थी और उसे इसके गुम होने की जानकारी उसकी माता की मृत्यु के दिन हुई थी, इस बात को केवल इस कारण अविश्वसनीय नहीं माना जा सकता है कि इस बाबत पुलिस के पास कोई रिपोर्ट दर्ज नहीं की गई थी । सभी अप्रायिक और अभिकथित रूप से संदेहास्पद परिस्थितियां ऊपर उपदर्शित रीति में समझ सकने योग्य होने के कारण यह न्यायालय उच्च न्यायालय द्वारा विद्वान् विचारण न्यायालय के

निर्णय को उलटते हुए निकाले गए निष्कर्ष में कोई त्रुटि नहीं पाता है । (पैरा 10, 11, 12 और 13)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2014]	2014 (9) स्केल 219 : **वेद मित्र वर्मा** बनाम **धर्म देव वर्मा** ;	9
[2012]	(2012) 4 एस. सी. सी. 387 : **महेश कुमार (मृत) विधिक प्रतिनिधियों की मार्फत** बनाम **विनोद कुमार और अन्य** ;	9
[2009]	(2009) 3 एस. सी. सी. 687 : **भरपुर सिंह और अन्य** बनाम **शमशेर सिंह** ;	8
[2007]	(2007) 7 एस. सी. सी. 225 : **अपोलाइन डिसुजा** बनाम **जॉन डिसुजा** ;	8
[2005]	(2005) 8 एस. सी. सी. 67 : **पेंटाकोटा सत्यनारायणन् और अन्य** बनाम **पेंटाकोटा सीतारतनम और अन्य** ;	9
[1962]	[1962] 3 एस. सी. आर. 195 : **रानी पुर्णिमा देवी और अन्य** बनाम **कुमार खगेंद्र नारायण देव और एक अन्य** ;	8
[1959]	[1959] सप्ली. 1 एस. सी. आर. 426 : **एच. वेंकटचला आयंगर** बनाम **बी. एन. थिम्माजाम्मा और अन्य** ।	8

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2010 की सिविल अपील सं. 9282. (इसके साथ 2010 की सिविल अपील सं. 9286 और 2012 की सिविल अपील सं. 7004 की भी सुनवाई की गई ।)

2001 की मूल अधिकारिता अपील सं. 185 में मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 18 अगस्त, 2009 को पारित किए गए निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से	सर्वश्री कृष्णन् वेणुगोपाल, ध्रुव मेहता, ज्येष्ठ अधिवक्ता और उनके साथ हर्षद वी. हमीद, दिलीप पूलारोट, के. राजीव, पी. बी. सुरेश, विपिन नायर, उदयदित्य बनर्जी (मैसर्स टेम्पल ला फर्म की ओर से) और टी. हरीश कुमार
प्रत्यर्थियों की ओर से	सर्वश्री विजय हंसारिया, ज्येष्ठ अधिवक्ता और उनके साथ मुरलीधर रेड्डी, अर्जुन सिंह, जी. बालाजी, (सुश्री) महालक्ष्मी श्रीधर पोतराजू, टी. हरीश कुमार और (सुश्री) मोना के. राजवंशी

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति रंजन गोगोई ने दिया ।

न्या. गोगोई – सभी तीनों अपीलें उच्च न्यायालय के तारीख 18 अगस्त, 2009 के सामान्य निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई हैं, इसलिए इनकी एकसाथ सुनवाई की गई और इनका इस आदेश द्वारा निपटारा किया जा रहा है ।

2. वर्तमान अपीलों में, जिनमें मद्रास उच्च न्यायालय की एक खंड न्यायपीठ द्वारा पारित उलटे गए निर्णय को चुनौती दी गई है, जिस प्रश्न का अवधारण किया जाना है वह आवश्यक रूप से एक तथ्य का प्रश्न है और इस न्यायालय के समक्ष भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन इसकी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए लाया गया है । उक्त प्रश्न अपीलार्थियों और प्रथम प्रत्यर्थी की माता के. पी. जानकी अम्मा द्वारा निष्पादित तारीख 11 जनवरी, 1982 की एक विल की विधिमान्यता और वैधता की बाबत है । विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने तारीख 23 जनवरी, 2001 के अपने आदेश द्वारा प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा संस्थित की गई प्रोबेट कार्यवाहियों (जिन्हें बाद में एक वाद 1994 के टी. ओ. एस. सं. 16 में तब्दील किया गया) को यह अभिनिर्धारित करते हुए खारिज कर दिया कि तारीख 11 जनवरी, 1982 की विल का निष्पादन बहुत सारी संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरा हुआ है जिससे निष्पादन वैध रूप से अस्वीकार्य हो जाता है । उच्च न्यायालय के विद्वान् विचारण न्यायाधीश के पूर्वोक्त मत

को उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा तारीख 18 अगस्त, 2009 के आक्षेपित आदेश द्वारा उलट दिए जाने पर वर्तमान अपील फाइल की गई है ।

3. हमने अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री कृष्णन् वेणुगोपाल और श्री ध्रुव मेहता तथा प्रत्यर्थी सं. 1 की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री विजय हंसारिया को सुना ।

4. वसीयतकर्ता स्वर्गीय जानकी अम्मा ने प्रारंभ में तारीख 28 दिसम्बर, 1981 को एक विल निष्पादित की थी, जिसमें ग्रह संपत्ति सं. 8, मलोनी रोड, टी. नगर, मद्रास-17 की प्रथम प्रत्यर्थी कमला मेनन कोचरन और अपनी नाती गीता (अपनी पूर्वमृत पुत्री लीला की पुत्री) के पक्ष में वसीयत की गई थी । उक्त विल में, अन्य बातों के साथ-साथ, यह एक कथन अंतर्विष्ट था कि वसीयतकर्ता के चार पुत्र हैं । वसीयतकर्ता ने तारीख 28 दिसम्बर, 1981 की विल में यह अभिस्वीकार किया था कि उसके सभी पुत्र जीवन में पूरी तरह से संपन्न हैं और उनके पिता के जीवनकाल के दौरान खरीदी गई उनके नाम में संपत्तियां हैं । वसीयतकर्ता ने यह भी कथन किया कि उसे अपनी पुत्री लीला की मृत्यु, जो तारीख 2 फरवरी, 1975 को हुई थी, पर अत्यधिक शोक हुआ था और इसलिए उसका अपनी नाती गीता के प्रति गहरा लगाव है, और उसकी द्वितीय पुत्री के. पी. कमला मेनन अर्थात् प्रत्यर्थी सं. 1, आयु 46 वर्ष, जो एक महाविद्यालय में प्राध्यापक है और अविवाहित है, इसलिए वह अपनी गृह संपत्ति की वसीयत अपने पुत्रों को अपवर्जित करते हुए अपनी नाती और अपनी पुत्री के पक्ष में कर रही है । तारीख 28 दिसम्बर, 1981 की उक्त विल को तारीख 11 जनवरी, 1982 की एक पश्चात्वर्ती विल द्वारा अधिक्रांत/प्रतिसंहृत किया गया जिसमें वही कथन अंतर्विष्ट हैं जो तारीख 28 दिसम्बर, 1981 की पहली विल में हैं सिवाय इस तथ्य के कि वसीयतकर्ता ने यह उल्लेख किया कि उसके चार पुत्रों के बजाय पांच जीवित पुत्र हैं । जानकी अम्मा की मृत्यु के पश्चात्, जो तारीख 27 अप्रैल, 1991 को हुई थी, प्रत्यर्थी सं. 1 ने प्रोबेट कार्यवाहियां संस्थित कीं जिसे बाद में एक वाद में तब्दील कर दिया गया क्योंकि मृतका के पुत्रों द्वारा विल को विवादग्रस्त किया गया था ।

5. अपीलार्थियों ने, जो वाद में परिवादी और उच्च न्यायालय के समक्ष प्रत्यर्थी थे, तारीख 11 जनवरी, 1982 की विल की वैध विधिमान्यता का यह प्रकथन करते हुए विरोध किया कि यह विल वसीयतकर्ता की स्वतंत्र

इच्छा के आधार पर निष्पादित की गई हस्तांतरण की एक विधिमान्य लिखत नहीं है, अपितु इसे प्रथम प्रत्यर्थी-पुत्री की प्रेरणा पर लिखवाया गया था जिसने वसीयतकर्ता पर असम्यक् प्रभाव और प्रपीड़न का प्रयोग किया था । मुकदमा लड़ने वाले प्रत्यर्थियों ने दी गई दलीलों को सिद्ध करने के लिए साक्ष्य प्रस्तुत किया जिससे यह दर्शित हो सके कि विल ऐसी परिस्थितियों में निष्पादित की गई थी जिनसे वसीयतकर्ता द्वारा इसके स्वेच्छया निष्पादन की बाबत गंभीर संदेह पैदा होता है ।

6. विद्वान् विचारण न्यायालय ने पक्षकारों के पक्षकथनों और प्रस्तुत किए गए साक्ष्य तथा सामग्री पर विचार करने के पश्चात् विल के निष्पादन से संबंधित निम्नलिखित परिस्थितियों का उल्लेख किया :–

(i) ऐसा कोई कारण नहीं बताया गया कि पुत्रों अर्थात् वर्तमान अपीलार्थियों को विल से क्यों अपवर्जित किया गया ;

(ii) विल के निष्पादन के समय प्रत्यर्थी सं. 1 त्रिरुपति से मद्रास आई थी जहां वह एक महाविद्यालय में अध्यापक/प्राध्यापक के रूप में कार्यरत थी और अपनी माता अर्थात् वसीयतकर्ता के पास ठहरी थी ;

(iii) विल के निष्पादन से केवल पंद्रह दिन पहले अर्थात् तारीख 10 दिसम्बर, 1981 को वसीयतकर्ता ने अपने पुत्रों में से एक पुत्र थंगामणी (2010 के सिविल आवेदन सं. 9282 में अपीलार्थियों का हित-पूर्वाधिकारी) को एक पत्र (प्रदर्श पी-8) लिखा था जिसमें उसने गृह संपत्ति, जो कि विल की विषयवस्तु है, का सभी बच्चों में समान रूप से विभाजन करने का आशय व्यक्त किया था ;

(iv) विल की मूल प्रति का प्रस्तुत न किया जाना ;

(v) विल के निष्पादन के स्थान की बाबत वादी के साक्षियों के साक्ष्य में विसंगति होना ; और

(vi) विल के रजिस्ट्रीकरण में वादी (प्रत्यर्थी सं. 1) द्वारा निभाई गई मुख्य भूमिका ।

विद्वान् विचारण न्यायालय के अनुसार, ये परिस्थितियां इस निष्कर्ष को न्यायोचित ठहराने के लिए पर्याप्त संदेहास्पद हैं कि इस विल को वसीयतकर्ता की स्वतंत्र इच्छा और स्वेच्छा से निष्पादित एक विधिमान्य लिखत के रूप में स्वीकार न किया जाए ।

7. अपील में उच्च न्यायालय ने उन परिस्थितियों और कारणों पर विचार किया जिनसे विद्वान् विचारण न्यायालय उपरोक्त मत अपनाने के लिए प्रेरित हुआ और विचारण न्यायालय के मत से असहमत होना उचित समझा तथा पारिणामिक निष्कर्षों को उलट दिया । इस प्रक्रम पर यह उल्लेखनीय है कि उच्च न्यायालय ने विद्वान् विचारण न्यायालय के निष्कर्ष को उलटने से पूर्व अपने अति विस्तृत आदेश में ऊपर उल्लिखित प्रत्येक परिस्थिति, पक्षकारों द्वारा उनके समर्थन में प्रस्तुत किए साक्ष्य और दी गई दलीलों पर विचार किया है ।

8. हमारे समक्ष सभी तीनों अपीलों में अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेलों ने यह दलील दी कि तारीख 11 जनवरी, 1982 अर्थात् विल के निष्पादन की अभिकथित तारीख और तारीख 27 अप्रैल, 1991 अर्थात् वसीयतकर्ता की मृत्यु की तारीख के बीच की अवधि में विल में के हिताधिकारियों ने किसी व्यक्ति को विल विद्यमान होने के बारे में नहीं बताया था और यह बात, विद्वान् काउंसेल के अनुसार, अस्वाभाविक है । विद्वान् काउंसेल ने विल के निष्पादन के स्थान की बाबत साक्ष्य का उल्लेख करते हुए यह दलील दी कि इस संबंध में स्पष्ट असंगति है क्योंकि भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 281 और 282 के अधीन यथा अपेक्षित प्रोबेट याचिका के साथ प्रस्तुत सत्यापन में अभि. सा. 3 ने यह दावा किया है कि विल वसीयतकर्ता के घर में निष्पादित की गई थी, जबकि इस साक्षी ने अपने साक्ष्य में यह कथन किया है कि विल उप-रजिस्ट्रार के कार्यालय में निष्पादित की गई थी । तथापि, अभि. सा. 4 उप-रजिस्ट्रार ने, जिसकी परीक्षा कराई गई थी, स्पष्ट तौर पर उस स्थान के बारे में अभिसाक्ष्य नहीं दिया कि विल कहां निष्पादित की गई थी । अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेलों द्वारा इसमें ऊपर प्रगणित अन्य संदेहास्पद परिस्थितियों के प्रति भी यह दलील देने के लिए निर्देश किया गया कि ये परिस्थितियां प्रश्नगत विल की खारिजी को न्यायोचित ठहराने के लिए पर्याप्त और भरपूर हैं । विनिर्दिष्ट रूप से यह दलील दी गई कि मूल विल को प्रस्तुत न करने का कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है और उच्च न्यायालय ने प्रथम प्रत्यर्थी के कहने मात्र से विल के गुम होने की कहानी को स्वीकार कर लिया । उक्त आधार पर यह दलील दी गई कि प्रथम प्रत्यर्थी मूल विल के गुम होने के स्पष्ट और विश्वसनीय सबूत के अभाव में वादी के रूप में विल के समर्थन में द्वितीय साक्ष्य प्रस्तुत नहीं कर सकती थी । अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल की यह दलील है कि उन साक्षियों, जिन्होंने तारीख 28 दिसम्बर, 1981 की प्रथम विल के

निष्पादन को अनुप्रमाणित किया था, के स्थान पर अनुप्रमाणित करने वाले अलग प्रकार के साक्षियों को लाना, अनुप्रमाणित करने वाली साक्षी सीता पदमनाभन की परीक्षा न कराना और द्वितीय साक्षी (अभि. सा. 3) जय लक्ष्मी, जो वादी की सहयोगी है, की परीक्षा कराना ऐसी अन्य परिस्थितियां हैं जो अत्यंत संदेहास्पद हैं । वसीयतकर्ता और उसके पुत्रों के बीच सौहार्द संबंध की कमी को दर्शित करने के लिए किसी साक्ष्य के अभाव और इस तथ्य पर भी कि प्रत्यर्थी सं. 4 अर्थात् पुत्रों में से एक पुत्र वास्तव में माता की देखरेख कर रहा था, यह उल्लेख करने के लिए जोर दिया गया है कि पुत्रों को विल में अपवर्जित करने का कोई कारण नहीं था । वास्तव में, अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह उल्लेख किया कि अभि. सा. 2 और अभि. सा. 3 ने स्पष्ट रूप से और साफ-साफ यह कथन किया है कि वसीयतकर्ता और उसके पुत्रों के बीच संबंध अच्छे थे । आगे यह भी दलील दी गई है कि माता द्वारा अपने पुत्रों में से एक पुत्र को लिखे गए तारीख 10 दिसम्बर, 1981 के पत्र (प्रदर्श पी-8) को उचित रूप से पढ़ने पर बहुत ही सौहार्द संबंध उपदर्शित होते हैं और उच्च न्यायालय द्वारा आक्षेपित परिणाम और निष्कर्ष पर पहुचंने के लिए इसके तात्पर्य का पूर्णतः गलत निर्वचन किया गया है । वसीयतकर्ता को अंग्रेजी के ज्ञान की कमी होने की बात को भी विल की खारिजी को न्यायोचित ठहराने के लिए एक अन्य परिस्थिति के रूप में उद्धृत किया गया है । अपीलार्थियों की ओर से **एच. वेंकटचला आयंगर** बनाम **बी. एन. थिम्माजाम्मा और अन्य**[1] वाले मामले तथा **भरपुर सिंह और अन्य** बनाम **शमशेर सिंह**[2] वाले मामले में हाल ही के निर्णय का यह दलील देने के लिए अवलंब लिया गया है कि प्रथम प्रत्यर्थी की विल के निष्पादन और रजिस्ट्रीकरण में सक्रिय सहभागिता पर हमारे द्वारा विचार किया जाना चाहिए क्योंकि इससे वसीयतकर्ता द्वारा विल के स्वेच्छा से निष्पादन की बाबत गंभीर संदेह उत्पन्न होता है । **रानी पुर्णिमा देवी और अन्य** बनाम **कुमार खगेंद्र नारायण देव और एक अन्य**[3] तथा **अपोलाइन डिसुजा** बनाम **जॉन डिसुजा**[4] वाले मामलों का भी यह दलील देने के लिए अवलंब लिया गया कि यह दर्शित करने के लिए किसी साक्ष्य के अभाव में कि वसीयतकर्ता को, उसे अंग्रेजी के ज्ञान की कमी की बात को देखते हुए, विल को पढ़कर सुनाया गया था और उसे स्पष्ट किया

---

[1] [1959] सप्ली. 1 एस. सी. आर. 426.

[2] (2009) 3 एस. सी. सी. 687.

[3] [1962] 3 एस. सी. आर. 195.

[4] (2007) 7 एस. सी. सी. 225.

गया था, प्रश्नगत विल की प्रमाणिकता का अवधारण करने के लिए निर्णायक है ।

9. अपीलार्थियों की ओर से दी गई दलीलों का विरोध करने के लिए प्रत्यर्थी सं. 1 की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री विजय हंसारिया ने यह दलील दी कि विल के सम्यक् निष्पादन के संबंध में इसकी स्वीकार्यता या खारिजी अंततोगत्वा न्यायालय की न्यायिक अंतःश्चेतना के समाधान पर निर्भर करती है । श्री हंसारिया ने यह दलील दी कि कोई एकल परिस्थिति इस प्रश्न के लिए निश्चायक नहीं होगी और इनका संचयी प्रभाव ही न्यायालय द्वारा किए जाने वाले अपेक्षित न्यायनिर्णयन के लिए महत्वपूर्ण होगा । यह दलील दी गई कि विल के निष्पादन और रजिस्ट्रीकरण में प्रथम प्रत्यर्थी की मात्र सहभागिता और विल के निष्पादन के समय उसकी मद्रास में मौजूदगी से किसी भी प्रकार से विल की विधिमान्यता पर प्रभाव नहीं पड़ता है । जहां तक विल के निष्पादन के स्थान में फर्क का संबंध है, श्री हंसारिया ने यह उल्लेख किया कि प्रोबेट के लिए आवेदन के साथ फाइल किया गया सत्यापन मद्रास उच्च न्यायालय की मूल अधिकारिता द्वारा विहित किए गए मानक प्ररूप (प्ररूप सं. 55 जिसमें निष्पादन का स्थान .....के मकान के रूप में उल्लिखित है) में है । जहां तक मूल विल के गुम होने का संबंध है, यह दलील दी गई है कि वह विल वसीयतकर्ता की अभिरक्षा में थी और उसकी मृत्यु के पश्चात् वह गुम पाई गई । इन परिस्थितियों में विल की प्रमाणित प्रति के आधार पर प्रोबेट कार्यवाहियां संस्थित की गई थीं जो कि भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम के उपबंधों के अधीन प्राधिकृत है । जहां तक वसीयतकर्ता के अंग्रेजी के ज्ञान से संबंधित मुद्दे का संबंध है, यह दर्शित करने के लिए कि वसीयतकर्ता अंग्रेजी पढ़ और समझ सकती थी, साक्षियों के साक्ष्य के सुसंगत भाग का उल्लेख करने के अतिरिक्त यह दलील दी गई कि अभि. सा. 4 (उप-रजिस्ट्रार) ने यह अभिसाक्ष्य दिया था कि रजिस्ट्रीकरण के सभी मामलों में वसीयतकर्ता से यह पूछा जाता है कि क्या उसे विल की अंतर्वस्तुओं की जानकारी है या नहीं । श्री हंसारिया ने **पेंटाकोटा सत्यनारायणन् और अन्य** बनाम **पेंटाकोटा सीतारतनम और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय को यह दलील देने के लिए उद्धृत किया कि विल के रजिस्ट्रीकरण में मात्र सक्रिय सहभागिता स्वतः एक दूषितकारी बात नहीं है । **महेश कुमार (मृत) विधिक**

---

[1] (2005) 8 एस. सी. सी. 67.

प्रतिनिधियों की मार्फत बनाम **विनोद कुमार और अन्य**[1] तथा **वेद मित्र वर्मा** बनाम **धर्म देव वर्मा**[2] वाले मामलों में इस न्यायालय के दो विनिश्चयों का अवलंब यह दर्शित करने के लिए लिया गया है कि अन्य उत्तराधिकारियों के अपवर्जन मात्र से विल द्वारा किया गया व्ययन दूषित नहीं हो जाता है ।

10. किसी विल की कतिपय विशिष्टताएं हो सकती हैं और ऐसी कतिपय परिस्थितियों में निष्पादित की गई हो सकती हैं जो किंचित अस्वाभाविक प्रतीत हो सकती हैं । किसी विल में प्रतीत होने वाली ऐसी अप्रायिक विशिष्टताओं या इसके निष्पादन से संबंधित अस्वाभाविक परिस्थितियों से उस विल को स्वीकार करने से पूर्व इसकी गहन संवीक्षा करने की बात निश्चित रूप से न्यायोचित होगी । ऐसी संवीक्षा के आधार पर न्यायालय का समग्र निर्धारण, अप्रायिक विशिष्टताओं और परिस्थितियों का संचयी प्रभाव वे बातें हैं जिनकी न्यायालय द्वारा किए जाने वाले अवधारण में उसे विवेचना करनी होगी । अंतिमतः, न्यायिक अधिमत सभी अप्रायिक विशिष्टताओं और संदेहास्पद परिस्थितियों पर एक साथ किए गए विचार पर आधारित होगा न कि किसी ऐसी एकल विशिष्टता के प्रभाव पर जो कि विल में पाई जाए या किसी एकल परिस्थिति के आधार पर जो विल के निष्पादन या रजिष्ट्रीकरण की प्रक्रिया से प्रतीत होती हो । यह बात इस विषय पर इस न्यायालय द्वारा अनेक बार सुनाए गए निर्णयों का सार है और इसमें हमारे समक्ष निर्दिष्ट किए गए और अवलंब लिए गए विनिश्चय भी सम्मिलित हैं ।

11. वर्तमान मामले में, विल के गहन पठन से इसकी स्पष्ट भाषा और इसका असंदेहास्पद तात्पर्य और प्रभाव उपदर्शित होता है । विल से वसीयतकर्ता की इच्छा स्पष्ट रूप से दृष्टव्य है और पुत्रों को अपवर्जित करने का कारण स्वतः स्पष्ट है । जहां तक निष्पादन के स्थान का संबंध है, अभि. सा. 3 द्वारा प्रोबेट के लिए आवेदन के साथ फाइल किए गए सत्यापन और उक्त साक्षी द्वारा न्यायालय में दिए गए साक्ष्य में प्रतीत होने वाली असंगति इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए समझ में आ सकती हैं कि सत्यापन मद्रास उच्च न्यायालय की मूल अधिकारिता द्वारा विहित किए गए मानक प्ररूप (प्ररूप सं. 55) में है, जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है । इसके अतिरिक्त, वर्तमान मामले में विल के निष्पादन और रजिस्ट्रीकरण में प्रथम प्रत्यर्थी की सहभागिता के तथ्य को ऐसी परिस्थिति

---

[1] (2012) 4 एस. सी. सी. 387.

[2] 2014 (9) स्केल 219.

नहीं कहा जा सकता है जिससे प्रतिकूल निष्कर्ष निकलता हो । पुनः, प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा अपने मित्र (अभि. सा. 3) को अनुप्रमाणक साक्षी होने के लिए बुलाने और वसीयतकर्ता को उप-रजिस्ट्रार के कार्यालय में ले जाने में उसके आचरण से कोई प्रतिकूल निष्कर्ष नहीं निकाला जाना चाहिए । यह बात भी उल्लेखनीय है कि तारीख 11 जनवरी, 1982 की विल की अंतर्वस्तुएं तारीख 28 दिसम्बर, 1981 की विल की अंतर्वस्तुओं के समरूप हैं । जहां तक तारीख 28 दिसम्बर, 1981 की विल के निष्पादन और उसके रजिस्ट्रीकरण का संबंध है, प्रथम प्रत्यर्थी की कोई सक्रिय सहभागिता नहीं रही है । अनुप्रमाणक साक्षियों की तब्दीली और सीता पदमनाभन, जिसने तारीख 11 जनवरी, 1982 की विल को अनुप्रमाणित किया था, की परीक्षा न कराने की बात को पर्याप्त रूप से स्पष्ट किया गया है ।

12. भले ही वसीयतकर्ता को अंग्रेजी के ज्ञान के अभाव की बात मानी जा सकती हो, इससे मूलतः स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आएगा क्योंकि यह समझा जा सकता है कि विल के रजिस्ट्रीकरण से पूर्व उसकी अंतर्वस्तुएं वसीयतकर्ता को स्पष्ट कर दी गई थीं या अभि. सा. 4 उप-रजिस्ट्रार द्वारा उससे अभिनिश्चित कर ली गई थीं जिसने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि ऐसी परिपाटी का सामान्य तौर पर पालन किया जाता है । मूल विल का प्रस्तुत न करना और इसकी प्रमाणित प्रति का अवलंब लेना ऐसी परिस्थिति है जिसे प्रथम प्रत्यर्थी (वादी) द्वारा युक्तियुक्त रूप से स्पष्ट किया गया है । मूल विल तारीख 11 जनवरी, 1982 को इसके निष्पादन के पश्चात् से ही वसीयतकर्ता की अभिरक्षा में थी और केवल उसकी मृत्यु के दिन अर्थात् तारीख 27 अप्रैल, 1991 को प्रथम प्रत्यर्थी (वादी) को पता चला था कि "केपीपी विल" के रूप में चिह्नित विल लिफाफे से गायब थी । वादी का यह आधार कि विल तब गुम हुई थी जब वह उसकी माता की अभिरक्षा में थी और उसे इसके गुम होने की जानकारी उसकी माता की मृत्यु के दिन हुई थी, इस बात को केवल इस कारण अविश्वसनीय नहीं माना जा सकता है कि इस बाबत पुलिस के पास कोई रिपोर्ट दर्ज नहीं की गई थी ।

13. सभी अप्रायिक और अभिकथित रूप से संदेहास्पद परिस्थितियां ऊपर उपदर्शित रीति में समझ सकने योग्य होने के कारण हम उच्च न्यायालय द्वारा विद्वान् विचारण न्यायालय के निर्णय को उलटते हुए निकाले गए निष्कर्ष में कोई त्रुटि नहीं पाते हैं ।

14. इस निर्णय को समाप्त करने से पूर्व हम यह मत व्यक्त करना चाहेंगे कि यह वास्तविकता है कि इस न्यायालय में अपील केवल अपील के लिए इजाजत प्रदान करने पर ही की जा सकती है, इससे इस न्यायालय की अधिकारिता की प्रकृति अति सीमित उपदर्शित होती है । कानूनी अपील के मुकाबले संविधान के किसी उपबंध के अनुसरण में विशेष इजाजत प्रदान करने पर फाइल की गई अपील शक्ति का प्रयोग करने के लिए अति मितव्ययी कवायद है जो कि फिर भी जहां-कहीं अन्याय होता है उस पर प्रहार करने के लिए व्यापक है, किंतु इसका प्रयोग बहुत ही न्यायसम्मत रूप से किया गया दिखाई पड़ना चाहिए । उच्च न्यायालय द्वारा प्रथम अपील न्यायालय के रूप में आसीन होकर या यहां तक कि द्वितीय अपील न्यायालय के रूप में सहमत होते हुए भी किए गए तथ्यों के अवधारण पर तब तक पुनःविचार नहीं किया जा सकता जब तक कि इसमें विधि का ऐसा प्रश्न उद्भूत न हो जिस पर गंभीर बहस अपेक्षित हो या इससे तथ्यों का पूरी तरह अस्वीकार्य निष्कर्ष प्रकट होता हो और जिससे स्पष्ट रूप से न्याय की हानि होना प्रदर्शित होता हो । साक्ष्य का मूल्यांकन या पुनर्मूल्यांकन न्यायिक कार्यवाहियों के किसी न किसी प्रक्रम पर समाप्त होना आवश्यक है और इसे संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करके सांविधानिक न्यायालय में नहीं लाया जा सकता ।

15. तद्नुसार, हम उच्च न्यायालय की मूल अधिकारिता के अधीन फाइल की गई 2001 की अपील सं. 185 में उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा तारीख 18 अगस्त, 2009 को पारित किए गए आदेश की अभिपुष्टि करते हुए इन अपीलों को खारिज करते हैं । तथापि, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में हम खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं करते हैं ।

अपीलें खारिज की गईं ।

जस.

एन. पदमम्मा और अन्य

बनाम

एस. रामकृष्ण रेड्डी और अन्य

23 सितम्बर, 2014

न्यायमूर्ति टी. एस. ठाकुर, न्यायमूर्ति सी. नागप्पन और न्यायमूर्ति आदर्श कुमार गोयल

आन्ध्र प्रदेश (तेलंगाना क्षेत्र) इनाम उत्सादन अधिनियम, 1955 – धारा 3, 8, 16, 24 और 29 – संयुक्त कुटुम्ब के सदस्यों के बीच अंशों के विभाजन के लिए वाद – सिविल न्यायालय की अधिकारिता – कुछ भूमियों पर संयुक्त कुटुम्ब के सदस्यों में से किसी एक सदस्य के पक्ष में अधिभोगाधिकार अनुदत्त किया जाना – अधिनियम के प्रवर्तन के कारण सभी इनाम भूमियां राज्य में निहित हो गई थीं और इनामदार की मृत्यु के पश्चात् उसके विधिक वारिसों ने सभी अधिकार वसीयत में प्राप्त किए थे इसलिए किसी एक सदस्य को अधिभोगाधिकार अनुदत्त किए जाने के परिणामस्वरूप अन्य वारिसों के अधिकारों का निर्वापन नहीं हो जाता है तथा अधिनियम के प्रवर्तन के पश्चात् सभी इनामों का उत्सादन होने पर भी इनाम भूमियां विभाज्य हैं और सिविल न्यायालय उन भूमियों के विभाजन के संबंध में विनिश्चय कर सकता है ।

यह अपील इस न्यायालय के दो न्यायमूर्तियों की खंड न्यायपीठ द्वारा किए गए निर्देश के अनुसरण में इस बृहत्तर न्यायपीठ के समक्ष प्रस्तुत की गई है । एन. पदमम्मा और अन्य **बनाम** एस. रामाकृष्ण रेड्डी और अन्य वाले निर्णय में प्रतिवेदित निर्देश संबंधी आदेश में यह प्रश्न अवधारणार्थ विरचित किया गया है कि क्या सिविल न्यायालय को किसी संयुक्त कुटुम्ब के सदस्यों के बीच अपने-अपने अंश के बंटवारे के लिए विभाजन संबंधी वाद ग्रहण करने की अधिकारिता तब प्राप्त होती है जब कुछ भूमियों की बाबत आन्ध्र प्रदेश (तेलंगाना क्षेत्र) इनाम उत्सादन अधिनियम, 1955 (जिसे संक्षेप में "अधिनियम" कहा गया है) के उपबंधों के आधार पर उनमें से किसी एक सदस्य के पक्ष में अधिभोगाधिकार अनुदत्त कर दिया गया है । प्रस्तुत मामले में मूल स्वामी अपने पीछे दो पुत्र छोड़ गया । एक पुत्र "एस" की वर्ष 1968 में मृत्यु हो गई और वह अपने पीछे दो पत्नियां, दो पुत्रियां और एक पुत्र छोड़ गया । इस अपील में दोनों पत्नियां और उनके बालक

एक दूसरे के विरुद्ध मुकदमा लड़ रहे हैं । जबकि इस अपील में अपीलार्थी-वादी मृतक द्वारा अपने पीछे छोड़ी गई पहली पत्नी और उसकी पुत्री हैं और प्रतिवादी-प्रत्यर्थी उसका पुत्र, दूसरी पत्नी और पुत्री हैं । वादियों (इस मामले में अपीलार्थी) द्वारा द्वितीय अपर न्यायाधीश, नगर सिविल न्यायालय, हैदराबाद के समक्ष फाइल किए गए सिविल वाद में "एस" द्वारा अपने पीछे छोड़ी गई संपत्ति का माप और सीमांकन करके विभाजन के लिए डिक्री की ईप्सा की गई । दो भाइयों के बीच हुए विभाजन में वाद में अनुसूचीगत संपत्तियां रामचन्द्र रेड्डी के हिस्से में आईं । वादी का पक्षकथन यह था कि रामचन्द्र रेड्डी की मृत्यु के पश्चात् पक्षकारों का विवादग्रस्त संपत्तियों पर संयुक्त रूप से स्वामित्व और कब्जा बना हुआ है और चूंकि वह रामचन्द्र रेड्डी की स्वतः अर्जित संपत्ति थी इसलिए पांच वारिसों में से प्रत्येक वारिस उसके पांचवे हिस्से का हकदार था । वाद का प्रतिवादी-प्रत्यर्थियों द्वारा अन्य बातों के साथ-साथ यह अभिकथन करते हुए विरोध किया गया था कि सर्वेक्षण सं. 21 से 28 के अंतर्गत आने वाली कृषि भूमि इनाम भूमि थी जो कि प्रतिवादी-प्रत्यर्थी सं. 1 के दादा द्वारा अर्जित की गई थी और जो कि भू-राजस्व का संदाय करके धारक के रूप में उसका उपभोग कर रहा था । इसके आगे यह अभिकथन किया गया था कि स्वर्गीय श्री अनंतराम रेड्डी और एस. रामकृष्ण रेड्डी के बीच विभाजन होने पर, जो कि वर्ष 1960 में हुआ, सर्वेक्षण सं. 21 से 28 के अंतर्गत आने वाली भूमि और आवासिक गृह रामचन्द्र रेड्डी के पक्ष में आबंटित किया गया था, जिसकी मृत्यु के पश्चात् उक्त संपत्तियों पर प्रतिवादी सं. 1 का कब्ज़ा हुआ था । इसके अलावा, उसने सर्वेक्षण सं. 21 से 28 की बाबत अधिनियम के अधीन अधिभोगाधिकार अर्जित किए थे । अतः, प्रतिवादी का पक्षकथन यह था कि वह अपने पक्ष में अधिभोगाधिकर अनुदत्त किए जाने के कारण सर्वेक्षण सं. 21 से 28 के अंतर्गत आने वाली इनाम भूमि का आत्यांतिक स्वामी और अधिभोगी बन गया जिसमें वादी किसी हिस्से का दावा नहीं कर सकते थे । विचारण न्यायालय ने वाद को भागतः डिक्री कर दिया । विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि प्रतिवादी सं. 1 सर्वेक्षण सं. 21 से 28 के अंतर्गत आने वाली संपत्ति का आत्यांतिक स्वामी था किन्तु वह यह साबित करने में असफल रहा था कि वह अपने पक्ष में विक्रय लिखत के आधार पर मद सं. 9 से 14 के अंतर्गत आने वाली संपत्ति का आत्यांतिक स्वामी था । उक्त संपत्ति के बारे में विचारण न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया कि वह विभाजित की गई संयुक्त कौटुम्बिक संपत्ति थी । विचारण न्यायालय ने आगे यह अभिनिर्धारित

किया कि वादी-अपीलार्थी अनुसूची "ख" और "ग" संपत्तियों में केवल पांचवे हिस्से के हकदार थे । विचारण न्यायालय के निर्णय से व्यथित होकर प्रत्यर्थियों ने अपील फाइल की जिसके संबंध में अपीलार्थियों ने प्रत्याक्षेप फाइल किए । अपील और प्रत्याक्षेप, दोनों की उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश द्वारा सुनवाई की गई और इस उपांतरण के साथ उनका निपटारा कर दिया कि वादी पक्षकारों के बीच संयुक्त रूप से धारित संपत्ति में 3/8 हिस्से के हकदार होंगे । उन इनाम भूमियों में, जिन पर प्रतिवादी सं. 1 ने अधिभोगाधिकार अर्जित कर लिए थे, एक हिस्सा आबंटित करने संबंधी दावे को अमान्य ठहराया गया क्योंकि ऐसे अधिभोगाधिकार प्रतिवादी सं. 1 के पक्ष में उसकी व्यक्तिगत हैसियत में न कि संयुक्त कुटुम्ब के एक सदस्य के रूप में अनुदत्त किए गए थे । इसके बाद, मामला अपीलार्थियों द्वारा फाइल की गई लेटर्स पेटेंट अपील में उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के समक्ष लाया गया और वह अपील भी असफल हो गई । उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने विचारण न्यायालय और एकल न्यायाधीश द्वारा अभिलिखित इस निष्कर्ष की पुष्टि की कि प्रतिवादी सं. 1 (जो कि इस मामले में प्रत्यर्थी है) वादी द्वारा वादपत्र "क" की अनुसूचीगत संपत्ति की मद 7 और 8 और वादपत्र "ख" और "ग" की संपत्तियों में अपने हिस्से के अभिकथित त्यजन को साबित करने में असफल रहा था । खंड न्यायपीठ ने वादपत्र "क" की अनुसूचीगत संपत्ति की मद 9 से 14 के संबंध में भी निचले न्यायालयों के इन निष्कर्षों को पुष्ट कर दिया कि प्रतिवादी सं. 1 तब भी संपत्ति का आत्यांतिक स्वामी नहीं था जब उसका क्रय उसके नाम में किया गया था क्योंकि उसका विक्रय प्रतिफल संयुक्त कुटुम्ब की निधियों के बाहर से आया था । फिर भी प्रतिवादी सं. 1 अवयस्क था जिसकी अपनी कोई आय नहीं थी । इसके अलावा, खंड न्यायपीठ ने एकल न्यायाधीश द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण को पुष्ट करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि प्रतिवादी सं. 1 के पक्ष में अधिभोगाधिकार प्रश्नगत भूमि के अधिभोगी के रूप में उसकी व्यक्तिगत हैसियत में अनुदत्त किए गए थे । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – आन्ध्र प्रदेश (तेलंगाना क्षेत्र) इनाम उत्सादन अधिनियम, 1955 की धारा 3 से यह स्पष्ट है कि सभी इनाम भूमियां तारीख 20 जुलाई, 1955 से, जो कि वह तारीख है जब से अधिनियम प्रवर्तन में आया, आन्ध्र प्रदेश राज्य में निहित हो गई हैं । तथापि, यह सामान्य आधार है कि विवादग्रस्त इनाम भूमि वर्ष 1968 में रामचन्द्र रेड्डी की मृत्यु होने तक उसके कब्जे में बनी रही थीं जिसके आधार पर उन भूमियों के संबंध

में अधिकार और विशेषाधिकार, जिनमें वे अधिकार और विशेषाधिकार भी हैं, जिनके कारण रामचन्द्र रेड्डी निहित किए जाने की तारीख को भूमि का काश्तकार अधिभोगी होने के कारण अधिनियम के अधीन अधिभोगाधिकार का दावा करने का हकदार हुआ होगा, उसके विधिक वारिसों ने, जो इस अपील में पक्षकार हैं, विरासत में प्राप्त किए थे । प्रत्यर्थी सं. 1 मृतक द्वारा अपने पीछे छोड़ा गया कुटुम्ब का एकमात्र पुरुष सदस्य था । उसके पिता द्वारा धारित भूमि पर उसे बेदखल किए जाने के किसी अभिवाक् या सबूत के अभाव में उसके द्वारा उस भूमि पर कब्जा रखना और व्यक्तिगत रूप से काश्त करने संबंधी किसी मान्यता को संपूर्ण कुटुम्ब की ओर से न कि उसकी व्यष्टिक हैसियत में काश्त करना माना जाना चाहिए । ऐसा इसलिए है क्योंकि रामचन्द्र रेड्डी की मृत्यु के कारण, जो कि भूमि का मूल अधिभोगी था, किसी भी विधिगत सिद्धांत के आधार पर रामचन्द्र रेड्डी द्वारा अपनी व्यष्टिक हैसियत में धारित भूमि के कब्जे या काश्त के अधिकार का दावा करने के लिए उसके पुत्र (इस अपील में प्रत्यर्थी सं. 1) को अनन्यता प्रदान नहीं की जा सकती थी और जो कि उसकी मृत्यु के पश्चात् विधिसम्मत रूप से और सामान्य अनुक्रम में उसके पीछे छोड़े गए उसके विधिक वारिसों में समान हिस्सों में न्यागत होगी । मृतक के विधिक वारिस के रूप में प्रत्यर्थी सं. 1 की प्रास्थिति रामचन्द्र रेड्डी के अन्य विधिक वारिसों के मुकाबले अधिक बेहतर नहीं थी । कुटुम्ब के एकमात्र पुरुष सदस्य के रूप में प्रत्यर्थी सं. 1 को अधिभोगाधिकार प्रदान करने के परिणामस्वरूप अपीलार्थियों के अधिकारों का निर्वापन नहीं हो सकेगा जिनका मृतक द्वारा अपने पीछे छोड़ी गई संपदा में उत्तराधिकार होने का समान दावा था जो कि प्रत्यर्थी सं. 1 के दावे से किसी भी प्रकार कम नहीं था जिसमें ऐसे सभी अधिकारों का उत्तराधिकार भी शामिल है जो रामचन्द्र रेड्डी की मृत्यु की तारीख को अपूर्ण रहे हैं बल्कि जिनकी परिणति उसके इनामदार होने के आधार पर उसके पक्ष में फायदाग्राही अनुदान के रूप में हो सकती थी । इस संबंध में कोई विवाद नहीं है कि रामचन्द्र रेड्डी की मृत्यु के समय कुटुम्ब संयुक्त था । इस संबंध में भी कोई विवाद नहीं है कि वह कुटुम्ब भूमि पर आश्रित था । रामचन्द्र रेड्डी के कुटुम्ब के अन्य सदस्यों को बेदखल करने संबंधी किसी अकाट्य और विश्वसनीय साक्ष्य के अभाव में इस बात का मूल्यांकन करना कठिन है कि प्रत्यर्थी सं. 1 रामचन्द्र रेड्डी के स्वामित्वाधीन संपत्ति के संबंध में या उन अधिकारों के संबंध में जो मृतक के पास अधिभोगी के रूप में थे, मृतक की वसीयत का दावा किस प्रकार कर सकता था । (पैरा 10)

यह विधि का उचित रूप से सुस्थापित सिद्धांत है कि किसी एक सह-वारिस का कब्जा विधि की दृष्टि से सभी सह-वारिसों का कब्जा माना जाता है । यदि एक सह-वारिस को संपत्तियों का कब्जा मिल गया है तो यह उपधारित किया जाता है कि यह कब्जा संयुक्त हक के आधार पर है । कब्जाधीन कोई सह-वारिस अपने कब्जे को अपने अन्य सह-वारिसों के हक को अल्पीकृत करते हुए अपनी ओर से किसी गुप्त प्रतिकूल अभिप्राय मात्र से ऐसे अन्य सह-वारिसों के प्रतिकूल नहीं बना सकता जो कब्जाधीन नहीं हैं । अन्य सह-वारिसों की बेदखली, उनमें से किसी एक के अनन्य कब्जे और उपभोग सहित, जिसकी जानकारी अन्य सह-वारिसों को है, प्रतिकूल हक द्वारा साक्ष्यित होनी चाहिए । (पैरा 11)

प्रस्तुत मामले में वाद अधिभोगाधिकारों के अनुदत्त किए जाने के पश्चात् फाइल किया गया था । इस मामले में प्रश्न यह है कि क्या ऐसे अधिकारों का अनुदत्त किया जाना संयुक्त कुटुम्ब के किसी एक सदस्य के फायदे के लिए या रामचन्द्र रेड्डी द्वारा अपने पीछे छोड़े गए सभी वारिसों के फायदे के लिए है । उस प्रश्न के संबंध में हमारा उत्तर अपीलार्थियों के पक्ष में है । प्रत्यर्थी सं. 1 के पक्ष में ऐसे अधिभोगाधिकारों का अनुदत्त किया जाना रामचन्द्र रेड्डी द्वारा अपने पीछे छोड़े गए सभी विधिक वारिसों के फायदे के लिए था । परिणामस्वरूप, अपील मंजूर की जाती है और निचले न्यायालयों द्वारा पारित निर्णय और आदेश को उस सीमा तक अपास्त करते हैं जहां तक उसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि आन्ध्र प्रदेश (तेलंगाना क्षेत्र) इनाम उत्सादन अधिनियम, 1955 के अधीन इनाम के उत्सादन पर प्रत्यर्थी सं. 1 के पक्ष में अनुदत्त इनाम भूमि रामचन्द्र रेड्डी द्वारा अपने पीछे छोड़े गए वारिसों के बीच विभाज्य नहीं है । परिणामतः, अपीलार्थियों द्वारा फाइल किया गया वाद उसी अनुपात में इनाम भूमि सहित जैसा कि संपत्ति की अन्य मदों के संबंध में आक्षेपित निर्णय द्वारा उच्च न्यायालय ने अवधारित किया है, डिक्री हो जाता है । (पैरा 16 और 17)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2008]	(2008) 15 एस. सी. सी. 517 : **एन. पदमम्मा और अन्य** बनाम **एस. रामाकृष्ण रेड्डी और अन्य** ;	1
[1995]	(1995) सप्ली. 1 एस. सी. सी. 162 : **शिवप्पा तम्मन्नप्पा कराबन** बनाम **पारसप्पा हनम्मप्पा कुराबन और अन्य** ;	14

[1995]	(1995) 3 एस. सी. सी. 291 : **लोकराज और अन्य** बनाम **किशन लाल और अन्य** ;	15,16
[1989]	(1989) सप्ली. 1 एस. सी. सी. 246 : **कलगौंडा बबगौंडा पाटिल** बनाम **बालगौंडा कलगौंडा पाटिल और अन्य** ;	13,14
[1971]	[1971] 2 उम. नि. प. 159 = (1971) 1 एस. सी. सी. 556 : **भुवनेश्वर प्रसाद नारायण सिंह और अन्य** बनाम **सिद्धेश्वर मुखर्जी और अन्य** ;	12,16
[1957]	ए. आई. आर. 1957 एस. सी. 314 : **पी. लक्ष्मी रेड्डी** बनाम **एल. लक्ष्मी रेड्डी** ;	11
[1922]	(1922) अपील केसेज़ 230 : **कोरिया** बनाम **अप्पूहामी** ।	11

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2008 की सिविल अपील सं. 3632.

1993 की लेटर्स पेटेंट अपील सं. 3 में आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय की हैदराबाद न्यायपीठ द्वारा पारित तारीख 11 अगस्त, 2006 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री राकेश द्विवेदी, ज्येष्ठ अधिवक्ता, श्रीधर पोटाराजू, वाई. श्रीनिवास मूर्ति और अर्जुन सिंह

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री पी. पी. राव, पी. विश्वनाथ शेट्टी, ज्येष्ठ अधिवक्ता, डी. रामाकृष्ण रेड्डी और (श्रीमती) डी. भारती रेड्डी

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति टी. एस. ठाकुर ने दिया ।

न्या. ठाकुर – यह अपील इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा, जिसमें न्यायमूर्ति एस. बी. सिन्हा और न्यायमूर्ति लोकेश्वर सिंह पंटा शामिल थे, किए गए निर्देश के अनुसरण में इस बृहत्तर न्यायपीठ के समक्ष प्रस्तुत की गई है । **एन. पदमम्मा और अन्य** बनाम **एस. रामाकृष्ण रेड्डी और अन्य**[1] वाले निर्णय में प्रतिवेदित निर्देश संबंधी आदेश में निम्नलिखित

[1] (2008) 15 एस. सी. सी. 517.

प्रश्न अवधारणार्थ विरचित किया गया है :–

> "इसमें अंतर्वलित प्रश्न यह है कि क्या सिविल न्यायालय को किसी संयुक्त कुटुम्ब के सदस्यों के बीच अपने-अपने अंश के बंटवारे के लिए विभाजन संबंधी वाद ग्रहण करने की अधिकारिता तब प्राप्त होती है जब कुछ भूमियों की बाबत आन्ध्र प्रदेश (तेलंगाना क्षेत्र) इनाम उत्सादन अधिनियम, 1955 (जिसे संक्षेप में 'अधिनियम' कहा गया है) के उपबंधों के आधार पर उनमें से किसी एक सदस्य के पक्ष में अधिभोगाधिकार अनुदत्त कर दिया गया है ।"

2. हम संक्षिप्त प्रश्न और हमारे समक्ष दी गई परस्पर-विरोधी दलीलों का उल्लेख करने से पूर्व तथ्यों का सारांश प्रस्तुत करते हैं ।

3. मूल स्वामी एस. रामाकृष्ण रेड्डी अपने पीछे अपने पुत्र, अर्थात्, एस. रामचन्द्र रेड्डी और एस. अनंतराम रेड्डी को छोड़ गया । पूर्ववर्ती की वर्ष 1968 में मृत्यु हो गई और वह अपने पीछे दो पत्नियां, दो पुत्रियां और एक पुत्र छोड़ गया । इस अपील में दोनों पत्नियां और उनके बालक एक दूसरे के विरुद्ध मुकदमा लड़ रहे हैं । जबकि इस अपील में अपीलार्थी-वादी मृतक द्वारा अपने पीछे छोड़ी गई पहली पत्नी और उसकी पुत्री है और प्रतिवादी-प्रत्यर्थी उसका पुत्र, दूसरी पत्नी और पुत्री हैं ।

4. वादियों (इस मामले में अपीलार्थी) द्वारा द्वितीय अपर न्यायाधीश, नगर सिविल न्यायालय, हैदराबाद के समक्ष फाइल किए गए 1981 के सिविल वाद सं. 933 में एस. रामचन्द्र रेड्डी द्वारा अपने पीछे छोड़ी गई संपत्ति का माप और सीमांकन करके विभाजन के लिए डिक्री की ईप्सा की गई है । वादपत्र में अन्य बातों के साथ-साथ यह कहा गया है कि रामचन्द्र रेड्डी और उसके भाई स्वर्गीय अनंतराम रेड्डी ने स्थावर संपत्तियों की अनेक मदें अर्जित की थीं जिनमें 26 एकड़ 37 गुंठा माप वाली कृषि भूमि और हैदराबाद जिले के मुशीराबाद तालुक में बाग अम्बरपेट स्थित एम. सी. एच. सं. 2-2-977 और मुल्गी एम. सी. एच. सं. 2-2-1010 वाला आवासिक गृह भी हैं । दो भाइयों के बीच हुए विभाजन में वाद में अनुसूचीगत संपत्तियां रामचन्द्र रेड्डी के हिस्से में आईं । वादी का पक्षकथन यह था कि रामचन्द्र रेड्डी की मृत्यु के पश्चात् पक्षकारों का विवादगत संपत्तियों पर संयुक्त रूप से स्वामित्व और कब्जा बना हुआ है और चूंकि वह रामचन्द्र रेड्डी की स्वतः अर्जित संपत्ति थी इसलिए पांच वारिसों में से प्रत्येक वारिस उसके पांचवे हिस्से का हकदार था ।

5. वाद का प्रतिवादी-प्रत्यर्थियों द्वारा अन्य बातों के साथ-साथ यह अभिकथन करते हुए विरोध किया गया था कि सर्वेक्षण सं. 21 से 28 के अंतर्गत आने वाली कृषि भूमि इनाम भूमि थी जो कि प्रतिवादी-प्रत्यर्थी सं. 1 के दादा द्वारा अर्जित की गई थी और जो कि भू-राजस्व का संदाय करके धारक के रूप में उसका उपभोग कर रहा था । इसके आगे यह अभिकथन किया गया था कि स्वर्गीय श्री अनंतराम रेड्डी और एस. रामकृष्ण रेड्डी के बीच विभाजन होने पर, जो कि वर्ष 1960 में हुआ, सर्वेक्षण सं. 21 से 28 के अंतर्गत आने वाली भूमि और हैदराबाद जिले के मुशीराबाद तालुक में बाग अम्बरपेट में स्थित एम. सी. एच. सं. 2-2-977 और मुल्गी एम. सी. एच. सं. 2-2-1010 वाला आवासिक गृह रामचन्द्र रेड्डी के पक्ष में आबंटित किया गया था, जिसकी मृत्यु के पश्चात् उक्त संपत्तियों पर प्रतिवादी सं. 1 का कब्ज़ा हुआ । यह भी दावा किया गया है कि प्रतिवादी सं. 1 ने पुराने मकान को गिराने के पश्चात् एक नए मकान का सन्निर्माण किया था । इसके अलावा, उसने सर्वेक्षण सं. 21 से 28 की बाबत इससे पूर्व उल्लिखित आन्ध्र प्रदेश (तेलंगाना क्षेत्र) इनाम उत्सादन अधिनियम, 1955 के अधीन अधिभोगाधिकार अर्जित किए थे । अतः, प्रतिवादी का पक्षकथन यह था कि वह अपने पक्ष में अधिभोगाधिकार अनुदत्त किए जाने के कारण सर्वेक्षण सं. 21 से 28 के अंतर्गत आने वाली इनाम भूमि का आत्यांतिक स्वामी और अधिभोगी बन गया जिसमें वादी किसी हिस्से का दावा नहीं कर सकते थे । यह भी अभिकथित किया गया था कि सर्वेक्षण सं. 282/1, 283/1, 283/2, 283/3, और 284 के अंतर्गत आने वाली 5 एकड़ और 16 गुंठा माप वाली कृषि भूमि में से लगभग आधी भूमि का क्रय प्रतिवादी सं. 1 द्वारा उस धन की सहायता से किया गया था जो प्रतिवादी सं. 1 की दादी ने उस प्रयोजनार्थ दी थी । अतः, प्रतिवादी सं. 1 वादपत्र की "क" अनुसूची की मद सं. 9 से 13 में समाविष्ट उक्त संपत्ति का आत्यांतिक स्वामी था ।

6. विचारण न्यायालय ने अधिक से अधिक छह विवाद्यक विरचित किए और अपने तारीख 24 अप्रैल, 1989 के निर्णय और आदेश द्वारा वाद को भागतः डिक्री कर दिया । विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि प्रतिवादी सं. 1 ऊपर उल्लिखित सर्वेक्षण सं. 21 से 28 के अंतर्गत आने वाली संपत्ति का आत्यांतिक स्वामी था किन्तु वह यह साबित करने में असफल रहा था कि वह अपने पक्ष में विक्रय लिखत के आधार पर मद सं. 9 से 14 के अंतर्गत आने वाली संपत्ति का आत्यांतिक स्वामी था । उक्त संपत्ति के बारे में विचारण न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया कि

वह विभाजित की गई संयुक्त कौटुम्बिक संपत्ति थी । विचारण न्यायालय ने आगे यह अभिनिर्धारित किया कि वादी-अपीलार्थी अनुसूची ''ख'' और ''ग'' संपत्तियों में केवल पांचवे हिस्से के हकदार थे ।

7. विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश से व्यथित होकर प्रत्यर्थियों ने 1980 की सी. सी. सी. अपील सं. 94 फाइल की जिसके संबंध में अपीलार्थियों ने प्रत्याक्षेप फाइल किए । अपील और प्रत्याक्षेप, दोनों की उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश द्वारा सुनवाई की गई और इस उपांतरण के साथ उनका निपटारा कर दिया कि वादी पक्षकारों के बीच संयुक्त रूप से धारित संपत्ति में 3/8 हिस्से के हकदार होंगे । उन इनाम भूमियों में, जिन पर प्रतिवादी सं. 1 ने अधिभोगाधिकार अर्जित कर लिए थे, एक हिस्सा आबंटित करने संबंधी दावे को अमान्य ठहराया गया क्योंकि ऐसे अधिभोगाधिकार प्रतिवादी सं. 1 के पक्ष में उसकी व्यक्तिगत हैसियत में न कि संयुक्त कुटुम्ब के एक सदस्य के रूप में अनुदत्त किए गए थे । एकल न्यायाधीश ने निम्न प्रकार मत व्यक्त किया :–

> ''ऊपर निर्दिष्ट लक्ष्मण अम्बाजी वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय को ध्यान में रखते हुए, मैं अपीलार्थी/प्रथम प्रतिवादी की ओर से विद्वान् काउन्सेल की इस दलील से सहमत हूं कि जहां तक अधिनियम की धारा 8 का संबंध है, निहित किए जाने की तारीख 1-11-1973 मानी जानी चाहिए और चूंकि प्रथम प्रतिवादी भूमि के अधिभोगी के रूप में रजिस्ट्रीकृत है इसलिए वह अपनी व्यक्तिगत हैसियत में ऐसा करता है न कि संयुक्त कुटुम्ब के एक सदस्य के रूप में और इसलिए निचले न्यायालय द्वारा संपत्ति की इन मदों के संबंध में वादी के दावे को खारिज करना सही नहीं है ।''

8. इसके बाद, मामला 1993 की लेटर्स पेटेंट अपील सं. 3 में, जो कि अपीलार्थियों द्वारा फाइल की गई थी, उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के समक्ष लाया गया और वह अपील भी असफल हो गई और उसे खंड न्यायपीठ ने तारीख 11 अगस्त, 2006 के अपने आदेश के निबंधनानुसार खारिज कर दिया था । उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने विचारण न्यायालय और एकल न्यायाधीश द्वारा अभिलिखित इस निष्कर्ष की पुष्टि की कि प्रतिवादी सं. 1 (जो कि इस मामले में प्रत्यर्थी है) वादी द्वारा वादपत्र ''क'' की अनुसूचीगत संपत्ति की मद 7 और 8 और वादपत्र ''ख'' और ''ग'' की संपत्तियों में अपने हिस्से के अभिकथित त्यजन को साबित करने में असफल रहा था । खंड न्यायपीठ ने वादपत्र ''क'' की अनुसूचीगत

संपत्ति की मद 9 से 14 के संबंध में भी निचले न्यायालयों के इन निष्कर्षों को पुष्ट कर दिया कि प्रतिवादी सं. 1 तब भी संपत्ति का आत्यांतिक स्वामी नहीं था जब उसका क्रय उसके नाम में किया गया था क्योंकि उसका विक्रय प्रतिफल संयुक्त कुटुम्ब की निधियों के बाहर से आया था । फिर भी प्रतिवादी सं. 1 अवयस्क था जिसकी अपनी कोई आय नहीं थी । सभी तीन न्यायालयों ने इस कहानी पर विश्वास नहीं किया कि उसकी दादी ने संपत्ति की उक्त मदों का क्रय करने के लिए धन दिया था और उक्त संपत्ति पर अनन्य स्वामित्व होने के दावे को खारिज कर दिया । इसके अलावा, खंड न्यायपीठ ने एकल न्यायाधीश द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण को पुष्ट करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि प्रतिवादी सं. 1 के पक्ष में अधिभोगाधिकार प्रश्नगत भूमि के अधिभोगी के रूप में उसकी व्यक्तिगत हैसियत में अनुदत्त किए गए थे ।

9. जबकि हमने मामले की तथ्यात्मक रूपरेखा उपर्युक्त पैराओं में दे दी है तथापि, हमें यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि निचले न्यायालयों द्वारा अभिलिखित किसी भी निष्कर्ष को हमारे समक्ष चुनौती नहीं दी गई है सिवाय उन निष्कर्षों के जिनका संबंध इस प्रश्न से है कि प्रत्यर्थी सं. 1 के पक्ष में अधिभोगाधिकारों का अनुदान कुटुम्ब के अन्य सदस्यों को अपवर्जित करते हुए उसकी व्यक्तिगत हैसियत में था जिससे कि वादी-अपीलार्थियों को उक्त संपत्ति में उनके हिस्सों से वंचित किया जा सके । उस प्रश्न के उचित अवधारण के लिए आन्ध्र प्रदेश (तेलंगाना क्षेत्र) इनाम उत्सादन अधिनियम, 1955 की, जो कि 20 जुलाई, 1955 को प्रवर्तन में आया, धारा 3, धारा 8, धारा 10, धारा 24 और धारा 29 को उद्धृत करना आवश्यक है, जो कि निम्न प्रकार हैं :–

> *"3. इनामों का उत्सादन और निहित किया जाना और उसके परिणाम – (1) किसी प्रथा, बंदोबस्त, संविदा, अनुदान, सनद, आदेश या अन्य लिखत, अधिनियम, विनियम, नियमों या विधि का बल रखने वाले आदेश में किसी बात के होते हुए भी और किसी सिविल, राजस्व

---

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :–

> "3. Abolition and vesting of inams and the consequences thereof – (1) Notwithstanding anything to the contrary contained in any usage, settlement, contract, grant, sanad, order or other instrument, Act, regulation, rules or order having the force of law and notwithstanding any judgment, decree or

या अतियात न्यायालय के किसी निर्णय, डिक्री या आदेश के होते हुए भी और निहित किए जाने की तारीख से सभी इनाम उत्सादित समझे जाएंगे और वे राज्य में निहित हो जाएंगे ।

(2) इस अधिनियम के उपबंधों द्वारा या उनके अधीन अभिव्यक्त रूप से उपबंधित के सिवाय और निहित किए जाने की तारीख से निम्नलिखित परिणाम निकलेंगे, अर्थात् :–

(क) * * *

(ख) इनाम भूमि की बाबत इनामदार, काबिज़-ए-कादिम, स्थायी किराएदार, संरक्षित किराएदार और असंरक्षित किराएदार में निहित सभी अधिकार, हक और हित, उनसे भिन्न हित जो इस अधिनियम के उपबंधों द्वारा या उनके अधीन अभिव्यक्त रूप से व्यावृत्त हैं और इसमें सभी सामुदायिक भूमियों, कृष्ट और अकृष्ट भूमियों (चाहे निर्धारित हैं अथवा नहीं), बेकार भूमियों, चरागाह भूमियों, वनों, खानों और खनिजों, खदानों, नदियों और झरनों, तालाबों और सिंचाई संकर्मों, मत्स्य क्षेत्रों और फैरियों में के हित भी शामिल हैं, समाप्त हो जाएंगे और सभी विल्लंगमों से मुक्त आत्यांतिक रूप से राज्य में निहित हो जाएंगे ;

---

order of a Civil, Revenue or Atiyat Court, and with effect from the date of vesting, all inams shall be deemed to have been abolished and shall vest in the State.

(2) Save as expressly provided by or order the provisions of this Act and with effect from the date of vesting the following consequences shall ensue, namely –

(a) * * * *

(b) all rights, title and interest vesting in the inamdar, kabiz-e-kadim, permanent tenant, protected tenant and non-protected tenant in respect of the inam land, other than the interest expressly saved by or under provisions of this Act and including those in all communal lands, cultivated and uncultivated lands (whether assessed or not), waste lands, pasture lands, forests, mines and minerals, quarries, rivers and streams, tanks and irrigation works, fisheries and ferries shall cease and be vested absolutely in the State free from all encumbrances;

(ग) से (च) * * *

(छ) इनामदार और ऐसा कोई व्यक्ति, जिसके अधिकार खंड (ख) के अधीन राज्य में निहित हो गए हैं, सरकार से इस अधिनियम में यथा-उपबंधित प्रतिकर ही प्राप्त करने का हकदार होगा ;

(ज) इनाम भूमि के संबंध में इनामदार और काबिज़-ए-कादिम, स्थायी किराएदार, संरक्षित किराएदार या असंरक्षित किराएदार के बीच संबंध समाप्त हो जाएगा ;

(झ) * * *

(3) * * *

8. असंरक्षित किराएदार का अधिभोगी के रूप में रजिस्ट्रीकृत किया जाना – (1) प्रत्येक असंरक्षित किराएदार निहित किए जाने की तारीख से आन्ध्र प्रदेश (तेलंगाना क्षेत्र) अभिधृति और कृषि भूमि अधिनियम, 1950 (1950 का 21) की धारा 37 के अधीन रहते हुए अपनी कब्जाधीन उतनी इनाम भूमि के अधिभोगी के रूप में रजिस्ट्रीकृत होने का हकदार होगा जितनी धारा 4 के अधीन आबंटन के पश्चात् शेष बची है जो निहित किए जाने की तारीख से ठीक पूर्व

(c) – (f) * * * *

(g) the inamdar and any other person whose rights have vested in the State under clause (b) shall be entitled only to compensation from the Government as provided for in this Act;

(h) the relationship with regard to inam land as between the inamdar and kabiz-e-kadim, permanent tenant, protected tenant or non-protected tenant shall be extinguished;

(i) * * * *

(3) * * * *

8. Registration of non-protected tenant as occupant – (1) Every non-protected tenant shall with effect from the date of vesting subject to Section 37 of the Andhra Pradesh (Telangana Area) Tenancy and Agricultural Lands Act, 1950 (21 of 1950) be entitled to be registered as an occupant of such inam lands in his possession as may be left over after the allotment under Section 4 which immediately before the

उसकी व्यक्तिगत खेती में थी और जो ऐसी किसी भूमि के साथ जो उसके व्यक्तिगत स्वामित्व में है और जिस पर वह स्वयं खेती करता है, कौटुम्बिक धृति के साढ़े चार गुने के बराबर है ।

(2) असंरक्षित किराएदार सरकार से उतने प्रतिकर का हकदार होगा जितना उपधारा (1) में विहित सीमा के अधीन उसके कब्जे वाली इनाम भूमि की बाबत, चाहे वह भूमि कृष्ट है अथवा नहीं, इस अधिनियम के अधीन उपबंधित है ।

(3) किसी भी असंरक्षित किराएदार को उपधारा (1) के अधीन किसी भूमि के अधिभोगी के रूप में तब तक रजिस्ट्रीकृत नहीं किया जाएगा जब तक वह सरकार को शुष्क भूमि के लिए साठ गुना और आर्द्र भूमि के लिए बीस गुना भू-राजस्व के बराबर रकम का प्रीमियम के रूप में संदाय नहीं करता है । प्रीमियम की रकम वार्षिक भू-राजस्व के साथ दस से अनधिक वार्षिक किस्तों में संदेय होगी और ऐसे संदाय में व्यतिक्रम करने पर उसकी वसूली उस भूमि पर जिसकी बाबत वह संदेय है, भू-राजस्व के बकाया के रूप में की जाएगी ।

* * *

---

date of vesting were under his personal cultivation and which together with any lands he separately owns and cultivates personally, are equal to four and a half times the family holding.

(2) The non-protected tenant shall be entitled to compensation from the Government as provided for under this Act in respect of inam lands in his possession in excess of the limit prescribed in sub-section (1) whether cultivated or not.

(3) No non-protected tenant shall be registered as an occupant of any land under sub-section (1) unless he pays to the Government as premium an amount equal to sixty times the land revenue for dry land and twenty times for wet land. The amount of premium shall be payable in not more than ten annual instalments along with the annual land revenue and in default of such payment, shall be recoverable as arrears of land revenue due on the land in respect of which it is payable.

* * * *

10. कतिपय मामलों में कलक्टर द्वारा जांच – कलक्टर, ऐसी समस्त भूमि की प्रकृति और इतिवृत्त की परीक्षा करेगा जिसकी बाबत कोई इनामदार, काबिज-ए-कादिम, स्थायी किराएदार, संरक्षित किराएदार या असंरक्षित किराएदार यथास्थिति, धारा 4, धारा 5, धारा 6, धारा 7 और धारा 8 के अधीन अधिभोगी के रूप में रजिस्ट्रीकृत होने का दावा करता है और यह विनिश्चित करेगा कि –

(क) किसके पक्ष में और किस इनाम भूमि की बाबत दावे अनुज्ञात किए जाने चाहिएं ;

(ख) ऐसी भूमि की बाबत भू-राजस्व और संदेय प्रीमियम कितना है ।

24. धारा 10 के अधीन आदेशों के विरुद्ध विहित प्राधिकारी को अपील – (1) धारा 10 के अधीन कलक्टर के विनिश्चय से व्यथित कोई व्यक्ति विनिश्चय की तारीख से तीस दिनों या इतने अतिरिक्त समय के भीतर, जो विहित प्राधिकारी पर्याप्त कारण से अनुज्ञात करे, विहित प्राधिकारी को अपील कर सकेगा और उसका विनिश्चय अंतिम होगा ।

---

10. Enquiry by Collector in certain cases – The Collector shall examine the nature an history of all lands in respect of which an inamdar, kabiz-e-kadim, permanent tenant protected tenant or non-protected tenant, claims to be registered as an occupant under Sections 4, 5, 6, 7 and 8 as the case may be, and decide –

(a) in whose favour, and in respect of which inam lands the claims should be allowed;

(b) the land revenue and the premium payable in respect of such lands.

24. Appeals from orders under Section 10 to prescribed authority – (1) Any person aggrieved by a decision of the Collector under Section 10 may, within thirty days from the date of decision, or such further time as the prescribed authority may for sufficient cause allow, appeal to the prescribed authority and its decision shall be final.

(2) यदि ऐसा कोई प्रश्न उद्भूत होता है कि क्या कोई भवन या भूमि धारा 9 की परिधि के भीतर आती है अथवा नहीं तो वह विहित प्राधिकारी को निर्देशित किया जाएगा जिसका विनिश्चय अंतिम होगा ।

* * *

29. व्यावृत्ति - इस अधिनियम में अन्यथा उपबंधित के सिवाय, इस अधिनियम के अधीन कलक्टर या विशेष अधिकरण द्वारा पारित कोई आदेश उच्च न्यायालय के सिवाय किसी न्यायालय द्वारा रद्द या उपांतरित नहीं किया जाएगा अथवा प्रश्नगत नहीं किया जाएगा ।"

10. उपर्युक्त धारा 3 को पढ़ने से यह स्पष्ट है कि सभी इनाम भूमियां तारीख 20 जुलाई, 1955 से, जो कि वह तारीख है जब से अधिनियम प्रवर्तन में आया, आन्ध्र प्रदेश राज्य में निहित हो गई हैं । तथापि, यह सामान्य आधार है कि विवादग्रस्त इनाम भूमि वर्ष 1968 में रामचन्द्र रेड्डी की मृत्यु होने तक उसके कब्जे में बनी रही थीं जिसके आधार पर उन भूमियों के संबंध में अधिकार और विशेषाधिकार, जिनमें वे अधिकार और विशेषाधिकार भी हैं, जिनके कारण रामचन्द्र रेड्डी निहित किए जाने की तारीख को भूमि का काश्तकार अधिभोगी होने के कारण अधिनियम के अधीन अधिभोगाधिकार का दावा करने का हकदार हुआ होगा, उसके विधिक वारिसों ने, जो इस अपील में पक्षकार हैं, विरासत में प्राप्त किए थे । यह उल्लेखनीय है कि प्रत्यर्थी सं. 1 मृतक द्वारा अपने पीछे छोड़ा गया कुटुम्ब का एकमात्र पुरुष सदस्य था । उसके पिता द्वारा धारित भूमि पर उसे बेदखल किए जाने के किसी अभिवाक् या सबूत के अभाव में उसके द्वारा उस भूमि पर कब्जा रखना और व्यक्तिगत रूप से काश्त करने संबंधी

---

(2) If any question arises whether any building or land falls within the scope of Section 9 the same shall be referred to the prescribed authority whose decision shall be final.

* * * *

29. Savings – Save as otherwise provided in this Act, no order passed by the Collector or by the Special Tribunal under this Act shall be liable to be cancelled or modified except by the High Court as aforesaid or be questioned in any court of law."

किसी मान्यता को संपूर्ण कुटुम्ब की ओर से न कि उसकी व्यष्टिक हैसियत में काश्त करना माना जाना चाहिए । हम ऐसा इसलिए कहते हैं क्योंकि रामचन्द्र रेड्डी की मृत्यु के कारण, जो कि भूमि का मूल अधिभोगी था, किसी भी विधिगत सिद्धांत के आधार पर रामचन्द्र रेड्डी द्वारा अपनी व्यष्टिक हैसियत में धारित भूमि के कब्जे या काश्त के अधिकार का दावा करने के लिए उसके पुत्र (इस अपील में प्रत्यर्थी सं. 1) को अनन्यता प्रदान नहीं की जा सकती थी और जो कि उसकी मृत्यु के पश्चात् विधिसम्मत रूप से और सामान्य अनुक्रम में उसके पीछे छोड़े गए उसके विधिक वारिसों में समान हिस्सों में न्यागत होगी । मृतक के विधिक वारिस के रूप में प्रत्यर्थी सं. 1 की प्रास्थिति रामचन्द्र रेड्डी के अन्य विधिक वारिसों के मुकाबले अधिक बेहतर नहीं थी । कुटुम्ब के एकमात्र पुरुष सदस्य के रूप में प्रत्यर्थी सं. 1 को अधिभोगाधिकार प्रदान करने के परिणामस्वरूप अपीलार्थियों के अधिकारों का निर्वापन नहीं हो सकेगा जिनका मृतक द्वारा अपने पीछे छोड़ी गई संपदा में उत्तराधिकार होने का समान दावा था जो कि प्रत्यर्थी सं. 1 के दावे से किसी भी प्रकार कम नहीं था जिसमें ऐसे सभी अधिकारों का उत्तराधिकार भी शामिल है जो रामचन्द्र रेड्डी की मृत्यु की तारीख को अपूर्ण रहे हैं बल्कि जिनकी परिणति उसके इनामदार होने के आधार पर उसके पक्ष में फायदाग्राही अनुदान के रूप में हो सकती थी । इस संबंध में कोई विवाद नहीं है कि रामचन्द्र रेड्डी की मृत्यु के समय कुटुम्ब संयुक्त था । इस संबंध में भी कोई विवाद नहीं है कि वह कुटुम्ब भूमि पर आश्रित था । रामचन्द्र रेड्डी के कुटुम्ब के अन्य सदस्यों को बेदखल करने संबंधी किसी अकाट्य और विश्वसनीय साक्ष्य के अभाव में इस बात का मूल्यांकन करना कठिन है कि प्रत्यर्थी सं. 1 रामचन्द्र रेड्डी के स्वामित्वाधीन संपत्ति के संबंध में या उन अधिकारों के संबंध में जो मृतक के पास अधिभोगी के रूप में थे, मृतक की वसीयत का दावा किस प्रकार कर सकता था । अतः, निर्देश आदेश सही है जब उसमें यह कहा गया है :–

> "विरासत और उत्तराधिकार का अधिकार एक कानूनी अधिकार है । किसी ऐसी संपत्ति में कोई अधिकार, जो हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम के उपबंधों के अनुसार निहित है, सिवाय किसी अन्य कानून के ऐसे उपबंधों के अनुसार जिनका अध्यारोही प्रभाव होगा, छीना नहीं जा सकता है । ऐसा विशेष कानून एक पूर्ण संहिता होनी चाहिए । यह साधारणतया पश्चात्वर्ती कानून होगा । पुनः इसमें साधारणतया एक सर्वोपरि खंड अंतर्विष्ट होना चाहिए ।"

11. यह विधि का उचित रूप से सुस्थापित सिद्धांत है कि किसी एक सह-वारिस का कब्जा विधि की दृष्टि से सभी सह-वारिसों का कब्जा माना जाता है । यदि एक सह-वारिस को संपत्तियों का कब्जा मिल गया है तो यह उपधारित किया जाता है कि यह कब्जा संयुक्त हक के आधार पर है । कब्जाधीन कोई सह-वारिस अपने कब्जे को अपने अन्य सह-वारिसों के हक को अल्पीकृत करते हुए अपनी ओर से किसी गुप्त प्रतिकूल अभिप्राय मात्र से ऐसे अन्य सह-वारिसों के प्रतिकूल नहीं बना सकता जो कब्जाधीन नहीं हैं । अन्य सह-वारिसों की बेदखली, उनमें से किसी एक के अनन्य कब्जे और उपभोग सहित, जिसकी जानकारी अन्य सह-वारिसों को है, प्रतिकूल हक द्वारा साक्ष्यित होनी चाहिए । (देखिए **कोरिया** बनाम **अप्पूहामी**[1]) । **पी. लक्ष्मी रेड्डी** बनाम **एल. लक्ष्मी रेड्डी**[2] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय के प्रति भी निर्देश किया जा सकता है जिसमें इस न्यायालय ने विधिक स्थिति को सारगर्भित रूप से इस प्रकार संक्षिप्त किया है :–

> "किन्तु यह सुस्थापित है कि किसी अन्य सह-वारिस के मुकाबले एक सह-वारिस का प्रतिकूल कब्जा स्थापित करने के लिए यह दर्शित करना पर्याप्त नहीं है कि उनमें से किसी एक का संपत्तियों पर एकमात्र कब्जा है और वह उनके फायदों का उपभोग कर रहा है । नाकाबिज सह-वारिस की कब्जाधीन सह-वारिस द्वारा बेदखली, जो उसके कब्जे को प्रतिकूल होने का दावा करता है, अवश्य साबित किया जाना चाहिए । एक सह-वारिस का कब्जा विधि की दृष्टि से सभी सह-वारिसों का कब्जा समझा जाता है । जब यह पाया जाता है कि एक सह-वारिस का संपत्तियों पर कब्जा है तो यह उपधारणा की जाती है कि वह कब्जा संयुक्त हक के आधार पर है । कब्जाधीन कोई सह-वारिस अपने कब्जे को अपने अन्य सह-वारिसों के हक को अल्पीकृत करते हुए अपनी ओर से किसी गुप्त प्रतिकूल अभिप्राय मात्र से ऐसे अन्य सह-वारिसों के प्रतिकूल नहीं बना सकता जो कब्जाधीन नहीं हैं । विधि का यह स्थापित नियम है कि सह-वारिसों के बीच प्रतिकूल हक के स्पष्ट प्राख्यान का साक्ष्य होना चाहिए और उनमें से किसी एक का उस पर अनन्य कब्जा और उपभोग होना चाहिए जो अन्य सह-वारिसों की जानकारी में हो जिससे कि बेदखली गठित हो सके ।"

---

[1] (1922) अपील केसेज़ 230.

[2] ए. आई. आर. 1957 एस. सी. 314.

12. इस न्यायालय ने ऊपर कथित सिद्धांतों का अवलंब लेते हुए **भुवनेश्वर प्रसाद नारायण सिंह और अन्य** बनाम **सिद्धेश्वर मुखर्जी और अन्य**[1] वाले मामले में लगभग समरूप परिस्थितियों में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया :–

> "इस मामले में हमें यह विचार करना है कि क्या अपीलार्थियों ने ऐसा दावा किया है जो एक सहभागीदार बेदखली या किसी अन्य स्वतंत्र आधार का अभिवाक् करने के सिवाय प्रस्तुत नहीं कर सकता है । भले ही वे अधिनियम की धारा 2(ट) के अर्थान्तर्गत वास्तविक खास कब्जा रखते थे फिर भी यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि वादी, जो एक सहभागीदार था, अपीलार्थियों की मार्फत आन्वयिक कब्जे में था क्योंकि विधि के अधीन एक सहभागीदार का कब्जा सभी सहभागीदारों का कब्जा होता है । हमें यह अभिनिर्धारित करने का कोई कारण दिखाई नहीं देता कि पी. एल. रेड्डी **बनाम** एल. एल. रेड्डी [(1957) एस. सी. आर. 195, 202] में व्यक्त किए गए उक्त भाव का इस न्यायालय का मत हमारे सामने वाले मामले को लागू नहीं होता है । अपीलार्थी, संपत्ति पर अतिचारी होने का दावा नहीं करते हैं । उन्होंने वादी-प्रत्यर्थी के प्रतिकूल, भूमियों पर किसी हक का दावा नहीं किया है । अतः धारा 6 के समझे जाने संबंधी उपबंध (डीमिंग प्राविजन) का प्रयोग उन सभी के फायदे के लिए होना चाहिए जिन्हें विधि की दृष्टि में वास्तविक कब्जे में माना जाएगा । इससे यह बात निकलती है कि वादी ने बकाश्त भूमियों में अपना शेयर खो नहीं दिया है और उस पर उसको अधिकार है यद्यपि वह अधिकार भूधृतिधारक या स्वत्वधारी के रूप में नहीं बल्कि निश्चय ही लैंड रिफार्म्स ऐक्ट के उपबंधों के अधीन एक रैयत के रूप में है । अतः अपील खर्चे सहित खारिज की जाती है ।"

13. **कलगौंडा बबगौंडा पाटिल** बनाम **बालगौंडा कलगौंडा पाटिल और अन्य**[2] वाले मामले में इस न्यायालय ने अपीलार्थियों के पूर्वजों द्वारा कोल्हापुर राज्य के वट हुकुमों के अधीन धारित इनाम भूमियों के संबंध में कार्यवाही की । अपीलार्थी के पूर्वज सेवा के बदले वतन (इनाम) भूमि धारण किए हुए थे और चूंकि वे वतन या इनाम की हैसियत में भूमि धारण किए

---

[1] [1971] 2 उम. नि. प. 159 = (1971) 1 एस. सी. सी. 556.

[2] (1989) सप्ली. 1 एस. सी. सी. 246.

हुए थे इसलिए वह अविभाज्य थी । विचारण न्यायालय ने वतन भूमि के संबंध में विभाजन के लिए वाद डिक्री कर दिया । मुम्बई उच्च न्यायालय के समक्ष अपील में, उस न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया कि जब वतन (इनाम) अधिकारों का उत्सादन कर दिया गया था तब सभी अधिकार, जिनमें विभाजन का अधिकार भी है, उत्सादित हो गए थे । मुम्बई उच्च न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने एक अन्य मामले में यह अभिनिर्धारित करते हुए इस मत को उलट दिया कि इनाम के उत्सादन के कारण संपत्तियां कुटुम्ब के उन सदस्यों के उपभोग के लिए, जो विभाजन का दावा करने के हकदार हैं, लागू हो गई थीं । इस न्यायालय ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया :–

> "ये वतन भूमियां कुटुम्ब की आनुवंशिक संपत्ति बनी रहीं हालांकि रूढ़ि के अनुसार वतन केवल कुटुम्ब के वरिष्ठ सदस्य के नाम में था और उत्तराधिकार रूढ़ि के अनुसार ज्येष्ठाधिकार के नियम के अनुसार था । इस अधिनियम के अधीन पहली बार इन वतनों का उत्सादन किया गया था और भूमियों को रैयतवाड़ी भूमियों में संपरिवर्तित कर दिया गया था और इसलिए वे विभाज्य हो गईं थीं ।"

14. **कलगौंडा** (उपर्युक्त) और **नागेश बिस्तो देसाई** (उपर्युक्त) वाले विनिश्चयों का **शिवप्पा तम्मन्नप्पा कराबन** बनाम **पारसप्पा हनम्मप्पा कुराबन और अन्य**[1] वाले मामले में अनुसरण किया गया था । वह मामला कर्नाटक ग्राम अधिकारी उत्सादन अधिनियम, 1961 के अधीन उद्भूत होने वाला मामला था । उस मामले में, पुनः अनुदान वतनदार के रूप में ग्राम कार्यालय के पूर्ववर्ती धारक के नाम में किया गया था । इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि मात्र इस कारण कि अनुदान वतनदार के नाम में किया गया था, इसका अर्थ यह नहीं था कि संपत्तियां संयुक्त कौटुंबिक संपत्तियां नहीं रही थीं ।

15. **लोकराज और अन्य** बनाम **किशन लाल और अन्य**[2] वाले मामले में भी इस न्यायालय ने आन्ध्र प्रदेश (तेलंगाना क्षेत्र) इनाम उत्सादन अधिनियम, 1955 के अधीन इनाम के उत्सादन के संबंध में विचार किया ।

---

[1] (1995) सप्ली. 1 एस. सी. सी. 162.

[2] (1995) 3 एस. सी. सी. 291.

इनाम भूमि के विभाजन के लिए एक वाद फाइल किया गया था जिसका इस आधार पर विरोध किया गया था कि इनामदार के पूर्व-विद्यमान अधिकार, हक और हित के उत्सादन और भूमि के अधिभोगी को अधिभोगाधिकार अनुदत्त करने के कारण कोई भी व्यक्ति उस भूमि के विभाजन का दावा करने के लिए निर्हकित हो गया था । इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करते समय कि इनामदार के पूर्व-विद्यमान अधिकार, हक और हित के उत्सादन के कारण वाद संधार्य नहीं था, निम्न प्रकार मत व्यक्त किया :–

> "4. उत्सादन के परिणामस्वरूप, इनामदार या ऐसे किसी व्यक्ति का, जिसका इनाम भूमियों पर अधिभोग है, पूर्व-विद्यमान अधिकार, हक और हित निर्निहित हो गया था और वह तब तक राज्य में निहित हो गया था जब तक पुनः अनुदान नहीं कर दिया जाता है । इसके परिणामस्वरूप, इनामदार ने भूमि पर पूर्व-विद्यमान अधिकार, हक और हित खो दिया था । इसके विभाजन का अधिकार भी कानूनी प्रवर्तन द्वारा तब तक खो गया है जब तक पुनः अनुदान नहीं कर दिया जाता है । उन परिणामों से हमारा कोई संबंध नहीं है जो कि इस अपील के पुनः मंजूर करने के पश्चात् उत्पन्न होंगे । इसलिए, हमारे लिए उस प्रश्न की जांच करना आवश्यक नहीं है जो पुनः अनुदान के पश्चात् उद्भूत हो सकता है ।"

16. उपरोक्त से यह स्पष्ट होता है कि विभाजन के अधिकार के बारे में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि वह विधि के प्रवर्तन द्वारा खो गया था । इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि उस समय तक जब तक अनुदान नहीं किया गया था, ऐसे किसी अधिकार को मान्य नहीं ठहराया जा सकता था । इस न्यायालय ने विनिर्दिष्ट रूप से यह अभिनिर्धारित किया कि उसका उन परिणामों से कोई संबंध नहीं था जो अनुदान किए जाने के पश्चात् उत्पन्न होंगे । प्रस्तुत मामले में वाद अधिभोगाधिकारों के अनुदत्त किए जाने के पश्चात् फाइल किया गया था । इस मामले में प्रश्न यह है कि क्या ऐसे अधिकारों का अनुदत्त किया जाना संयुक्त कुटुम्ब के किसी एक सदस्य के फायदे के लिए या रामचन्द्र रेड्डी द्वारा अपने पीछे छोड़े गए सभी वारिसों के फायदे के लिए है । उस प्रश्न के संबंध में हमारा उत्तर अपीलार्थियों के पक्ष में है । हमारी राय में, प्रत्यर्थी सं. 1 के पक्ष में

ऐसे अधिभोगाधिकारों का अनुदत्त किया जाना रामचन्द्र रेड्डी द्वारा अपने पीछे छोड़े गए सभी विधिक वारिसों के फायदे के लिए था । अतः, **लोकराज** (उपर्युक्त) वाले मामले का अवलंब लेने से प्रत्यर्थियों को कोई सहायता नहीं मिलती है । हमारा यह भी मत है कि **लोकराज** (उपर्युक्त) वाला विनिश्चय **भुवनेश्वर प्रसाद नारायण सिंह** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के पूर्ववर्ती विनिश्चय को सही रूप से लागू नहीं होता है । उन माननीय न्यायाधीशों के प्रति अत्यंत सम्मान व्यक्त करते हुए, जिन्होंने **लोकराज** (उपर्युक्त) वाला विनिश्चय किया था, उसमें विधि सही रूप से अधिकथित नहीं की गई थी, यदि उसका अभिप्राय यह था कि बेदखली के अभिवाक् के अभाव में भी कोई सह-वारिस उसके नाम में अधिभोगाधिकारों के अनुदत्त किए जाने के आधार मात्र पर अन्य सह-वारिसों को संपत्ति के इस प्रकार अनुदत्त विभाजन से अपवर्जित कर सकता था ।

17. परिणामस्वरूप, हम यह अपील मंजूर करते हैं और निचले न्यायालयों द्वारा पारित निर्णय और आदेश को उस सीमा तक अपास्त करते हैं जहां तक उसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि आन्ध्र प्रदेश (तेलंगाना क्षेत्र) इनाम उत्सादन अधिनियम, 1955 के अधीन इनाम के उत्सादन पर प्रत्यर्थी सं. 1 के पक्ष में अनुदत्त इनाम भूमि रामचन्द्र रेड्डी द्वारा अपने पीछे छोड़े गए वारिसों के बीच विभाज्य नहीं है । परिणामतः, अपीलार्थियों द्वारा फाइल किया गया वाद उसी अनुपात में इनाम भूमि सहित जैसा कि संपत्ति की अन्य मदों के संबंध में आक्षेपित निर्णय द्वारा उच्च न्यायालय ने अवधारित किया है, डिक्री हो जाता है । खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील मंजूर की गई ।

ग्रो.

ओम प्रकाश

बनाम

हरियाणा राज्य

14 अक्तूबर, 2014

न्यायमूर्ति सुधांशु ज्योति मुखोपाध्याय और न्यायमूर्ति प्रफुल्ल चंद्र पंत

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 376 – बलात्संग – चिकित्सीय साक्ष्य के अनुसार योनिच्छद का विदीर्ण पाया जाना – स्कूल प्रमाण-पत्र के आधार पर अभियोक्त्री की आयु 15 वर्ष – अभियोक्त्री के साथ बलात्संग किए जाने और उसकी पुष्टि चिकित्सीय साक्ष्य से होने पर अभियुक्तों की दोषसिद्धि मान्य ठहराई गई ।

इस मामले में तीन अभियुक्तों अर्थात् ओम प्रकाश, करतार सिंह और छोटी का भारतीय दंड संहिता की धारा 376/109 के अधीन विचारण किया गया और अभियुक्त ओम प्रकाश तथा करतार सिंह को दंड संहिता की धारा 376 के अधीन बलात्संग का अपराध कारित करने के लिए विचारण न्यायालय द्वारा दोषसिद्ध किया गया । अभियुक्त छोटी को दंड संहिता की धारा 109 के अधीन बलात्संग के अपराध का दुष्प्रेरण करने के लिए दोषसिद्ध किया गया । तीनों अभियुक्तों ने विचारण न्यायालय के इस आदेश से व्यथित होकर पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्च न्यायालय ने तीनों अभियुक्तों की दोषसिद्धि कायम रखते हुए अपील खारिज कर दी । तीनों अभियुक्तों ने उच्च न्यायालय के इस आदेश से व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय के समक्ष अलग-अलग अपीलें फाइल की । उच्चतम न्यायालय ने विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय के निर्णयों को उचित ठहराते हुए अभियुक्त-अपीलार्थियों की अपीलें खारिज कर दीं । अपीलें खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – निःसंदेह प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज किए जाने में 20 दिन का विलंब है किंतु इस संबंध में अभिलेख पर पर्याप्त स्पष्टीकरण उपलब्ध है । यह साबित करने के लिए अभिलेख पर पर्याप्त साक्ष्य है कि घटना के दिन आहत की आयु 16 वर्ष से कम थी । न केवल विकिरण वैज्ञानिक द्वारा तैयार की गई रिपोर्ट से यह प्रकट होता है कि आहत की आयु 14 से 16 वर्ष के बीच थी, अपितु सरकारी माध्यमिक स्कूल, जगन के प्राध्यापक द्वारा

प्रस्तुत किए गए स्कूल प्रमाणपत्र से यह तथ्य साबित होता है कि आहत की जन्मतिथि 10 जनवरी, 1980 है जिसका यह अर्थ हुआ कि जून, 1995 में उसकी आयु केवल 15 वर्ष थी । इस प्रकार आहत की सहमति भी वर्तमान मामले में महत्वपूर्ण नहीं है । (पैरा 7 और 8)

न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि वर्तमान मामले में, अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किया गया साक्ष्य सकारात्मक है कि अभियुक्त छोटी ने आहत से उसके (छोटी के) घर से, जहां पर ओम प्रकाश और करतार सिंह ने कमरे का दरवाजा बंद करके आहत के साथ बलात्संग किया था, लस्सी लाने को कहा था और उसने ऐसा कहकर अपराध कारित किए जाने में सहायता की थी । अभिलेख से यह प्रतीत होता है कि लगभग एक घंटे तक आहत को उस घर से बाहर नहीं जाने दिया गया था जहां पर उसके साथ बलात्संग किया गया था । जहां पर घटना घटित होना बताया गया है वह स्थान अभियुक्त छोटी और उसके पति का मकान ही है । इसलिए निचले दोनों न्यायालयों ने यह ठीक ही निष्कर्ष निकाला है कि यह नहीं कहा जा सकता है कि अभियुक्त छोटी ने अभियोजन पक्ष द्वारा बताई गई रीति में अपराध का दुष्प्रेरण नहीं किया है । उच्चतम न्यायालय निचले न्यायालयों द्वारा व्यक्त किए गए मत से सहमत है । अपराध में साशय सहायता करने का उल्लेख दंड संहिता की धारा 107 के तृतीय खंड में किया गया है । तथापि, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए और अभिलेख का परिशीलन करने के पश्चात् इस न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि विचारण न्यायालय द्वारा अधिनिर्णीत दंडादेश जिसकी पुष्टि उच्च न्यायालय द्वारा की गई है, न्यायसंगत और उचित है । (पैरा 15 और 16)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2007]	(2007) 15 एस. सी. सी. 670 : **कुलवंत सिंह** उर्फ **कुलबंश सिंह** बनाम **बिहार राज्य** ;	10,11
[2006]	(2006) 6 एस. सी. सी. 263 : **प्रिया पटेल** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य और एक अन्य** ।	10,11

दांडिक मूल अधिकारिता : 2010 की दांडिक अपील सं. 807. (इसके साथ 2009 की दांडिक अपील सं. 1309 और 1310 की भी सुनवाई की गई ।)

1997 की दांडिक अपील सं. 35 में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय, चंडीगढ़ की खंड न्यायपीठ के तारीख 30 जुलाई, 2008 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री ऋषि मल्होत्रा और प्रेम मल्होत्रा

प्रत्यर्थी की ओर से सुश्री नुपुर चौधरी, विवेकता सिंह और श्री कमल मोहन गुप्ता

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति प्रफुल्ल चंद्र पंत ने दिया ।

न्या. पंत – ये अपीलें पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए तारीख 30 जुलाई, 2008 के उस निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई हैं जिसके अनुसार भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में "दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 376(2)(छ) के अधीन अभियुक्त-अपीलार्थी ओम प्रकाश और करतार सिंह और दंड संहिता की धारा 109 के अधीन अभियुक्त-अपीलार्थी छोटी के विरुद्ध की गई दोषसिद्धि और दिए गए दंडादेश की पुष्टि की गई है ।

2. संक्षेप में पक्षकथन इस प्रकार है कि घटना के दिन अभियोक्त्री, आयु 15 वर्ष, ग्राम जगन में स्थित अपने मकान में अकेली थी । अभियोक्त्री की दादी का देहांत हो जाने के कारण उसकी माता ग्राम हसंगा गई हुई थी और परिवार के अन्य सदस्य भी घर पर नहीं थे । अभियुक्त-अपीलार्थी छोटी वहां आई और उसने (छोटी के) अभियोक्त्री से उसके घर से लस्सी लाने को कहा । इस पर अभियोक्त्री अभियुक्त छोटी के घर गई किंतु जैसे ही अभियोक्त्री ने मकान में प्रवेश किया अभियुक्त करतार सिंह (छोटी का पति) और एक अन्य अभियुक्त ओम प्रकाश ने जो पहले से वहां बैठे हुए थे, अंदर से दरवाजा बंद कर लिया और उन्होंने अभियोक्त्री के साथ बलात्संग किया । अभियुक्त-अपीलार्थियों ने अभियोक्त्री को लगभग एक घंटे के पश्चात् छोड़ा । अभियोक्त्री को यह धमकी भी दी गई कि यदि उसने किसी भी व्यक्ति को घटना के बारे में बताया तो उसे जान से मार दिया जाएगा । अभियोक्त्री अपने घर वापस आई और उसने तारीख 12 जून, 1995 को उसकी माता के उसकी नानी के घर से वापस आने तक अर्थात् 20 दिनों तक इस घटना को प्रकट नहीं किया । अभियोक्त्री ने अपनी माता को घटना के बारे में बताया जिसके पश्चात् उसका पिता अभियोक्त्री को पुलिस थाना अगरोहा रिपोर्ट दर्ज कराने ले गया । तारीख 13 जून, 1995 को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत की गई और पुलिस

उप-निरीक्षक जयपाल सिंह (अभि. सा. 8) द्वारा अन्वेषण किया गया जिसने घटनास्थल का निरीक्षण किया और आहत (अभियोक्त्री) से प्रश्न पूछने के पश्चात् उसे इलाका मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत किया जहां पर दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 164 के अधीन उसका कथन अभिलिखित किया गया । इसके पश्चात् अभियोक्त्री को अस्पताल ले जाया गया जहां पर डा. सुनीता बिश्नोई (अभि. सा. 9) द्वारा उसकी चिकित्सा परीक्षा की गई जिन्होंने अपनी रिपोर्ट (प्रदर्श-पी.सी.) में यह व्यक्त किया है कि अभियोक्त्री के अन्य लैंगिक लक्षण पूर्णतया विकसित पाए गए हैं । चिकित्सा रिपोर्ट में यह भी उल्लेख किया गया है कि आहत ने चिकित्सा अधिकारी को यह बताया था कि लगभग 20 दिन पहले अभिकथित रूप से उसके साथ बलात्संग किया गया था । अभियोक्त्री के शरीर पर बाह्य क्षति का कोई भी चिह्न नहीं पाया गया है । अभियोक्त्री के योनिमुख और जंघाओं पर क्षति का कोई भी चिह्न नहीं है । योनिच्छद विदीर्ण किंतु घाव भरा हुआ है और उसमें सुगमतापूर्वक एक अंगुली जा सकती है । आहत का मासिक धर्म चल रहा था । उसे उसकी आयु सुनिश्चित किए जाने के लिए विकिरण विज्ञानी को भेज दिया गया । डा. पवन जैन (अभि. सा. 2) ने विकिरण परीक्षण करने के पश्चात् अपनी रिपोर्ट (प्रदर्श-पी.ई.) में यह राय दी है कि अभियोक्त्री की आयु 14 से 16 वर्ष के बीच है । उसकी बहिष्प्रकोष्ठिका (कलाई की अस्थि) का ऊपरी छोर संगलित पाया गया है किंतु निचला छोर अभी संगलित नहीं हुआ है । बहिर्जंघिका (पिंडली की अस्थि) का ऊपरी छोर भी संगलित नहीं पाया गया है ।

3. पुलिस ने अन्वेषण के पश्चात् अभियुक्त ओम प्रकाश, करतार सिंह और छोटी के विरुद्ध आरोप पत्र प्रस्तुत किया और दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 376, 342 और 506 के अधीन विचारण किए जाने के लिए मजिस्ट्रेट के समक्ष आरोप पत्र प्रस्तुत किया ।

4. विचारण न्यायालय ने मामला सुपुर्द किए जाने पर तारीख 26 सितंबर, 1995 को पक्षकारों को सुनने के पश्चात् अभियुक्त ओम प्रकाश और करतार सिंह के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 376 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए आरोप विरचित किया । अभियुक्त करतार सिंह की पत्नी अर्थात् अभियुक्त छोटी के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 109 के अधीन दंडनीय बलात्संग का अपराध कारित किए जाने में सहायता करने के अपराध के लिए आरोप विरचित किया गया है । तीनों अभियुक्तों ने दोषी न होने का अभिवाक् किया और विचारण किए जाने की मांग की । इस पर

अभियोजन पक्ष ने 11 साक्षियों अर्थात् डा. दले सिंह (अभि. सा. 1), डा. पवन जैन (अभि. सा. 2), इंद्रजीत (अभि. सा. 3), हेड कांस्टेबल रामफल (अभि. सा. 4), अभियोक्त्री (अभि. सा. 5), अभियोक्त्री की माता चंदो (अभि. सा. 6), सहायक उप-निरीक्षण कृष्ण लाल (अभि. सा. 7), उप-निरीक्षक जयपाल सिंह (अभि. सा. 8), डा. सुनीता बिश्नोई (अभि. सा. 9), बलदेव सिंह (अभि. सा. 10) और गोपाल कृष्ण (अभि. सा. 11) की परीक्षा कराई । अभियुक्त के समक्ष मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य रखा गया जिसका उत्तर देते हुए उन्होंने यह अभिकथन किया है कि यह साक्ष्य गलत और मिथ्या है और उन्हें शत्रुता के कारण फंसाया गया है । अभियुक्त करतार सिंह ने अपनी प्रतिरक्षा में यह विशिष्ट अभिवाक् किया है कि उसे मिथ्या फंसाया गया है और इस प्रकार फंसाए जाने का यह कारण बताया है कि जब अभियोक्त्री किसी प्राइवेट नर्सिंग होम में गर्भपात के लिए गई थी तो उसे यह संदेह हुआ कि करतार सिंह ने ही उसके गर्भपात की खबर को ग्राम में फैलाया है । अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य की परीक्षा करने और पक्षकारों को सुनने के पश्चात् विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि अभियोजन पक्ष ने अभियुक्त ओम प्रकाश और करतार सिंह के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 376(2)(छ) और अभियुक्त छोटी के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 109 के अधीन दंडनीय अपराध के आरोप को सफलतापूर्वक साबित किया है । दंडादेश के प्रश्न पर विचार करने के पश्चात्, विचारण न्यायालय ने अभियुक्त ओम प्रकाश और करतार सिंह दोनों को 10-10 वर्ष की अवधि का कठोर कारावास भोगने का दंडादेश दिया था और प्रत्येक को 10,000/- रुपए जुर्माने का संदाय करने का निदेश दिया । अभियुक्त छोटी को तीन वर्ष का कठोर कारावास भोगने और 10,000/- रुपए जुर्माने का संदाय करने का निदेश दिया था ।

5. विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश, हिसार द्वारा पारित किए गए तारीख 16 दिसंबर, 1996 के उक्त निर्णय और आदेश से व्यथित होकर दोषसिद्ध व्यक्तियों ने पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की जो तारीख 30 जुलाई, 2008 के आक्षेपित निर्णय द्वारा खारिज कर दी गई और इसी आक्षेपित निर्णय को हमारे समक्ष चुनौती दी गई है ।

6. हमने विचारण न्यायालय के अभिलेख का परिशीलन किया है और पक्षकारों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेलों की दलीलों पर विचार किया है ।

7. निःसंदेह प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज किए जाने में 20 दिन का विलंब है

किंतु इस संबंध में अभिलेख पर पर्याप्त स्पष्टीकरण उपलब्ध है । आहत (अभि. सा. 5) ने, जो घटना के दिन अप्राप्तवय थी, यह कथन किया है कि वह इस भयावह घटना के बारे में तभी बता सकी जब उसकी माता उसकी नानी के घर से 20 दिन के पश्चात् घर वापस आई । आहत (अभि. सा. 5) ने अपनी माता को बताया कि अभियुक्त-अपीलार्थी छोटी द्वारा उसे किस प्रकार बहकाया गया था जिसने अभियोक्त्री को उसके (छोटी के) घर से लस्सी लाने को कहा था और इस तथ्य के बारे में भी बताया कि उसके साथ अभियुक्त ओम प्रकाश और करतार सिंह द्वारा बलात्संग किया गया था । अभियोक्त्री ने यह बताया कि जब वह छोटी के घर गई तब अभियुक्त ओम प्रकाश और करतार सिंह ने उसके साथ बलात्संग किया और उन्होंने उसे वहां से छोड़ने से पहले गंभीर परिणामों की धमकी दी । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराए जाने में हुए इस विलंब के स्पष्टीकरण की पुष्टि आहत की माता चंदो (अभि. सा. 6) के कथन से होती है । दोनों साक्षियों की विस्तार से प्रतिपरीक्षा की गई है किंतु उनके परिसाक्ष्य पर युक्तियुक्त संदेह करने के लिए कोई सामग्री सामने नहीं आई है ।

8. यह साबित करने के लिए अभिलेख पर पर्याप्त साक्ष्य है कि घटना के दिन आहत की आयु 16 वर्ष से कम थी । न केवल विकिरण चिकित्सा-विज्ञानी द्वारा तैयार की गई रिपोर्ट (प्रदर्श-पी.ई.) से यह प्रकट होता है कि आहत की आयु 14 से 16 वर्ष के बीच थी, अपितु सरकारी माध्यमिक स्कूल, जगन के प्राध्यापक गोपाल कृष्ण (अभि. सा. 11) द्वारा प्रस्तुत किए गए स्कूल प्रमाणपत्र (प्रदर्श-पी.एस.) से यह तथ्य साबित होता है कि आहत की जन्मतिथि 10 जनवरी, 1980 है जिसका यह अर्थ हुआ कि जून, 1995 में उसकी आयु केवल 15 वर्ष थी । इस प्रकार आहत की सहमति भी वर्तमान मामले में महत्वपूर्ण नहीं है ।

9. अपीलार्थियों की ओर से, यद्यपि यह अभिवाक् किया गया है कि अपीलार्थी शत्रुता के कारण मिथ्या फंसाए गए हैं किंतु अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य की संवीक्षा करने पर हम निचले न्यायालयों से सहमत हैं कि आहत द्वारा दिया गया साक्ष्य स्वाभाविक और विश्वसनीय है और इससे यह प्रतीत नहीं होता है कि आहत ने अपीलार्थियों को शत्रुता के कारण मिथ्या फंसाया है ।

10. अपीलार्थी छोटी की ओर से दृढ़तापूर्व यह दलील दी गई है कि उसे महिला होने के कारण दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 376 के अधीन दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता है और न ही धारा 109 के

अधीन दोषसिद्ध किया जा सकता है । इस संबंध में हमारा ध्यान **कुलवंत सिंह** उर्फ **कुलबंश सिंह** बनाम **बिहार राज्य**[1] वाले मामले की ओर दिलाया गया है । इस निर्णय का पैरा 12 निम्नलिखित प्रकार है :–

> "जब कोई व्यक्ति अपराध कारित किए जाने के ठीक समय पर अपराध में सहायता करता है और अपराधी को दुष्प्रेरित करता है तब वह द्वितीय श्रेणी का अपराध करने वाला समझा जाएगा और धारा 109 लागू होगी । किंतु अपराध रोकने में मात्र असफल होना स्वयं में उस अपराध का दुष्प्रेरण नहीं कहलाया जा सकता है । धारा 109 की परिभाषा पर सूक्ष्मता से विचार करते हुए उकसाने का संबंध अपराधी के उस कार्य से होता है जो वह उकसाने के परिणामस्वरूप करता है न कि उस कार्य से जो उकसाए गए अपराधी को स्वाभाविक रूप से करना ही होता है । जब यह शर्त पूरी हो जाएगी तब ही उस व्यक्ति को उकसाकर किए गए दुष्प्रेरण का दोषी कहा जा सकता है । धारा 109 वहां भी लागू होगी जब दुष्प्रेरक अपराध कारित किए जाने के समय पर मौजूद नहीं है परंतु ऐसा तब ही होगा जब उसने अपराध कारित किए जाने को उकसाया हो या वह व्यक्ति उस अपराध को कारित करने के लिए रचे गए षड्यंत्र में एक या अधिक व्यक्ति के साथ सम्मिलित हुआ हो और इस षड्यंत्र के अनुसरण में कोई कृत्य या अवैध लोप किया गया हो या किसी कृत्य या अवैध लोप द्वारा किसी अपराध के कारित किए जाने को साशय उत्प्रेरित किया हो । अपराध में सीधे ही अंतर्वलित होने के अभाव में दुष्प्रेरण के लिए की गई दोषसिद्धि कायम रखने जाने योग्य नहीं होती । [**जोसेफ कुरियन** बनाम **केरल राज्य** (1994) 6 एस. सी. सी. 535]"

प्रिया पटेल बनाम **मध्य प्रदेश राज्य और एक अन्य**[2] वाले मामले का भी अवलंब लेते हुए यह दलील दी गई है कि अभियुक्त-अपीलार्थी छोटी को दंड संहिता की धारा 376 के साथ पठित धारा 109 के अधीन गलत दोषसिद्ध किया है ।

11. **कुलवंत सिंह** (उपरोक्त) और **प्रिया पटेल** (उपरोक्त) वाले मामलों का अवलंब लेते हुए अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल श्री ऋषि मल्होत्रा ने यह दलील दी है कि मात्र इस कारण से किसी व्यक्ति को

---

[1] (2007) 15 एस. सी. सी. 670.

[2] (2006) 6 एस. सी. सी. 263.

दुष्प्रेरण के अपराध के लिए दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता है कि वह आहत की रक्षा नहीं कर सका था ।

12. तथापि, अभियुक्त छोटी को न तो दंड संहिता की धारा 376 के अधीन और न ही दंड संहिता की धारा 34 की सहायता से दुष्प्रेरण के अपराध के लिए दोषी पाया गया है । बल्कि उसे केवल दंड संहिता की धारा 109 के अधीन दुष्प्रेरण के लिए दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया गया है क्योंकि उसने दो व्यक्तियों द्वारा किए जा रहे बलात्संग में सहायता की थी ।

13. दंड संहिता की धारा 109 के अधीन यह उपबंध किया गया है कि जो कोई किसी अपराध का दुष्प्रेरण करता है, यदि दुष्प्रेरित कार्य दुष्प्रेरण के परिणामस्वरूप किया जाता है, और ऐसे दुष्प्रेरण के दंड के लिए कोई अभिव्यक्त उपबंध नहीं किया गया है, तो वह उस दंड से दंडित किया जाएगा, जो उस अपराध के लिए उपबंधित है ।

14. दंड संहिता की धारा 107 के अधीन किसी कार्य के दुष्प्रेरण को इस प्रकार परिभाषित किया गया है :–

> 107. किसी बात का दुष्प्रेरण – वह व्यक्ति किसी बात के किए जाने का दुष्प्रेरण करता है, जो –
>
> पहला – उस बात को करने के लिए किसी व्यक्ति को उकसाता है ; अथवा
>
> दूसरा – उस बात को करने के लिए किसी षड्यंत्र में एक या अधिक अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों के साथ सम्मिलित होता है, यदि उस पड्यंत्र के अनुसरण में, उस बात को करने के उद्देश्य से कोई कार्य या अवैध लोप घटित हो जाए ; अथवा
>
> तीसरा – उस बात के लिए किए जाने में किसी कार्य या अवैध लोप द्वारा साशय सहायता करता है ।
>
> **स्पष्टीकरण** – जो कोई व्यक्ति जानबूझकर दुर्व्यपदेशन द्वारा, या तात्विक तथ्य, जिसे प्रकट करने के लिए वह आबद्ध है, जानबूझकर छिपाने द्वारा, स्वेच्छया किसी बात का किया जाना कारित या उपाप्त करता है अथवा कारित या उपाप्त करने का प्रयत्न करता है, वह उस बात का किया जाना उकसाता है, यह कहा जाता है ।

15. विधि के उपर्युक्त उपबंधों के आधार पर, हमने सावधानीपूर्वक अभिलेख का परिशीलन किया है और ऊपर निर्दिष्ट मामलों पर विचार किया है । हमारा यह निष्कर्ष है कि वर्तमान मामले में, अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किया गया साक्ष्य सकारात्मक है कि अभियुक्त छोटी ने आहत से उसके (छोटी के) घर से, जहां पर ओम प्रकाश और करतार सिंह ने कमरे का दरवाजा बंद करके आहत के साथ बलात्संग किया था, लस्सी लाने को कहा था और उसने ऐसा कहकर अपराध कारित किए जाने में सहायता की थी । अभिलेख से यह प्रतीत होता है कि लगभग एक घंटे तक आहत को उस घर से बाहर नहीं जाने दिया गया था जहां पर उसके साथ बलात्संग किया गया था । जहां पर घटना घटित होना बताया गया है वह स्थान अभियुक्त छोटी और उसके पति का मकान ही है । इसलिए निचले दोनों न्यायालयों ने यह ठीक ही निष्कर्ष निकाला है कि यह नहीं कहा जा सकता है कि अभियुक्त छोटी ने अभियोजन पक्ष द्वारा बताई गई रीति में अपराध का दुष्प्रेरण नहीं किया है । हम निचले न्यायालयों द्वारा व्यक्त किए गए मत से सहमत हैं । अपराध में साशय सहायता करने का उल्लेख दंड संहिता की धारा 107 के तृतीय खंड में किया गया है ।

16. अंतिमतः, अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा यह दलील दी गई है कि अभियुक्त छोटी के विरुद्ध अधिनिर्णीत दंडादेश की अवधि को कम करके उसके द्वारा पहले से भोगे गए कारावास की अवधि जितना कर दिया जाए । तथापि, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए और अभिलेख का परिशीलन करने के पश्चात् हमारा यह निष्कर्ष है कि विचारण न्यायालय द्वारा अधिनिर्णीत दंडादेश जिसकी पुष्टि उच्च न्यायालय द्वारा की गई है, न्यायसंगत और उचित है ।

17. अतः, हमें इन अपीलों में कोई सार दिखाई नहीं देता है और ये खारिज की जानी चाहिए । तदनुसार तीनों अपीलें खारिज की जाती हैं । अभियुक्त छोटी, करतार सिंह और ओम प्रकाश को क्रमशः तारीख 18 मई, 2009, 20 जुलाई, 2009 और 16 अप्रैल, 2010 के इस न्यायालय के आदेश द्वारा जमानत मंजूर की गई थी । अभियुक्त-अपीलार्थियों ओम प्रकाश, करतार सिंह और छोटी की अपीलों की खारिजी के परिणामस्वरूप, उन्हें अपने शेष दंडादेश को भोगने के लिए तत्काल अभिरक्षा में लिया जाएगा ।

अपीलें खारिज की गईं ।

अस.

ओ. एम. चेरियन उर्फ थंकाचन

बनाम

केरल राज्य और अन्य

11 नवम्बर, 2014

न्यायमूर्ति टी. एस. ठाकुर, न्यायमूर्ति आदर्श कुमार गोयल और न्यायमूर्ति आर. भानुमति

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 31 – एक ही विचारण में कई अपराधों के लिए दोषसिद्ध होने के मामलों में दंडादेश – विचारण न्यायालय द्वारा अभियुक्त पर दो अपराधों के लिए अधिरोपित दंडादेशों को क्रमवर्ती चलने का आदेश किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा अभिपुष्टि किया जाना – एक विचारण में दो या अधिक अपराधों के लिए दिए गए दंडादेश साथ-साथ चलेंगे या क्रमवर्ती, ऐसा आदेश करने का पूर्ण विवेकाधिकार अपराधों की प्रकृति और विद्यमान गुरुतरकारी और न्यूनकारी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए न्यायालय को दिया गया है और अपील न्यायालय सामान्यतः तब तक इसमें हस्तक्षेप नहीं करेंगे जब तक कि ऐसे विवेकाधिकार का प्रयोग करने से इनकार करना मनमाना या अयुक्तियुक्त होना दर्शित न किया जाए ।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 31 – एक ही विचारण में कई अपराधों के लिए दोषसिद्ध होने के मामलों में दंडादेश – विचारण न्यायालय द्वारा अभियुक्त पर भारतीय दंड संहिता की धारा 498क और 306 के अधीन अधिरोपित दंडादेशों को क्रमवर्ती चलने का निदेश किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा अभिपुष्टि किया जाना – अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा नातेदारों की मध्यस्थता से मृतका-पत्नी के साथ विवाद को सुलझाने का प्रयास किए जाने और उसके भारत के बाहर नौकरी करने संबंधी मामले के समग्र तथ्यों और परिस्थितियों को दृष्टिगत करते हुए उस पर अधिरोपित दंडादेशों को साथ-साथ चलने का आदेश किया जाना न्यायोचित होगा ।

अपीलार्थी-अभियुक्त का विवाह लिल्लीकुट्टी (मृतका) के साथ हुआ था और वे अन्य अभियुक्तों, जो अपीलार्थी के पिता, माता और भाई हैं, के साथ रह रहे थे । अभिकथित रूप से ससुराल में मृतका के साथ अपीलार्थी

और अन्य अभियुक्त दुर्व्यवहार करते थे और यातना देते थे, जिसके कारण मजबूर होकर उसे आत्महत्या करके अपने जीवन का अंत करने का कठोर कदम उठाना पड़ा । अभियुक्तों को भारतीय दंड संहिता की धारा 498क और धारा 306 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए आरोपित किया गया । विचारण न्यायालय ने साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात् अपीलार्थी/प्रथम अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता की धारा 498क के अधीन दोषसिद्ध किया और उसे जुर्माने सहित दो वर्ष का कठोर कारावास भोगने का दंडादेश दिया । विचारण न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता की धारा 306 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए भी उसे जुर्माने सहित सात वर्ष का कठोर कारावास भोगने का दंडादेश दिया । अपीलार्थी के मूल दंडादेशों को क्रमवर्ती रूप से चलने का आदेश किया गया । अन्य अभियुक्तों को भी दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया गया । उच्च न्यायालय ने सभी अभियुक्तों पर अधिरोपित दोषसिद्धि और कारावास के दंडादेशों की पुष्टि की । अपीलार्थी/ प्रथम अभियुक्त ने व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की । इस न्यायालय ने केवल इस सीमित प्रश्न पर नोटिस जारी किए कि क्या दंडादेशों को क्रमवर्ती चलने के बजाय साथ-साथ चलने का आदेश किया जा सकता है या नहीं । खंड न्यायपीठ ने एक पूर्ववर्ती मामले में किए गए विनिश्चय को ध्यान में रखते हुए इस मामले का विनिश्चय बृहत्तर न्यायपीठ द्वारा करने के लिए निर्दिष्ट किया । उच्चतम न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा तद्नुसार निर्देश का उत्तर देते हुए और अपील भागतः मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 31(1) में न्यायालय द्वारा उस क्रम को, जिसमें एक विशिष्ट दंडादेश दूसरे दंडादेश के पर्यवसान के पश्चात् चलेगा, विनिर्दिष्ट करने का निदेश देने के लिए भी आदेश दिया गया है । कठिनाई तब पैदा होती है जब न्यायालय आजीवन कारावास का दंडादेश अधिरोपित करते हैं । ऐसे मामलों में यदि न्यायालय यह निदेश नहीं देता है कि दंडादेश साथ-साथ चलेंगे, तब दंडादेश दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31(1) के प्रवर्तन द्वारा क्रमवर्ती चलेंगे । यह प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता कि दोषसिद्ध व्यक्ति पहले आजीवन कारावास का दंडादेश भोगे और उसके पश्चात् नियत अवधि के कारावास के दंडादेश भोगे और ऐसा कोई निदेश करना अव्यवहारिक होगा । चूंकि आजीवन कारावास के दंडादेश से अभिप्राय दोषसिद्ध व्यक्ति के सामान्य जीवन का अंत होने तक कारागार में रहना है, इसलिए नियत अवधि के कारावास का दंडादेश आवश्यक रूप से आजीवन कारावास के दंडादेश के साथ-साथ चलना चाहिए । ऐसी दशा में,

यह उचित होगा यदि सेशन न्यायाधीश दंडादेशों को साथ-साथ चलने का निदेश जारी करने के लिए अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करें । इसी प्रकार, यदि दोषसिद्ध व्यक्ति पर दो आजीवन कारावास अधिरोपित किए जाते हैं, तो न्यायालय को आवश्यक रूप से उन दंडादेशों को साथ-साथ चलने का निदेश करना चाहिए । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31(2) के आंरभिक शब्दों "दंडादेशों के क्रमवर्ती होने की दशा में" से यह स्पष्ट होता है कि यह उपधारा ऐसे मामलों के प्रति निर्देश करती है जिनमें "दंडादेशों के क्रमवर्ती होने" का आदेश किया जाता है । इस उपबंध में यह उपबंधित है कि यदि कई अपराधों के लिए संकलित दंड उस दंड से अधिक पाया जाता है जो वह न्यायालय एक अपराध के लिए दोषसिद्धि पर देने के लिए सक्षम है, न्यायालय के लिए यह आवश्यक नहीं होगा कि अपराधी को उच्चतर न्यायालय के समक्ष विचारण के लिए भेजे । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31 की उपधारा (2) के साथ पंरतुक (क) दंडादेशों के सकल योग को सीमित करने के लिए जोड़ा गया है अर्थात् अभियुक्त के विरुद्ध पारित किए गए क्रमवर्ती दंडादेशों का सकल योग किसी भी दशा में चौदह वर्ष से अधिक नहीं होगा । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31(2) के परंतुक के खंड (क) में अंतर्विष्ट "चौदह वर्ष का नियम" आजीवन कारावास के संबंध में लागू नहीं हो सकेगा, चूंकि आजीवन कारावास से अभिप्राय है कि दोषसिद्ध व्यक्ति अपने सामान्य जीवन के अंत तक कारागार में रहेगा । (पैरा 13 और 14)

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31 दंडादेश की उस मात्रा के संबंध में है जो वैध रूप से तब पारित किया जा सकता है जब (क) एक विचारण हो, और (ख) अभियुक्त को दो या अधिक अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया जाता है । धारा 31 की परिधि व्यापक है और इसके अंतर्गत न केवल दो या अधिक अपराधों को गठित करने वाला एक संव्यवहार आता है अपितु दो या अधिक संव्यवहारों से उद्भूत अपराध भी आते हैं । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31 के अधीन दो या अधिक अपराधों के लिए दोषसिद्धि की दशा में दंडादेशों के साथ-साथ चलने का आदेश करने का पूर्ण विवेकाधिकार न्यायालय को दिया गया है । न्यायालयों द्वारा ऐसे विवेकाधिकार के प्रयोग के मामले में कोई कठोर दृष्टिकोण अधिकथित करना कठिन है । कुल मिलाकर, विचारण न्यायालयों और अपील न्यायालयों ने अभियुक्त को दिए जाने वाले फायदे का समर्थन करते हुए दंडादेशों के साथ-साथ चलने के निदेश जारी करने के लिए अपने विवेकाधिकार का अवलंब लिया है और इसका प्रयोग किया है । किसी प्रस्तुत मामले में दंडोदशों के साथ-साथ

चलने के निदेश जारी किए जाएं या नहीं, यह कारित किए गए अपराध या अपराधों की प्रकृति तथा मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा । विवेकाधिकार का प्रयोग न्यायिक परिपाटी के अनुसार किया जाना चाहिए न कि यंत्रवत । तद्नुसार, यह न्यायपीठ यह अभिनिर्धारित करते हुए निर्देश का उत्तर देती है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31 में एक विचारण में दो या अधिक अपराधों के लिए दिए गए दंडादेशों का साथ-साथ चलने का आदेश करने का पूर्ण विवेकाधिकार अपराधों की प्रकृति और विद्यमान गुरुतरकारी और न्यूनकारी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए न्यायालय को दिया गया है । यह अभिनिर्धारित करने का कोई कारण नहीं है कि सामान्य नियम यह है कि दंडादेशों के क्रमवर्ती चलने का आदेश किया जाए और अपवाद यह है कि दंडादेशों का साथ-साथ चलने का आदेश किया जाए । निस्संदेह, यदि न्यायालय दंडादेशों को साथ-साथ चलने का आदेश नहीं करता है, तो दंडादेश एक के बाद एक ऐसे क्रम में चलेंगे, जैसा कि न्यायालय निदेश करे । (पैरा 19, 20 और 21)

विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी-अभियुक्त पर भारतीय दंड संहिता की धारा 498क और 306 के अधीन अधिरोपित दंडादेशों को क्रमवर्ती चलने का निदेश किया है और इसकी उच्च न्यायालय द्वारा अभिपुष्टि की गई है । जब विचारण न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31 के अधीन दंडादेशों के साथ-साथ चलने का निदेश जारी करने के लिए अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करने से इनकार कर देता है, तो सामान्यतः अपील न्यायालय तब तक इसमें हस्तक्षेप नहीं करेंगे जब तक कि ऐसे विवेकाधिकार का प्रयोग करने से इनकार करना मनमाना या अयुक्तियुक्त होना दर्शित न किया जाए । जब विचारण न्यायालय तथा अपील न्यायालय ने अपने विवेकाधिकर का प्रयोग करने से इनकार कर दिया है, तो सामान्यतः इस न्यायालय को दंडादेशों के क्रमवर्ती चलने के लिए न्यायालयों के उन निदेशों में हस्तक्षेप करने से प्रविरत रहना होगा । किंतु वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, अपीलार्थी पर अधिरोपित दंडादेशों को साथ-साथ चलने का आदेश किया जा सकता है । अपीलार्थी विवाह के समय दिल्ली में रंगसाज (पेंटर) के रूप में नियोजित था और यह कथन किया गया है कि उसे विवाह के पश्चात् खाड़ी देश में रोजगार मिल गया था और दो वर्ष में केवल एक बार भारत आता था । साक्ष्य में यह बात आई है कि वर्ष 1988-1996 से आठ वर्षों की अवधि में वह केवल चार बार छुट्टी पर भारत आया और अंतिम बार जनवरी-फरवरी, 1996 के दौरान छुट्टी पर रहते हुए भारत आया था । यह भी प्रतीत होता है कि अपीलार्थी ने मतभेद सुलझाने

के लिए मध्यस्थता करने का भी प्रयास किया था और यह मध्यस्थता तारीख 23 फरवरी, 1996 को होनी थी, किंतु लिल्लीकुट्टी ने उसी दिन आत्महत्या कर ली । इस मामले के समग्र तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, अपीलार्थी पर भारतीय दंड संहिता की धारा 498क और 306 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए अधिरोपित दंडादेशों को साथ-साथ चलने का आदेश किया जाता है और इस अपील का उपरोक्त उपांतरणों के साथ निपटारा किया जाता है । (पैरा 22)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2014]	2014 (8) स्केल 96 : **दुर्योधन राउत** बनाम **उड़ीसा राज्य** ;	7
[2014]	(2014) 2 एस. सी. सी. 153 : **मनोज** उर्फ **पनू** बनाम **हरियाणा राज्य** ;	17
[2013]	(2013) 7 एस. सी. सी. 211 : **वी. के. बंसल** बनाम **हरियाणा राज्य और एक अन्य** ;	16
[2012]	(2012) 11 एस. सी. सी. 629 : **रमेश चिलवाल** बनाम **उत्तराखंड राज्य** ;	15
[1988]	(1988) 4 एस. सी. सी. 183 : **मोहम्मद अख्तर हुसैन** उर्फ **इब्राहिम अहमद भाट्टी और एक अन्य** बनाम **सहायक सीमा-शुल्क कलक्टर (निवारण), अहमदाबाद और एक अन्य** ।	5, 17,18

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2014 की दांडिक अपील सं. 2387.

2006 की दांडिक अपील सं. 910 में एर्नाकुलम स्थित केरल उच्च न्यायालय के तारीख 27 नवम्बर, 2013 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री जयंत मुतराज और निश राजन शोनकर

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री बीना माधवन और रमेश बाबू एम. आर.

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति आर. भानुमति ने दिया ।

न्या. भानुमति – इजाजत दी गई ।

2. यह अपील 2006 की दांडिक अपील सं. 910 में तारीख 27 नवम्बर, 2013 को पारित किए गए उस निर्णय से उद्भूत हुई है जिसके द्वारा केरल उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी/प्रथम अभियुक्त की भारतीय दंड संहिता की धारा 498क और धारा 306 के अधीन दोषसिद्धि और उस पर अधिरोपित कारावास के दंडादेश की पुष्टि की है ।

3. संक्षेप में, अभियोजन का पक्षकथन यह है कि प्रथम अभियुक्त का विवाह लिल्लीकुट्टी के साथ हुआ था और उनका विवाह तारीख 11 फरवरी, 1988 को संपन्न हुआ था और वे करुलायी ऐमसम के मकान सं. एमपी. viii/84 में अन्य अभियुक्तों, जो अपीलार्थी के पिता, माता और भाई हैं, के साथ रह रहे थे । यह अभिकथन किया गया है कि ससुराल में लिल्लीकुट्टी के साथ अपीलार्थी/प्रथम अभियुक्त और अन्य अभियुक्त दुर्व्यवहार करते थे और यातना देते थे, जिसके कारण मजबूर होकर उसे आत्महत्या करके अपने जीवन का अंत करने का कठोर कदम उठाना पड़ा । वैवाहिक जीवन के दौरान लिल्लीकुट्टी का समयपूर्व प्रसव हुआ था । यह अभिकथन किया गया है कि जब वह वर्ष 1993 में पुनः गर्भवती हुई तो अभियुक्त-1 ने लिल्लीकुट्टी को कुछ गोलियां दीं और उसका गर्भपात हो गया । लिल्लीकुट्टी ने अपने वैवाहिक जीवन के दौरान एक बच्चे को जन्म दिया था जो ज्यादा समय जीवित न रह सका । लिल्लीकुट्टी ने तारीख 23 फरवरी, 1996 को अपने ऊपर मिट्टी का तेल छिड़क लिया था और कुछ पी भी लिया था जिसकी बाद में सफाई की गई थी । तारीख 23 फरवरी, 1996 को मध्यस्थता के लिए बातचीत नियत की गई थी और अभि. सा. 1 तथा लिल्लीकुट्टी के नातेदारों को भी मध्यस्थता के लिए बातचीत में उपस्थित होना था, किंतु जब यह बैठक नियत की गई तो लिल्लीकुट्टी ने फांसी लगाकर आत्महत्या कर ली । अभियुक्तों के एक पड़ोसी अभि. सा. 1 द्वारा दी गई इत्तिला के आधार पर कानून ने अपना कार्य आरंभ किया । प्रारंभ में, अनैसर्गिक मृत्यु होने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 174 के अधीन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की गई और पश्चात्वर्ती शिकायत के आधार पर इसे भारतीय दंड संहिता की धारा 498क और धारा 306 के अधीन दंडनीय अपराध में परिवर्तित किया गया । अभि. सा. 4 ने शव-परीक्षा की और मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट प्रस्तुत की । अभि. सा. 14, अन्वेषक अधिकारी ने अन्वेषण का कार्य संभाला और

दस्तावेज तथा तात्विक वस्तुओं को अभिगृहीत किया और साक्षियों की परीक्षा की तथा अपीलार्थी और अन्य अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप पत्र प्रस्तुत किया । विचारण न्यायालय में अभि. सा. 1 से 15 की परीक्षा की गई और प्रदर्श पी-1 से पी-25 चिन्हित किए गए तथा तात्विक वस्तुएं 1 से 18 की शनाख्त की गई । अभियुक्तों से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन प्रश्न किए गए और उन्होंने अपराध में आलिप्त करने वाले समस्त साक्ष्य और साक्ष्य में उनके विरुद्ध प्रकट होने वाली परिस्थितियों से इनकार किया ।

4. विचारण न्यायालय ने साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात् अपीलार्थी/प्रथम अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता की धारा 498क के अधीन दोषसिद्ध किया और उसे दो वर्ष का कठोर कारावास भोगने और 5,000/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने तथा जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम करने पर एक वर्ष का और कारावास भोगने का दंडादेश दिया । विचारण न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता की धारा 306 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए उसे सात वर्ष का कठोर कारावास भोगने और 5,000/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने तथा जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम करने पर तीन वर्ष का और कारावास भोगने का दंडादेश दिया । अपीलार्थी के मूल दंडादेशों को क्रमवर्ती रूप से चलने का आदेश किया गया । अभियुक्त सं. 2 से 4 को भारतीय दंड संहिता की धारा 498क के अधीन दोषसिद्ध किया गया और दो वर्ष का कारावास भोगने तथा 5,000/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने और जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम करने पर एक वर्ष का और कारावास भोगने का दंडादेश दिया गया । उच्च न्यायालय ने सभी अभियुक्तों पर अधिरोपित दोषसिद्धि और कारावास के दंडादेशों की पुष्टि की ।

5. अपीलार्थी/प्रथम अभियुक्त ने व्यथित होकर यह अपील फाइल की । इस न्यायालय ने केवल इस सीमित प्रश्न पर नोटिस जारी किए कि क्या दंडादेशों को क्रमवर्ती चलने के बजाय साथ-साथ चलने का आदेश किया जा सकता है । इस न्यायालय ने तारीख 18 जुलाई, 2014 के आदेश द्वारा यह मत व्यक्त किया कि **मोहम्मद अख्तर हुसैन** उर्फ **इब्राहिम अहमद भाट्टी और एक अन्य** बनाम **सहायक सीमा-शुल्क कलक्टर (निवारण), अहमदाबाद और एक अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा

[1] (1988) 4 एस. सी. सी. 183.

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31 को विचार में नहीं लिया गया था और विधि स्थिर करने के लिए इस मामले पर एक बृहत्तर न्यायपीठ द्वारा विचार किए जाने के लिए निर्दिष्ट किया गया और इस प्रकार यह मामला हमारे समक्ष आया है । निर्देश का आदेश निम्नलिखित है :–

> "इस मामले में याची को भारतीय दंड संहिता की धारा 498क और 306 के अधीन अपराधों के लिए साथ-साथ दोषसिद्ध किया गया है और ऊपर उल्लिखित दोनों धाराओं के अधीन जुर्माने की कतिपय रकम का संदाय करने, जिनका ब्यौरा देना आवश्यक नहीं है, के अतिरिक्त क्रमशः 2 वर्ष और 7 वर्ष का कठोर कारावास भोगने का दंडादेश दिया गया है ।
>
> दोनों न्यायालयों ने यह निदेश दिया है कि दंडादेश क्रमवर्ती चलने चाहिएं ।
>
> तारीख 31 मार्च, 2014 के आदेश द्वारा केवल इस सीमित प्रश्न के लिए नोटिस जारी किए गए कि क्या वह निदेश, जिसके द्वारा दंडादेशों को क्रमवर्ती रूप से चलने का आदेश किया गया है, वैध रूप से मान्य है ।
>
> याची के विद्वान् काउंसेल ने मोहम्मद अख्तर हुसैन **उर्फ** इब्राहिम अहमद भाट्टी **बनाम** सहायक सीमा-शुल्क कलक्टर (निवारण), अहमदाबाद और एक अन्य [(1988) 4 एस. सी. सी. 183] और मनोज **उर्फ** पनू **बनाम** हरियाणा राज्य [(2014) 2 एस. सी. सी. 153] वाले मामलों में इस न्यायालय के निर्णयों का अवलंब लिया और यह दलील दी कि जब किसी अभियुक्त को एक ही विचारण में एक से अधिक अपराधों के लिए दोषी पाया जाता है, भले ही प्रत्येक अलग-अलग आरोप के लिए अलग-अलग दोषसिद्धि अभिलिखित की गई है और अलग-अलग दंडादेश अधिरोपित किए गए हैं, ऐसे दंडादेशों को साथ-साथ चलने का आदेश दिया जाना चाहिए ।
>
> मोहम्मद अख्तर हुसैन **उर्फ** इब्राहिम अहमद भाट्टी (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने पैरा (10) में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है –
>
> > "साथ-साथ चलने वाले दंडादेशों के लिए वर्षों से अनुभवसिद्ध मूल नियम तथाकथित एकल संव्यवहार नियम रहा है । यदि किसी प्रस्तुत संव्यवहार में दो अधिनियमितियों के

अधीन दो अपराध बनते हैं, तो साधारणतया क्रमवर्ती दंडादेश देना गलत है । उचित और विधिसम्मत यह है कि साथ-साथ चलने वाले दंडादेश दिए जाएं । किंतु यह नियम वहां लागू नहीं होगा यदि अपराधों से संबंधित संव्यवहार एक नहीं है या दो अपराध गठित करने वाले तथ्य पूरी तरह से भिन्न हैं ।"

मनोज **उर्फ** पनू **बनाम** हरियाणा राज्य (उपरोक्त) वाले मामले में न्यायपीठ ने निरपेक्ष रूप से पूर्ववर्ती निर्णय का अनुसरण किया ।

मोहम्मद अख्तर हुसैन **उर्फ** इब्राहिम अहमद भाट्टी (उपरोक्त) वाले मामले में के निर्णय से यह प्रतीत होता है कि इस न्यायालय द्वारा उस समय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31 की अवेक्षा नहीं की गई जब इस न्यायालय ने ऊपर उद्धृत मत व्यक्त किया ।

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31(1) निम्नलिखित है –

31. एक ही विचारण में कई अपराधों के लिए दोषसिद्ध होने के मामलों में दंडादेश – (1) जब एक विचारण में कोई व्यक्ति दो या अधिक अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया जाता है तब, भारतीय दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) की धारा 71 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, न्यायालय उसे उन अपराधों के लिए विहित विभिन्न दंडों में से उन दंडों के लिए, जिन्हें देने के लिए ऐसा न्यायालय सक्षम है, दंडादेश दे सकता है ; जब ऐसे दंड कारावास के रूप में हों तब, यदि न्यायालय ने यह निदेश न दिया हो कि ऐसे दंड साथ-साथ भोगे जाएंगे, तो वे ऐसे क्रम से एक के बाद एक प्रारंभ होंगे जिसका न्यायालय निदेश दे ।

(2) .....

(3) ....."

इसलिए यह कानूनी अनुबंध स्पष्ट है कि सामान्यतया ऐसे मामलों में दंडादेश क्रमवर्ती चलेंगे ।

अतः हमारा यह निष्कर्ष है कि हमारे लिए ऊपर उल्लखित दो मामलों में किया गया विधि का कथन स्वीकार करना कठिन है । इसलिए हम यह उचित समझते हैं कि विधि स्थिर करने के लिए इस

मामले पर समुचित संख्या वाले न्यायपीठ द्वारा विचार किया जाए । हम रजिस्ट्री को निदेश देते हैं कि समुचित आदेश के लिए कागजातों को भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के समक्ष प्रस्तुत किया जाए ।"

6. अपीलर्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री जयंत मुतराज ने यह दलील दी कि जब किसी व्यक्ति को एक विचारण में दो या अधिक अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया जाता है, तब दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31 में न्यायालय को यह निदेश देने का विवेकाधिकार निहित किया गया है कि दंड साथ-साथ चलेंगे और वर्तमान मामले में विचारण न्यायालय और अपील न्यायालय ने उनमें निहित इस वैवेकिक शक्ति का उचित रूप से प्रयोग नहीं किया है । विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि इस धारा में यह उपबंधित है कि जहां दो या अधिक अपराधों के लिए विभिन्न दंडादेश अधिरोपित किए जाते हैं, वहां ऐसे दंडादेश, जब तक कि न्यायालय दंडादेशों को साथ-साथ चलने का निदेश न दे, ऐसे क्रम में चलेंगे जो न्यायालय निदेश करे और दंडादेशों के साथ-साथ चलने का आदेश देने का न्यायालय का विवेकाधिकार किसी भी रीति में निर्बंधित नहीं है । यह दलील दी गई कि यह उपधारणा करने का कोई कारण नहीं है कि साधारण नियम यह है कि दंडादेश एक के बाद एक चलेगा और अपवाद यह है कि सभी दंडादेश साथ-साथ चलेंगे । विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी कि **मोहम्मद अख्तर हुसैन** (उपरोक्त) वाले मामले में अधिकथित न्यायिक मार्गदर्शक सिद्धांत किसी भी प्रकार से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31 के विरोध में नहीं हैं ।

7. हमने प्रत्यर्थी-केरल राज्य की ओर से हाजिर होने वाली विद्वान् काउंसेल सुश्री बीना माधवन को भी सुना, जिसने निचले न्यायालयों द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण का समर्थन किया । विद्वान् काउंसेल ने **दुर्योधन राउत** बनाम **उड़ीसा राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के हाल ही के निर्णय का अवलंब लिया ।

8. हमने मामले पर गहराई से विचार किया और अभिलेख पर की सामग्री का परिशीलन किया ।

9. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31 दंड की उस मात्रा के संबंध में है जिसे न्यायालय को उस समय पारित करने की अधिकारिता है जहां अभियुक्त को एक विचारण में दो या अधिक अपराधों के लिए दोषसिद्ध

---

[1] 2014 (8) स्केल 96.

किया जाता है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31 निम्नलिखित है :–

"**31. एक ही विचारण में कई अपराधों के लिए दोषसिद्ध होने के मामलों में दंडादेश –** (1) जब एक विचारण में कोई व्यक्ति दो या अधिक अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया जाता है तब, भारतीय दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) की धारा 71 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, न्यायालय उसे उन अपराधों के लिए विहित विभिन्न दंडों में से उन दंडों के लिए, जिन्हें देने के लिए ऐसा न्यायालय सक्षम है, दंडादेश दे सकता है ; जब ऐसे दंड कारावास के रूप में हों तब, यदि न्यायालय ने यह निदेश न दिया हो कि ऐसे दंड साथ-साथ भोगे जाएंगे, तो वे ऐसे क्रम से एक के बाद एक प्रारंभ होंगे जिसका न्यायालय निदेश दे ।

(2) दंडादेशों के क्रमवर्ती होने की दशा में केवल इस कारण से कि कई अपराधों के लिए संकलित दंड उस दंड से अधिक है जो वह न्यायालय एक अपराध के लिए दोषसिद्धि पर देने के लिए सक्षम है, न्यायालय के लिए यह आवश्यक नहीं होगा कि अपराधी को उच्चतर न्यायालय के समक्ष विचारण के लिए भेजे :

परंतु –

(क) किसी भी दशा में ऐसा व्यक्ति चौदह वर्ष से अधिक की अवधि के कारावास के लिए दंडादिष्ट नहीं किया जाएगा ;

(ख) संकलित दंड उस दंड की मात्रा के दुगने से अधिक न होगा जिसे एक अपराध के लिए देने के लिए वह न्यायालय सक्षम है ।

(3) किसी सिद्धदोष व्यक्ति द्वारा अपील के प्रयोजन के लिए उन क्रमवर्ती दंडादेशों का योग, जो इस धारा के अधीन उसके विरुद्ध दिए गए हैं, एक दंडादेश समझा जाएगा ।"

10. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31 दंड की उस मात्रा के संबंध में है जो तब वैध रूप से पारित किया जा सकता है जब (क) एक विचारण है, और (ख) अभियुक्त को "दो या अधिक अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया जाता है"। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31 में यह उपबंधित है कि न्यायालय, भारतीय दंड संहिता की धारा 71 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, दो या अधिक अपराधों के लिए जिनका अभियुक्त दोषी पाया जाता है,

अलग-अलग दंडादेश पारित कर सकता है किंतु संकलित दंड, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31 की उपधारा (2) के परंतुक (क) और (ख) में नियत सीमा से अधिक नहीं होना चाहिए । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31(1) में चूंकि "दे सकेगा" (में) शब्द प्रयुक्त किया गया है, इसलिए हमारे सुविचारित मत में, न्यायालय भारतीय दंड संहिता की धारा 71 के उपबंधों के अधीन रहते हुए यह निदेश देने के लिए अपने विवेकाधिकार का प्रयोग कर सकता है कि प्रत्येक अपराध के लिए दिया गया दंडादेश क्रमवर्ती चलेगा या साथ-साथ । किंतु संकलित दंडादेश दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31 की उपधारा (2) के परंतुक (क) और (ख) में नियत सीमा से अधिक नहीं होना चाहिए, अर्थात् (i) यह 14 वर्ष से अधिक नहीं होना चाहिए और (ii) दंडादेश देने वाले न्यायालय द्वारा एक अपराध के लिए दिए जाने वाले अधिकतम दंड के दोगुने से अधिक नहीं हो सकता है ।

11. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31 की उपधारा (1) में आने वाले शब्दों "यदि न्यायालय ने यह निदेश न दिया हो कि ऐसे दंड साथ-साथ भोगे जाएंगे" से यह स्पष्ट हो जाता है कि जब अभियुक्त को एक विचारण में दो या अधिक अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया जाता है, तो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31 में न्यायालय को यह निदेश करने का विवेकाधिकार निहित किया गया है कि दंडादेश साथ-साथ चलेंगे । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31 से यह स्पष्ट है कि जब अभियुक्त को एक विचारण में दो या अधिक अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया जाता है, तो न्यायालय को सभी दंडादेशों के साथ-साथ चलने का निदेश जारी करने की शक्ति और विवेकाधिकार है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31 कारावास के मूल दंडादेशों के मामलों में साथ-साथ चलने वाले दंडादेश पारित करने के लिए प्राधिकृत करती है । जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम करने के लिए दिया गया कारावास का कोई दंडादेश उस कारावास के किसी अन्य दंडादेश, जिसके लिए दोषसिद्ध व्यक्ति को दंडादिष्ट किया गया है, के अतिरिक्त होगा न कि उसके साथ-साथ ।

12. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31 में आने वाले शब्दों ".....उसे उन अपराधों के लिए विहित विभिन्न दंडों में से उन दंडों के लिए, जिन्हें देने के लिए ऐसा न्यायालय सक्षम है, दंडादेश दे सकता है ; जब ऐसे दंड कारावास के रूप में हों, तब वे ऐसे क्रम में एक के बाद एक प्रारंभ होंगे जिसका न्यायालय निदेश दे," से यह उपदर्शित होता है कि यदि न्यायालय दंडादेशों को एक के बाद एक चलने का निदेश करता है, तो न्यायालय को

उस क्रम को विनिर्दिष्ट करना होगा जिस क्रम में दंडादेश चलने हैं । यदि न्यायालय दंडादेशों को साथ-साथ चलने का निदेश करता है, तो दंडादेशों के चलने के क्रम का उल्लेख किए जाने की आवश्यकता नहीं है । दंडादेश साथ-साथ चलेंगे या क्रमवर्ती चलेंगे यह आदेश देने का विवेकाधिकार न्यायालय का न्यायिक विवेकाधिकार है और इसका प्रयोग दंडादिष्ट करने के लिए स्थापित विधि के अनुसार किया जाना चाहिए । यह विनिश्चय करते समय कि दंडादेश साथ-साथ चलेंगे या क्रमवर्ती, न्यायालय के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31 के अधीन अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करने से पूर्व अभियुक्त के विरुद्ध अपराधों के तथ्यों और परिस्थितियों की समग्रता पर विचार करना आवश्यक है ।

13. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31(1) में न्यायालय द्वारा उस क्रम को, जिसमें एक विशिष्ट दंडादेश दूसरे दंडादेश के पर्यवसान के पश्चात् चलेगा, विनिर्दिष्ट करने का निदेश देने के लिए भी आदेश दिया गया है । कठिनाई तब पैदा होती है जब न्यायालय आजीवन कारावास का दंडादेश अधिरोपित करते हैं । ऐसे मामलों में यदि न्यायालय यह निदेश नहीं देता है कि दंडादेश साथ-साथ चलेंगे, तब दंडादेश दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31(1) के प्रवर्तन द्वारा क्रमवर्ती चलेंगे । यह प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता कि दोषसिद्ध व्यक्ति पहले आजीवन कारावास का दंडादेश भोगे और उसके पश्चात् नियत अवधि के कारावास के दंडादेश भोगे और ऐसा कोई निदेश करना अव्यवहारिक होगा । चूंकि आजीवन कारावास के दंडादेश से अभिप्राय दोषसिद्ध व्यक्ति के सामान्य जीवन का अंत होने तक कारागार में रहना है, इसलिए नियत अवधि के कारावास का दंडादेश आवश्यक रूप से आजीवन कारावास के दंडादेश के साथ-साथ चलना चाहिए । ऐसी दशा में, यह उचित होगा यदि सेशन न्यायाधीश दंडादेशों को साथ-साथ चलने का निदेश जारी करने के लिए अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करें । इसी प्रकार, यदि दोषसिद्ध व्यक्ति पर दो आजीवन कारावास अधिरोपित किए जाते हैं, तो न्यायालय को आवश्यक रूप से उन दंडादेशों को साथ-साथ चलने का निदेश करना चाहिए ।

14. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31(2) के आंरभिक शब्दों "दंडादेशों के क्रमवर्ती होने की दशा में" से यह स्पष्ट होता है कि यह उपधारा ऐसे मामलों के प्रति निर्देश करती है जिनमें "दंडादेशों के क्रमवर्ती होने" का आदेश किया जाता है । इस उपबंध में यह उपबंधित है कि यदि कई अपराधों के लिए संकलित दंड उस दंड से अधिक पाया जाता है जो वह

न्यायालय एक अपराध के लिए दोषसिद्धि पर देने के लिए सक्षम है, न्यायालय के लिए यह आवश्यक नहीं होगा कि अपराधी को उच्चतर न्यायालय के समक्ष विचारण के लिए भेजे । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31 की उपधारा (2) के साथ परंतुक (क) दंडादेशों के सकल योग को सीमित करने के लिए जोड़ा गया है अर्थात् अभियुक्त के विरुद्ध पारित किए गए क्रमवर्ती दंडादेशों का सकल योग किसी भी दशा में चौदह वर्ष से अधिक नहीं होगा । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31(2) के परंतुक के खंड (क) में अंतर्विष्ट "चौदह वर्ष का नियम" आजीवन कारावास के संबंध में लागू नहीं हो सकेगा, चूंकि आजीवन कारावास से अभिप्राय है कि दोषसिद्ध व्यक्ति अपने सामान्य जीवन के अंत तक कारागार में रहेगा ।

15. **रमेश चिलवाल** बनाम **उत्तराखंड राज्य**[1] वाले मामले में अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध किया गया था और आजीवन कारावास भोगने का दंडादेश दिया गया था । अभियुक्त को उत्तर प्रदेश अपराधी और असामाजिक क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1986 [यू. पी. गैंगस्टर्स एंड एंटी सोसियल एक्टिविटिज (प्रिवेंशन) ऐक्ट, 1986] की धारा 2/3 [3(1)] के अधीन भी दोषसिद्ध किया गया था और दस वर्ष का कठोर कारावास भोगने का दंडादेश दिया गया था तथा आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन भी सात वर्ष का कठोर कारावास भोगने का दंडादेश दिया गया था । इस न्यायालय ने इस तथ्य पर विचार करने के पश्चात् कि विचारण न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन आजीवन कारावास का दंडादेश दिया है, यह निदेश दिया कि भारतीय दंड संहिता की धारा 302, उत्तर प्रदेश अपराधी और असामाजिक क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1986 की धारा 2/3 [3(1)] तथा आयुध अधिनियम की धारा 27 के अधीन अधिरोपित सभी दंडादेश साथ-साथ चलेंगे ।

16. जब अभियोजन एक संव्यवहार पर आधारित है और जहां इसमें दो या अधिक अपराध गठित किए गए हैं, वहां दंडादेश साथ-साथ चलेंगे । जब अलग-अलग अपराधों को गठित करने वाले कार्य एक संव्यवहार का भाग हैं, तब अलग-अलग दंडादेश अधिरोपित करना न्यायोचित नहीं है । जहां तक अभियुक्त को उपलब्ध इस फायदे का संबंध है कि एक संव्यवहार पर आधारित कई अपराधों के लिए दिए गए दंडादेश साथ-साथ

---

[1] (2012) 11 एस. सी. सी. 629.

चलेंगे, **वी. के. बंसल** बनाम **हरियाणा राज्य और एक अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने, जिसमें हम में से एक (न्यायमूर्ति टी. एस. ठाकुर) न्यायपीठ के सदस्य थे, निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

> " ....हम यह कह सकते हैं कि उन मामलों में जहां अभियोजन एक संव्यवहार पर आधारित है, वहां विधिक स्थिति कैदी के फायदे के लिए विवेकाधिकार का प्रयोग करने का समर्थन करती है और यह बात मायने नहीं रखती कि इसके संबंध में विभिन्न शिकायतें फाइल की गई हों, ऐसी स्थिति उधार लेने वाले द्वारा ऋण के प्रतिदाय के निमित्त लेनदार को जारी किए गए चैकों के अनादरण से संबंधित मामलों में हो सकती है ।"

17. **मोहम्मद अख्तर हुसैन** उर्फ **इब्राहिम अहमद भाट्टी** बनाम **सहायक सीमा-शुल्क कलक्टर (निवारण) अहमदाबाद और अन्य** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने एक संव्यवहार से उद्भूत दोषसिद्धि के मूलभूत नियम को दंडादेशों के साथ-साथ चलने की बात को न्यायोचित ठहराते हुए मान्यता दी । इस संबंध में निम्नलिखित उद्धरण उल्लेख किए जाने के लिए सुसंगत हैं :–

> "साथ-साथ चलने वाले दंडादेशों के लिए वर्षों से अनुभवसिद्ध मूल नियम तथाकथित एकल संव्यवहार नियम रहा है । यदि किसी प्रस्तुत संव्यवहार में दो अधिनियमितियों के अधीन दो अपराध बनते हैं, तो साधारणतया क्रमवर्ती दंडादेश देना गलत है । उचित और विधिसम्मत यह है कि साथ-साथ चलने वाले दंडादेश दिए जाएं । किंतु यह नियम वहां लागू नहीं होगा यदि अपराधों से संबंधित संव्यवहार एक नहीं हैं या दो अपराध गठित करने वाले तथ्य पूरी तरह से भिन्न हैं ।"

मनोज उर्फ **पनू** बनाम **हरियाणा राज्य**[2] वाले मामले में न्यायपीठ ने **मोहम्मद अख्तर हुसैन** (उपरोक्त) वाले मामले का अनुसरण किया है ।

18. न्यायपीठ ने मामले को बृहत्तर न्यायपीठ को निर्देशित करते हुए यह मत व्यक्त किया कि **मोहम्मद अख्तर हुसैन** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31 की अवेक्षा नहीं की

---

[1] (2013) 7 एस. सी. सी. 211.

[2] (2014) 2 एस. सी. सी. 153.

गई । यह उल्लेखनीय है कि **मोहम्मद अख्तर हुसैन** (उपरोक्त) और **मनोज** (उपरोक्त) वाले मामलों में अभियुक्तों के फायदे में इस विवेकाधिकार के प्रयोग का समर्थन करते हुए कि दंडादेश साथ-साथ चलेंगे, अपीलार्थियों को, जिन्हें विभिन्न अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया गया था और वे एक संव्यवहार से उद्भूत हुए थे, दिए गए दंडादेशों को साथ-साथ चलने का आदेश किया गया था । वे विनिश्चय ऐसे मामलों में नहीं किए गए हैं जो दो या अधिक अपराधों के लिए किए गए एक विचारण से उद्भूत हुए हों और इसलिए उन मामलों में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31 के प्रति निर्देश करने की आवश्यकता नहीं थी ।

19. जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31 दंडादेश की उस मात्रा के संबंध में है जो वैध रूप से तब पारित किया जा सकता है जब (क) एक विचारण हो, और (ख) अभियुक्त को दो या अधिक अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया जाता है । धारा 31 की परिधि व्यापक है और इसके अंतर्गत न केवल दो या अधिक अपराधों को गठित करने वाला एक संव्यवहार आता है अपितु दो या अधिक संव्यवहारों से उद्भूत अपराध भी आते हैं । **मोहम्मद अख्तर हुसैन** (उपरोक्त) और **मनोज** (उपरोक्त) वाले दोनों मामलों के निर्णयों में विवाद्यक जिस पर विचार किया जाना था, वह एक संव्यवहार से उद्भूत दो या अधिक अपराधों के लिए दंडादेश अधिरोपित करने का था । इस संदर्भ में इस न्यायालय ने उन दोनों मामलों में यह अभिनिर्धारित किया कि दंडादेश साथ-साथ चलेंगे ।

20. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31 के अधीन दो या अधिक अपराधों के लिए दोषसिद्धि की दशा में दंडादेशों के साथ-साथ चलने का आदेश करने का पूर्ण विवेकाधिकार न्यायालय को दिया गया है । न्यायालयों द्वारा ऐसे विवेकाधिकार के प्रयोग के मामले में कोई कठोर दृष्टिकोण अधिकथित करना कठिन है । कुल मिलाकर, विचारण न्यायालयों और अपील न्यायालयों ने अभियुक्त को दिए जाने वाले फायदे का समर्थन करते हुए दंडादेशों के साथ-साथ चलने के निदेश जारी करने के लिए अपने विवेकाधिकार का अवलंब लिया है और इसका प्रयोग किया है । किसी प्रस्तुत मामले में दंडोदशों के साथ-साथ चलने के निदेश जारी किए जाए या नहीं, यह कारित किए गए अपराध या अपराधों की प्रकृति तथा मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा । विवेकाधिकार का प्रयोग न्यायिक परिपाटी के अनुसार किया जाना चाहिए न कि यंत्रवत ।

21. तद्नुसार, हम यह अभिनिर्धारित करते हुए निर्देश का उत्तर देते हैं

कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31 में एक विचारण में दो या अधिक अपराधों के लिए दिए गए दंडादेशों का साथ-साथ चलने का आदेश करने का पूर्ण विवेकाधिकार अपराधों की प्रकृति और विद्यमान गुरुतरकारी और न्यूनकारी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए न्यायालय को दिया गया है । हम यह अभिनिर्धारित करने का कोई कारण नहीं पाते हैं कि सामान्य नियम यह है कि दंडादेशों के क्रमवर्ती चलने का आदेश किया जाए और अपवाद यह है कि दंडादेशों का साथ-साथ चलने का आदेश किया जाए । निस्संदेह, यदि न्यायालय दंडादेशों को साथ-साथ चलने का आदेश नहीं करता है, तो दंडादेश एक के बाद एक ऐसे क्रम में चलेंगे, जैसा कि न्यायालय निदेश करे । हम **मोहम्मद अख्तर हुसैन** (उपरोक्त) वाले मामले में के पूर्ववर्ती निर्णय और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31 में कोई विरोध नहीं पाते हैं ।

22. निर्देश का उत्तर दिए जाने पर मामले के गुणागुण पर निर्देश करने वाली न्यायपीठ द्वारा विचार किया जा सकता है किंतु हम यह उचित समझते हैं कि आगे होने वाले किसी विलंब से बचने के लिए स्वतः अपील का निपटारा किया जाए । वर्तमान मामले पर विचार करते हैं । अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि दंडादेशों को क्रमवर्ती चलने के लिए विवेकाधिकार का अवलंब लेने के लिए मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में नहीं रखा गया है । यह दलील दी गई कि अपीलार्थी खाड़ी देश में नियोजित है और वर्ष 1988 से 1996 के बीच अपीलार्थी केवल चार बार भारत आया और उसके द्वारा लगातार तंग नहीं किया जा सकता था और मामले के उक्त तथ्यों और परिस्थितियों में विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय को दंडादेशों को क्रमवर्ती चलने के लिए निदेश देने के उपने विवेकाधिकार का न्यायसम्मत रूप से प्रयोग करना चाहिए था और इसलिए इस न्यायालय से मध्यक्षेप करने की प्रार्थना की गई ।

23. विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी/अभियुक्त पर भारतीय दंड संहिता की धारा 498क और 306 के अधीन अधिरोपित दंडादेशों को क्रमवर्ती चलने का निदेश किया है और इसकी उच्च न्यायालय द्वारा अभिपुष्टि की गई है । जब विचारण न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31 के अधीन दंडादेशों के साथ-साथ चलने का निदेश जारी करने के लिए अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करने से इनकार कर देता है, तो सामान्यतः अपील न्यायालय तब तक इसमें हस्तक्षेप नहीं करेंगे जब तक कि ऐसे विवेकाधिकार का प्रयोग करने से इनकार करना मनमाना या अयुक्तियुक्त

होना दर्शित न किया जाए । जब विचारण न्यायालय तथा अपील न्यायालय ने अपने विवेकाधिकर का प्रयोग करने से इनकार कर दिया है, तो सामान्यतः हमें दंडादेशों के क्रमवर्ती चलने के लिए न्यायालयों के उन निदेशों में हस्तक्षेप करने से प्रविरत रहना होगा । किंतु वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, हमारे मत में, अपीलार्थी पर अधिरोपित दंडादेशों को साथ-साथ चलने का आदेश किया जा सकता है । अपीलार्थी विवाह के समय दिल्ली में रंगसाज (पेंटर) के रूप में नियोजित था और यह कथन किया गया है कि उसे विवाह के पश्चात् खाड़ी देश में रोजगार मिल गया था और दो वर्ष में केवल एक बार भारत आता था । साक्ष्य में यह बात आई है कि वर्ष 1988-1996 से आठ वर्षों की अवधि में वह केवल चार बार छुट्टी पर भारत आया और अंतिम बार जनवरी-फरवरी, 1996 के दौरान छुट्टी पर रहते हुए भारत आया था । यह भी प्रतीत होता है कि अपीलार्थी ने मतभेद सुलझाने के लिए मध्यस्थता करने का भी प्रयास किया था और यह मध्यस्थता तारीख 23 फरवरी, 1996 को होनी थी, किंतु लिल्लीकुट्टी ने उसी दिन आत्महत्या कर ली । इस मामले के समग्र तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, अपीलार्थी पर भारतीय दंड संहिता की धारा 498क और 306 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए अधिरोपित दंडादेशों को साथ-साथ चलने का आदेश किया जाता है और इस अपील का उपरोक्त उपांतरणों के साथ निपटारा किया जाता है ।

24. तद्नुसार निर्देश का उत्तर दिया जाता है और यह अपील ऊपर यथा उपदर्शित सीमा तक भागतः मंजूर की जाती है ।

अपील भागतः मंजूर की गई ।

जस.